अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ सं.
	खंड -1 मुगल साम्राज्य की स्थापना	
	इकाई-1) बाबर के आगमन के पूर्व भारत की स्थिति	
	इकाई-2 बाबर : मुगल साम्राज्य की स्थापना	
	इकाई-3 हुमायूँ और शेरशाह – चौसा और कन्नौज की लड़ाई	
	इकाई-4) शेरशाह सूरी की प्रशासनिक व्यवस्था	
	खंड-2 मुगल साम्राज्य का सुदृढीकरण व विस्तार	
	इकाई-1 अकबर – राजपूत व धार्मिक नीति तथा मंसबदारी व्यवस्था	
	इकाई-2 जहाँगीर	
	इकाई-3 शाहजहाँ	
	इकाई-4 औरंगजेब – दक्षिण नीति एवं मुगल काल का पतन	
	खंड -3 मुगलों की प्रशासनिक, आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक	
	नीतियाँ	
	इकाई-1 मुगलों की प्रशासनिक व राजनैतिक व्यवस्था	2-14
	इकाई-2 आर्थिक स्थिति	15-25
	इकाई-3 स्थापत्य और कला	26-50
	इकाई-4 साहित्य व सांस्कृतिक विकास	51-68
	खंड-4 मराठा साम्राज्य का उदय व विस्तार	
	इकाई-1 मराठा शक्ति का उत्कर्ष	69-76
	इकाई-2 शिवाजी	77-92
	इकाई-3 मुगलों के साथ मराठों का संबंध	93-110
	इकाई-4 पेशवा का उदय व मराठा शक्ति का विस्तार	111-132

खंड-3: मुगलों की प्रशासनिक, आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक नीतियाँ इकाई-1: मुगलों की प्रशासनिक व राजनैतिक व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

- 3.1.1. उद्देश्य
- 3.1.2. प्रस्तावना
- 3.1.3. मुगल प्रशासन की विशेषताएँ
- 3.1.4. मुगलकालीन केंद्रीय प्रशासन
- 3.1.5. मुगलकालीन प्रांतीय प्रशासन
- 3.1.6. मुगलकालीन सैन्य प्रशासन
- 3.1.7. मुगलकालीन न्याय प्रशासन
- 3.1.8. सारांश
- 3.1.9. बोध प्रश्न
 - 3.1.9.1. लघु उत्तरीय प्रश्न
 - 3.1.9.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
- 3.1.10. संदर्भ-ग्रंथ

3.1.1. उद्देश्य

मुगल जाति तुर्क तथा मंगोल जातियों के सिम्मिश्रण का परिणाम है। मंगोल पर्याप्त समय तक एशिया में शासन करते रहे और उनके पतन के उपरांत तुर्कों के अधिकार में शासन सत्ता आई। इन दोनों जातियों के पारस्परिक संबंध से मुगल जाति का उद्य हुआ। बाबर से लेकर बहादुरशाह जफर तक मुगलों ने भारत पर 1526 ई. से 1857 ई. तक शासन किया, जिसमें अकबर से औरंगजेब तक लगभग संपूर्ण भारत पर मुगलों का आधिपत्य रहा। अपने विस्तृत भूभाग पर शांति एवं व्यवस्था बनाए रखने हेतु मुगलों ने अपने कार्यकाल में उत्कृष्ट प्रशासन की स्थापना की। इस इकाई का उद्देश्य मुगलों की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालना है।

3.1.2. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में मुगल प्रशासन की विशेषताओं, मुगलों के केंद्रीय प्रशासन, प्रांतीय प्रशासन, नगरीय प्रशासन, सैन्य प्रशासन एवं न्याय प्रशासन की विस्तृत विवेचना की गई है।

3.1.3. मुगल प्रशासन की विशेषताएँ

मुगल प्रशासन के अध्ययन के पूर्व उसकी विशेषताओं का अध्ययन करना उचित प्रतीत होता है, क्योंकि इसके अध्ययन द्वारा उसके स्वरूप का ज्ञान पूर्णरूप से हो जाएगा और उनके शासन को समझना भी सरल होगा। इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार ने मुगल-शासन की निम्न मुख्य विशेषताएँ बतलाई हैं-

(1) विदेशी प्रभाव

मुगलों की शासन-व्यवस्था पर विदेशी प्रभाव था। मुगल मध्य-एशिया से भारत में आए तथा उनके शासन का आधार फारस और अरब का शासन था। उन्होंने भारतीय परिस्थिति के अनुसार उसमें कुछ सुधार किए, जिससे प्रांत का भूमिकर अध्यक्ष है का पारस्परिक संबंध ठीक उसी प्रकार का था जैसा कि दोनों के बीच अधिकार संबंधी शत्रुता तथा अपने स्वामी से परस्पर दोषारोपण के ज्वलंत उदाहरण सरकारी दस्तावेजों पर आधारित सत्रहवीं शताब्दी के उड़ीसा के इतिहास में मिलता है।

(2) सैनिक शासन

मुगलों के शासन का आधार सैनिक था। प्रत्येक राजकीय पदाधिकारियों को सैनिक कार्य करना पड़ता था और उसका सेना में भर्ती होना अनिवार्य था। वह मसनसबदार होता था। उसके मनसब के अनुसार ही उसका पद और वेतन निश्चत होता था। नागरिक कर्मचारियों, न्यायाधीशों, डाक-कर अथवा चुंगी के अध्यक्षों तथा उच्च वेतन-क्रम के लिपिकों और गणकों को भी मनसबदारी अर्थात् सेना की सदस्यता का पद प्रदान किया जाता था। सेना की क्रमिक सूचित में उनके नामों का औपचारिक प्रभुत्व के रूप में होती थी जो यह सिद्ध करता है कि शासन का कोष अथवा राज्य-व्यय विभाग सैनिक व नागरिक सेवाओं के लिए एक था।

(3) भूमिकर की प्राचीन व्यवस्था

मुगलों ने प्राचीन भूमि-व्यवस्था को अपनाया और उसी के अनुसार कर आदि लगाए, किंतु अन्य करों के संबंध में ऐसा नहीं था। अन्य कर शरियत के अनुसार लगाए गए।

(4) राज्य उत्पादक के रूप में

राज्य सबसे बड़ा उत्पादक था। दारोगा के नियंत्रण में कारखानों में विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ तैयार की जाती थीं। उसके अंतर्गत बहुत से मजदूर रहते थे, जिनको दैनिक मजदूरी दी जाती थी। वे लोग अपने हाथों से वस्तुओं का उत्पादन करते थे जो गोदामों में रख दी जाती थी।

(5) केंद्रीय निरंकुश शासन

मुगल शासन में सम्राट का पद सर्वोच्च था। शासन की समस्त सत्ता उसमें निहित थी और उसकी शक्ति असीमित थी। साम्राज्य अधिक विस्तृत था, जिसके कारण अधिकतर कार्य पत्र द्वारा किया जाता था। अधिकारियों को बहुत से रजिस्टर रखने पड़ते थे। इनके अतिरिक्त केंद्रीय सरकार की सूचना के लिए गुप्तचरों तथा सरकारों की एक सेना नियुक्त थी।

(6) न्याय तथा नियम आधुनिक सिद्धां तों के विरुद्ध

मुगल-सम्राटों की प्रवृत्ति न्याय तथा नियम संबंधी आधुनिक सिद्धां तों के विरुद्ध थी। देश में शां ति की स्थापना तथा सुव्यवस्था को स्थापित करना आधुनिक राज्य का प्रमुख कर्तव्य समझा जाता है। मुगल-शासन द्वारा ऐसी व्यवस्था की स्थापना नहीं हो सकी। उन्होंने गाँवों की उन्नित की ओर तिनक भी ध्यान नहीं दिया जबिक इनकी संख्या बहुत अधिक थी। इतना तो मानना ही होगा कि मुगलों ने दिल्ली सल्तनत के शासकों की अपेक्षा देश में शांति की स्थापना की ओर अधिक प्रयत्न किया।

(7) सामाजिक कार्यों से राज्य का उदासीन होना

राज्य की ओर से सामाजिक कार्यों के करने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। उन्होंने समाज की उन्नित की ओर तिनक भी ध्यान नहीं दिया। राज्य ने शिक्षा को प्रोत्साहन देने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया और न ही सामाजिक दोषों व कुरीतियों के अंत करने की ओर ही। यदि किसी ने ऐसा करने का प्रयत्न भी किया तो यह उसका व्यक्तिगत कार्य होता था न कि राज्य का।

(8) धर्म अप्रभावित शासन

मुगलों के शासन पर धार्मिक प्रभाव नहीं था। उनमें धार्मिक उदारता थी। औरंगजेब ने धर्म के नाम पर अत्याचार अवश्य किए किंतु साधारणतः मुगल शासन इस प्रभाव से मुक्त ही था।

(9) उत्तराधिकार के नियम का प्रभाव

मुगलों में उत्तराधिकार के नियम का सर्वथा अभाव था। प्रत्येक सम्राट को विद्रोहों का सामना करना पड़ा। सम्राट की मृत्यु होने पर उत्तराधिकार-युद्ध होना अनिवार्य रहता था, जिससे देश को बड़ी हानि उठानी पड़ती थी। ज्येष्ठ पुत्र का अधिकार अकाट्य नहीं माना जाता था और न ही सम्राट की अपनी निजी इच्छा जो वह अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर प्रगट करता था।

मुगलों का शासन-प्रबंध जिन सिद्धांतों तथा विचारों पर अवलंबित था वे दिल्ली के सत्तनत काल के शासकों से पूर्णतया भिन्न थे। यह कार्य अकबर ने किया। बाबर और हुमायूँ की शासन-व्यवस्था को उन्नत करने का अवकाश ही प्राप्त नहीं हुआ और न ही उनमें इतनी योग्यता ही थी। अकबर में यद्यपि राजनैतिक प्रतिभा विशेष मात्रा में विद्यमान थी, किंतु उसने शेरशाह सूरी के बहुत से सिद्धांतों को अपनाया और इसी कारण वह अकबर का अग्रगामी माना जाता है।

3.1.4. मुगलकालीन केंद्रीय प्रशासन

मुगलकालीन केंद्रीय प्रशासन को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है -

(1) सम्राट

सम्राट शासन का केंद्र था और शासन की समस्त सत्ता उसमें पूर्णतया केंद्रीभूत थी। उनकी शक्ति असीमित थी और उस पर किसी संस्था का कोई नियंत्रण नहीं था, किंतु एक दृष्टि से उसकी असीमित शक्ति थी। उनके आदेश दूस्थ प्रदेशों में पूर्णतया मानवीय नहीं होते थे। पहाड़ी प्रदेशों मे उनकी सत्ता नहीं मानी जाती थी। अतः मुगल सम्राट स्वेच्छापूर्ण तथा निरंकुश शासक थे, किंतु प्रथम छह मुगल सम्राटों में एक भी अन्यायी तथा अत्याचारी तानाशाह के रूप में शासन नहीं किया और न उन्होंने जनता के अधिकारों का दमन किया। इन सम्राटों में स्वेच्छाचारी उदार शासकों की प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थी जैसा कि उस समय यूरोप के शासकों में पाई जाती थी। उनके समान ही इन्होंने जनता की स्थिति उन्नत करने की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया, यद्यपि यह केवल राजधानी या प्रांतीय राजधानियों तक ही सीमित रही। मुल्ला और मौलवियों पर भी इनका पूर्ण नियंत्रण था। ये किसी अन्य शक्ति के आधिपत्य में नहीं थे अतः ये पूर्ण प्रभुता-संपन्न सम्राट थे। विद्रोह की आशंका ही केवल इनके ऊपर प्रतिबंध थी। वे अपने आपको ईश्वर का प्रतिनिधि या उसकी छाया के रूप में मानते थे, जिनके कारण धर्म पर भी उनका अधिकार था। साम्राज्य का प्रधान होने के साथ-साथ वह सेना का भी प्रधान सेनापति तथा न्याय-व्यवस्था का प्रधान उद्गम स्रोत भी था। इस प्रकार समस्त शासन पर उसका अधिकार था। मुगल बादशाहों को दोनों के कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था। एक तो राजा के समान उनको अपने राज्य की समस्त जनता का शासन करना पड़ता था तथा दूसरे संप्रदाय विशेष धर्म का प्रतिनिधि तथा धर्म के रक्षक के रूप में कार्य करना पड़ता था।

(2) मंत्रि-परिषद

मुगल शासन में मंत्रि-परिषद की भी व्यवस्था थी, किंतु वह आजकल की मंत्रिपरिषद के समान नहीं थी। प्रधानमंत्री का पद अन्य मंत्रियों की अपेक्षा ऊँचा था। प्रायः सम्राटगं भीर प्रश्नों पर उनसे परामर्श लिया करता था, किंतु उसकी बात मानना या न मानना सम्राट का निजी इच्छा पर निर्भर था। अन्य मंत्रियों का पद प्रधानमंत्री से छोटा था। वास्तव में अन्य मंत्री सचिव थे जिनके अधिकार में एक विभाग होता था। प्रधानमंत्री उनके कार्यों का पुनरावलोकन कर सकता था। यह परिषद राज्य नीति का निर्धारण नहीं करती थीं। इसका प्रमुख कार्य सम्राट को सलाह देना था। वे उसी के प्रति उत्तरदायी था। वे उस समय तक ही

अपने पदों पर आसीन रहते थे जब तक कि वे उनके कृपापात्र थे। वास्तव में योग्य प्रतिभाशाली सम्राट स्वयं अपने प्रधानमंत्री थे और वे ही राज्य की नीति का निर्धारण करते थे। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक मंत्रिमंडल की भाँतिमुगल सम्राटों के पास कोई मंत्रिमंडल न था। उसके मंत्री केवल सचिव-मात्र ही थे जो प्रत्येक कार्य मे राजा की इच्छा के अनुसार आचरण करते थे और साधारण एवं अनुरोध अंतर्निहित चेतना के अतिरिक्त वे सम्राट की नीति को प्रभावित नहीं कर सकते थे। यदि राजा उनकी सलाह को मानने से इन्कार कर देता था तो वे कभी भी त्याग-पत्र नहीं देते थे। अतः सम्राट की इच्छा के अनुसार ही मंत्री लोग राज्य का संचालन करते थे।

(3) शासन के विभिन्न विभाग

बाबर से अकबर तक शासन व्यवस्था के चार विभाग थे। औरंगजेब के शासनकाल में इनकी संख्या 6 कर दी गई और बाद में इनकी संख्या 8 निश्चित की गई। ये विभाग इस प्रकार थे- (1) कोष तथा राजस्व विभाग (दीवान के अधीन), (2) राजकीय गृह-व्यवस्था विभाग (खानेसामां अथवा मीरसामां के अधीन), (3) सैनिकों का वेतन तथा जमा खर्च विभाग (मीर बख्शी के अधीन), (4) न्याय विभाग (दीवानी और फौजदारी-(प्रधान काजी के अधीन), (5) धार्मिक धन, संपत्ति निर्धारण तथा दातव्य विभाग (प्रधान सद्र अथवा सद्रउल सद्रू के अधीन), (6) जनता समाचार निरीक्षरण विभाग (मुहतीब के अधीन), (7) तोपखाना विभाग (मीर आतिश अथवा दरोगा-ए-तोपखाना के अधीन), 8) संवाद, समाचार तथा डाक-विभाग (डाक चौकी के दारोगा के अधीन)। निम्न पंक्तियों मे इन मंत्रियों के कार्यों पर विचार किया जाएगा।

(1) दीवान या प्रधान मंत्री

राजकीय सेवाओं में दीवान का पद सबसे श्रेष्ठ था। इसके अधिकार में कोष तथा राजस्व विभाग रहता था। साधारणतः वह नागरिक अफसर होता था और इसको बहुत कम सैनिक कार्य दिया जाता था। वह सम्राट तथा अन्य मंत्रियों के बीच मध्यस्थता का कार्य संपन्न करता था। सम्राट की अनुपस्थिति में वह उसकी जगह कार्य करता था। समस्त आय-व्यय संबंधी पत्र तथा युद्ध संबंधी पत्र उसके पास आते थे। उसको सब प्रकार के व्यय करने की आज्ञा प्रदान करने का अधिकार था। साधारणतः सम्राट उससे मंत्रणा किया करते थे। अयोग्य शासकों के काल में उसका पद बड़ा महत्वपूर्ण हो गया था और शासन का समस्त भार उसके ऊपर ही रहता था। उसकी सहायता के लिए उसके नीचे दो पदाधिकारी होते थे। जिनमें एक 'दीवाने आम' कहलाता था और दूसरा 'दीवाने खास' कहलाता था। उनका पद तथा उसके कर्तव्यों को समझने के लिए निम्न तथ्यों पर ध्यान देना आवश्यक है- (क) वह बादशाह और शेष अधिकारी जगत के बीच मध्यस्थ का कार्य करता था। (ख) यथार्थतः विशेष प्रकार के अथवा सूक्ष्म विवरण वाले कागजों के अतिरिक्त शेष समस्त प्रकार के कागजों को उसके निरीक्षण के लिए और नियंत्रण के लिए उसके कार्यालय में भेजना पड़ता था। (ग) वह छोटे विभाग को छोड़ड़कर शेष सभी विभागों के भगतानों और व्यवहारों के तथ्यों की जाँच और आलोचना करता था। (घ) उसकी लिखित स्वीकृति के बिना निम्न कोटि के कर्मचारियों, श्रमिकों तथा सेना के निम्न नौकरों को छोड़कर किसी प्रकार की नियुक्ति, पदोन्नति अथवा बड़ा भुगतान नहीं हो पाता था। (च) राज्य के सभी भागों की मालगुजारी के संग्रह एवं व्यय की बागडोर उसी के हाथों मे रहती थी। दीवान द्वारा प्रतिदिन प्रस्तुत किए गए पत्रों के आधार पर ही बादशाह राज्य वित्त की नाड़ी परखता था। प्रायः वह दीवान से धन-संबंधी वितरण को पढ़वाकर इसके संबंध में जानकारी प्राप्त करता था। (छ) एक निश्चित सीमा तक उसे पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी कि वह किस विषय को बादशाह के सामने प्रस्त्त करे और उन पर उसकी आज्ञा प्राप्त करें तथा किस विषय को प्रस्तुत न करें।

(ज) जहाँ तक शासन का प्रश्न था वह राज्य का प्रतिभूति था। उसे समस्त उच्चाधिकारियों की नियुक्ति पर उनको प्रथानुसार छुट्टी देनी पड़ती थी। वह नियमानुसार उनके कर्तव्यों के संबंध में उन पर दोषारोपण तथा उनके प्रांतों के बारे में उनसे सामान्य विवरण भी प्राप्त कर सकता था। (झ) शाही दरबार में वह निरंतर प्रांतीय दीवानों पर नियंत्रण रखता और उनका पथ्मप्रदर्शन करता था। कर विभाग उसका विशेष विभाग था और इन प्रांतीय दीवानों एवं उसके अधीनस्य कर्मचारियों का उससे सीधा संबंध था।(त) अधिकांश दस्तावेजों, (शाह के लेखों अथवा मौलिक आदेशों के विवरणों) की प्रमाणिकता एवं प्रायः सभी सरकारी लेखों की यथार्थ प्रतियों की सत्यता के लिए उसकी मोहर और हस्ताक्षर आवश्यक थे।

(2) खानेसामां अथवा मीरसामां

खानेसामां अथवा मीरसामां के अधीन राजकीय गृहव्यवस्था विभाग था। उसका संबंध सम्राट की घरेलू वस्तुओं से था। सम्राट के समस्त नौकर आदि उसके नियंत्रण में थे। वह सदा सम्राट के पास रहता था और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहता था। वह सम्राट के दैनिक भोजन व्यय आदि का निरीक्षण भी करता था।

(3) मीर बख्शी

मीर बख्शी के अधीन सैनिकों का वेतन तथा आय-व्यय विभाग था। वह मनसबों की नियुक्ति करता था और उनके वेतन का निरीक्षण कर उसका वितरण करता था। वह सेना में सिपाहियों को भर्ती करता था उसके पास एक रजिस्टर होता था जिसमें समस्त मनसबदारों के अधीन रहने वाले सैनिकों की संख्या लिखी रहती थी।

(4) काजीउल-कुजात (प्रधान काजी)

काजीउल-कुजात न्याय विभाग का प्रधान होता था। वह प्रधान काजी (न्यायाधीश) था और उसका न्यायालय सबसे बड़ा न्यायालय था। प्रत्येक बुधवार को वह कचहरी करता था। उसका अन्य काजियों पर नियंत्रण था। वह उनकी नियुक्ति करता था। उनको उन्हें पद से निवृत्त करने का भी अधिकार था वह मुस्लिम कानून के अनुसार निर्णय करता था। उसके अधीन बहुत से काजी होते थे, जिनके निर्णय के विरुद्ध की गई अपीलों को वह सुना करता था। प्रत्येक प्रांत, जिले तथा नगरों में काजी मुकदमें सुनते थे। वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते थे। उसके अधिकार बहुत विस्तृत थे। उस समय न्याय-विभाग में पर्याप्त भ्रष्टाचार था।

(5) सद्रउल-सदूर

सद्रउल-सद्गू के अधीन, धार्मिक धन-संबंधी निर्धारण तथा दातव्य विभाग था। उसका प्रमुख कार्य योग्य धार्मिक व्यक्तियों व संस्थाओं में धन का वितरण करना था। वह मुल्लाओं आदि को जागीर दिया करता था। प्रत्येक प्रांत में एक सद्र होता था जिसकी नियुक्ति सद्रउल सदर किया करता था। यह पद बड़ा लाभदायक था और ये लोग माला-माल रहते थे।

(6) मुहतसीब

मुहतसीब के अधीन जनता का सदाचार निरीक्षण विभाग था। वह मुस्लिम कानून के अनूसार जनता के सदाचार को उन्नत करता था और उनके दोषों को दूर करने की ओर उनका ध्यान आकर्षित करता था। ''उसका काम खीचीं गई शराब अथवा जौ की उत्तेजित शराब, भाँग और मादक द्रव्यों का पीना, जुआ खेलना तथा कुछ विशेष प्रकार के मैथुनों का रोकना था। वह उन मुसलमानों को दंड देता था जो इस्लाम के विरुद्ध विचार रखते थे, पैगंबर में अविश्वास रखते थे और पाँचों वक्त नमाज या रोजे नहीं रखते थे। औरंगजेब के शासनकाल से इसका प्रमुख कार्य हिंदुओं के मंदिर तुड़वाना था।

(7) मीर आतिश

मीर आतिश के अधीन तोपखाना विभाग था और इस विभाग को सुचारू रूप से चलाने का उत्तरदायित्व उस पर ही था। उसके अधिकार में समस्त तोपें और बंद्कें थीं।

(8) डाक चौकी दारोगा

डाक-चौकी के दारोगा के अधीन संवाद समाचार तथा डाक विभाग था। इसके अधिकार में समाचार लेखक, गुप्तचर और संवाद-वाहक थे। इनकी नियुक्ति समस्त राज्य में की जाती थी। डाक तथा सूचना ले जाने के लिए चौकी पर घोड़े रहते थे। इनके द्वारा ही सम्राट को समस्त साम्राज्य की सूचना प्राप्त होती रहती थी।

3.1.5. मुगलकालीन प्रांतीय प्रशासन

मुगलकालीन प्रांतीय प्रशासन इस प्रकार था -

(1) प्रांत

साम्राज्य की उचित शासन-व्यवस्था के लिए मुगलों ने समस्त साम्राज्य को प्रांतों में विभाजित कर दिया था, अन्यथा इतने विस्तृत साम्राज्य पर शासन का होना सर्वथा असंभव था। जागीरदारी प्रथा का अंत करने के उपरांत अकबर का समस्त साम्राज्य 15 सूबों (प्रांतों) में विभक्त था। जहाँगीर के समय में समस्त साम्राज्य 17 सूबों (प्रांतों) में, शाहजहाँ के समय में 22 सूबों (प्रांतों) में और औरंगजेब के समय में 21 सूबों (प्रांतों) में विभक्त था। प्रत्येक प्रांत में निम्न पदाधिकारी होते थे-

(अ) सूबेदार

प्रत्येक प्रांत का मुख्य पदाधिकारी सूबेदार कहलाता था। अकबर के समय में उसको सिपहसालार के नाम से संबोधित किया जाता था, किंतु उसके उत्तराधिकारियों के समय में वह सूबेदार कहलाता था। इसकी नियुक्ति स्वयं सम्राट किया करते थे। अधिकतर इस पद पर राजपरिवार के सदस्य या उससे संबंधित व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती थी। योग्य सेनापित नियुक्त किए जाते थे। इसका प्रमुख कारण यह था कि वह पद बहुत महत्वपूर्ण तथा गौरवमय समझा जाता था। वह उसने समस्त कार्यों के लिए सम्राट के प्रति उत्तरदायी था। वह प्रांतीय शासन का प्रधान होने के साथ-साथ प्रांत की सेना का सेनापित भी था। उस को सम्राट की स्वीकृति प्राप्त किए बिना युद्ध करने या बंद करने व संधि करने का अधिकार नहीं था। वह काजी तथा मीर आदिल के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनता था। प्रांत की शांति तथा सुव्यवस्था का पूर्ण उत्तरदायित्व उसके ऊपर था। यह राजस्व विभाग के कर्मचारियों को मालगुजारी एकत्रित करने में सहायता प्रदान करता था। उसको प्रांत की समस्त महत्वपूर्ण सूचनाओं से सम्राट को समय-समय पर अवगत कराना पड़ता था। उसको धार्मिक-क्षेत्र में कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। उसको विद्रोही जमीदारों का भी दमन करना पड़ता था।

(ब) दीवानी

प्रांत में दूसरा महत्वपूर्ण अधिकारी दीवान था। वह सूबेदार का प्रतिद्वंदी था। ये दोनों एक दूसरे को ईर्ष्या और घृणा की दृष्टि से देखते थे और दोनों एक दूसरे के कार्यों को आलोचनात्मक तथा संदेहात्मक दृष्टि से देखते थे। उसकी नियुक्ति केंद्रीय सरकार द्वारा होती थी और वह केवल उसके प्रति ही उत्तरदायी था। उसका प्रमुख कार्य प्रांत में राजस्व की उचित व्यवस्था करना था। सूबेदार और दीवान में किसी विषय पर मतभेद होने की स्थिति में उसका निर्णय केंद्रीय सरकार द्वारा किया जाता था। उसको कृषि की उन्नित की ओर प्रयत्न करना पडता था।

(स) सद्र

प्रांत का तीसरा पदाधिकारी सद्र कहलाता था। इसकी नियुक्ति भी केंद्रीय सरकार द्वारा की जाती थी। इस पद पर उच्च कोटि का विद्वान तथा उच्च कोटि का आचरण करने वाले व्यक्ति की ही नियुक्ति की जाती थी। उसकी अधीनता में अन्य मीर आदिल कार्य करते थे।

(द) आसिल

प्रांत का चौथा पदाधिकारी आसिल कहलाता था। इसकी नियुक्ति भी केंद्रीय सरकार द्वारा होती थी। उसके कार्य विभिन्न प्रकार के थे। उसको प्रांत में शांति की स्थापना करनी पड़ती थी तथा चोरों और डाकुओं का दमन करना पड़ता था।

(इ) बख्शी

प्रांत का पाँचवां पदाधिकारी बख्शी कहलाता था जिसकी नियुक्ति केंद्रीय शासन द्वारा की जाती थी। उसका प्रमुख कार्य सेना में भर्ती करना, सेना की उचित व्यवस्था करना, सैनिक संगठन आदि करना होता था।

(2) सरकार या जिला

प्रत्येक प्रांत सरकारों में विभाजित था। सरकार का सबसे बड़ा पदाधिकारी फौजदार कहलाता था। वह सरकार में सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता था, किंतु उसको सूबेदार के अनुशासन में रहकर उसके आदेशों के अनुसार कार्य करना पड़ता था। उसकी नियुक्ति स्वयं सम्राट किया करता था। वह उच्च कोटि का मनसबदार होता था। उसका मुख्य कार्य जिले में शांति तथा व्यवस्था की स्थापना करना था। वह जनता, जमीदारों, आदि से सीधा संपर्क बनाए रखता था। उसके नियंत्रण में एक छोटीसी सेना रहती थी, जिसकी सहायता से वह चोरों तथा डाकुओं पर नियंत्रण रखता था तथा छोटे-छोटे विद्रोह का दमन किया करता था। इसके अतिरिक्त सरकार में एक अमीन होता था, जिसका काम लगान वसूल करना था। प्रसिद्ध नगरों में एक कोतवाल होता था, जिसका काम नगर में शांति की स्थापना करना था।

(3) परगना

प्रत्येक सरकार जिला परगनों में विभक्त थी। प्रत्येक परगने मे एक शिकदार, एक आसिल, एक खजांची तथा कुछ अन्य कर्मचारी होते थे।

(4) नगर

नगर के प्रबंध के लिए एक कोतवाल होता था। उसकी नियुक्ति केंद्रीय सरकार द्वारा की जाती थी। वह नगर की पुलिस का प्रधान होता था। उसके मुख्य कार्य निम्नलिखित थे- (1) नगर की रक्षा करना, (2) बाजार पर नियंत्रण रखना, (3) नगरवासियों की संपत्ति की उचित व्यवस्था करना, (4) जनता के चिरत्र को उन्नत करना, (5) अपराधों को रोकना, (6) सामाजिक कुरीतियों का अंत करना, (7) शमशान, बूचड़खानों, कब्रिस्तान इत्यादि का सुचारू प्रबंध करना। उसका पुलिस तथा गुप्तचर विभाग पर नियंत्रण रहता था और उनकी सहायता से वह समस्त बातों की जानकारी प्राप्त कर लेता था। वह महत्तवपूर्ण सूचनाओं से सरकार को अवगत कराता रहता था।

3.1.6. मुगलकालीन सैन्य प्रशासन

ज्ञातव्य है कि मुगलों के साम्राज्य का आधार सैनिक था। वास्तव में वह युग ही ऐसा था जब इसी आधार पर राज्य की सुरक्षा संभव थी। मुगलों ने इसको उन्नत करने की ओर विशेष ध्यान दिया। प्रत्येक कर्मचारी को सैनिक कार्य आवश्यकतानुसार करना पड़ता था। अकबर ने सैनिक संगठन मनसबदारी प्रथा के आधार पर किया।

सेना का स्वरूप

मुगल-सेना निम्न पाँच भागों मे विभक्त थी - (1) अधीन राजाओं की सेना, (2) मनसबदारों की सेना, (3) दाखिली सेना, (4) अहदी सेना, (5) सम्राट की स्थायी सेना।

(1) मनसबदारी प्रथा

मनसबदारी प्रथा भारत के लिए कोई नई बात नहीं थी, क्योंकि दिल्ली के सल्तनत काल में भी हमें इस प्रथा के चिह्न दिखाई देते हैं। शेरशाह और इस्लामशाह की सेना में भी कुछ इसी प्रकार का श्रेणी विभाजन था। अकबर ने इस प्रथा को वैज्ञानिक ढंग से संगठित किया। साधारणतः मनसब का अर्थ पद प्रतिष्ठा या नौकरी है। इस प्रकार मनसबदार वे व्यक्ति होते थे जो राज्य की सैनिक अथवा अन्य प्रकार की सेवा में कार्य करते थे। अकबर के समय में मनसबदार 33 श्रेणियों में विभक्त थे। सबसे नीचे का मनसब 10 का और सबसे ऊँचे का मनसब 12,000 का होता था। 5,000 के ऊपर मनसब राजकुमारों को प्रदान किए जाते थे, किंतु कुछ समय के उपरांत 7,000 तक की मनसबदारों कुछ व्यक्तियों को उनकी राजकीय सेवाओं का ध्यान रखते हुए प्रदान कर दी गई थीं। सैद्धां तिक रूप में प्रत्येक मनसबदार को उतने ही सैनिक रखने पड़ते थे, जितनों का वह मनसबदार था। इनकी नियुक्ति स्वयं सम्राट करता था। यह आवश्यक नहीं कि मनसबदार सर्वप्रथम सब से निम्न श्रेणी का मनसबदार बनाया जाए। यह पद वंशानुगत नहीं था। मनसबदारों के पुत्र को उनकी योग्यतानुसार पद प्राप्त होता था। मनसबदारों को अपने पदों के अनुसार निश्चित हाथी, घोड़े, खच्चर, गाड़ियाँ आदि रखनी पड़ती थीं, किंतु यह संदेहात्मक है कि मनसबदार निश्चित पशु रखता था। इरविन के अनुसार प्रदर्शन तथा दाग की व्यवस्था होते हुए भी स्वीकार करना होगा कि ऐसे मनसबदारों की संख्या कम थी, जो उतने ही घुड़सवार रखते थे जितने के लिए उनको वेतन मिलता था। समस्त मनसबदारों का विभाजन दो भागों में किया गया था- एक वे जो दरबार में उपस्थित रहते थे तथा दूसरे वे जो प्रांतों में रहते थे।

(2) जात और सवार

जात और सवार के अंतर में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। सत्य तो यह प्रतीत होता है कि जात मनसबदार का व्यक्तिगत पद था जिसके साथ सवारों की एक टुकड़ी सिम्मिलित कर दी जाती थी जिसका मनसबदार को अलग से भत्ता मिलता था और यह पद सवार पद कहलाता था। प्रत्येक श्रेणी का पद सवारों की संख्या पर निश्चिय किया गया। 500 से नीचे का मनसबदार प्रथम श्रेणी के अंतर्गत आता था। यदि उसके सवारों की तथा जात की संख्या बराबर हो तो द्वितीय श्रेणी के अंतर्गत उसकी गणना की जाती थी। जिसके सवारों की संख्या से आधी हो और उसकी संख्या तृतीय श्रेणीं के अंतर्गत की जाती थीं यदि सवारों जात की संख्या की आधी से कम हो। इस प्रकार बिना सवार का पद प्राप्त किए जात पद मिल सकता था, किंतु जात के बिना सवार पद नहीं मिलता था।

मनसबदारी प्रथा के दोष

प्राचीन सैनिक व्यवस्था के दोषों को दूर करने के अभिप्राय से इस व्यवस्था का प्रचलन किया गया था। अकबर के शासन-काल में वह व्यवस्था ठीक प्रकार से चलती रही, परंतु उसकी मृत्यु के उपरांत इस व्यवस्था में पर्याप्त दोष उत्पन्न हो गए और इसने मुगल-साम्राज्य के पतन को अग्रसर करने में बड़ा सहयोग प्रदान किया। उसके प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं -

(1) मनसबदारों का नैतिक पतन हो गया था। वे बेईमानी करने लगे थे। उनको जितनी सेना रखनी पड़ती थी, वे उतनी सेना नहीं रखते थे। वे राजकोष से तो पूरा धन ले लेते थे और उसको स्वंय हड़प कर डालते थे। उतने घोड़े भी नहीं रखते थे जितने उसके लिए रखने आवश्यक थे।

- (2) जब राज्य उनसे निश्चित घोड़े माँगता था तो उसी समय में भर्ती करके संख्या की पूर्ति कर लिया करते थे। उनको न युद्ध की दीक्षा होती थी और न शिक्षा ही।
- (3) प्रत्येक मनसबदार का सैनिक शिक्षा का ढंग अपना था जिससे सेना में एकता का अभाव था।
- (4) मनसबदारों में ईर्ष्या और अन्य दोष विद्यमान थे। उनमें युद्ध के समय एकता नहीं रह पाती थी। इस कारण सैन्य संचालन उचित रूप से नहीं हो सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि मुगलसेना विशालकाय तो अवश्य थी, परंतु उनमें प्रशिक्षित सैनिकों का सदा अभाव रहता। इसी कारण सेना में पर्याप्त दोष विद्यमान हो गए।

सेना का विभाजन

मुगल सेना पाँच भागों में विभक्त थी-

(1) पैदल

मुगलों के समय में पैदल सेना का विशेष महत्व नहीं था और इनको वेतन भी कम मिलता था। यह सेना दो भागों में विभक्त थी। (क) अहशाम, (ख) सेहबंदी। इसके पास एक तलवार और छोटा भाला होता था।

(2) घुड़सवार

मुगलों के समय घुड़सवारों का विशेष महत्व था और मुगल सेना में इनकी बहुलता थी। घुड़सवार दो प्रकार के होते थे- (1) बरगीरि- इनको समस्त सामान सरकार से मिलता था और (2) सिलेदार- जिनके अपने घोड़े तथा अस्त्र होते थे। इसका वेतन बरगीरि के वेतन से अधिक था। सम्राट अकबर ने घोड़ों की भर्ती तथा सैन्य-प्रदर्शन के लिए पर्याप्त नियम कर दिए थे। वह घोड़ों का स्वयं निरीक्षण किया करता था।

(3) तोपखाना

मुगलों के पास तोपखाना भी था। बाबर और हुमायूँ ने भी अपने युद्धों में तोपों का प्रयोग किया। यह विभाग आतिश अथवा तोपखानें के दारोगों के अधिकार में था। इसके अंतर्गत वे सिपाही भी सिम्मिलत थे जिनके पास बंद्कें होती थीं। बंद्कें देश में बनाई जाती थीं तथा बाहर से भी मँगाई जाती थीं। मुगल गोलंदाजी में विशेष निपुण नहीं थे। उनको स्मियों तथा यूरोपियनों से सहायता लेनी पड़ती थी। इरविन के अनुसार तोपखाना आलमगीर के समय में अकबर के समय से अधिक सुदृढ़ तथा बहुसंख्यक था।

(4) जल सेना

मुगलों की सेना का चौथा अंग जल सेना थी, किंतु यह विशेष प्रबल तथा शक्तिशाली नहीं थी। मुगलों ने पश्चिमी समुद्रतट की रक्षा का भार अबीसीनियों को तथा जंजीरों के सिद्दियों के अधिकार में दे दिया था, केवल पूर्वी बंगाल में नावों का एक बेड़ा था। नावों द्वारा आवश्यकता के समय हाथियों को उन पर चढ़ाकर ले जाया जाता था। नावों पर तोपें भी रखी जाती थीं। नदी पार करने के लिए नावों का पुल भी बनाया जाता था और उसकी सुरक्षा की व्यवस्था इसी सेना द्वारा की जाती थी।

(5) हस्ति सेना

मुगलों के पास हस्ति सेना भी थी। युद्ध में हाथियों का भी प्रयोग किया जाता था। बड़ी-बड़ी तोपें हाथियों द्वारा ले जाई जाती थी। सेनापित हाथी पर बैठकर युद्ध करते थे तथा समस्त रणक्षेत्र का निरीक्षण करते थे। निदयों को पार करने में भी ये बड़े सहायक सिद्ध होते थे। इस सेना का प्रयोग शत्रु की पैदल पंक्ति को तोड़ने के लिए किया करते थे। इनको उस समय छोड़ा जाता था। जब तोपों का प्रयोग नहीं होता था.

क्योंकि तोपों की घड़घड़ाहट के कारण हाथी भयभीत हो जाते थे और वापस लौटकर अपनी सेना का ही संहार करना आरंभ कर देते थे।

सैनिक व्यवस्था के दोष

मुगलों की सैनिक शक्ति पर्याप्त दृढ़ थी, किंतु उनकी सैनिक व्यवस्था में पर्याप्त दोष विद्यमान थे। मुख्य दोष अग्रलिखित हैं-

- (1) राष्ट्रीय सेना का न होना- मुगलों की सेना राष्ट्रीय नहीं थी, वरन् वह एक प्रकार की खिचड़ी थी, जिनमें विभिन्न प्रकार के लोग सम्मिलित थे।
- (2) सैनिकों का सम्राट के प्रति उत्तरदायी न होना- सैनिक सम्राटों के प्रति उत्तरदायी नहीं थे वरन् वे अपने को अपने मनसबदारों के प्रति उत्तरदायी समझते थे जिनमें पर्याप्त मतभेद रहता था।

3.1.7. मुगलकालीन न्याय प्रशासन

(1) न्याय का महत्व

न्याय विभाग शासन का प्रधान अंग होता है। सरकार को इस ओर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि इसके द्वारा ही राज्य निर्बल व्यक्तियों की शक्तिशाली व्यक्तियों से रक्षा करता है।

(2) निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था

अकबर ने इस विभाग की ओर विशेष ध्यान दिया। समस्त मुगल सम्राटों को अपनी न्यायप्रियता पर गर्व था और वास्तव में वे जनता की फरियाद सुनने को प्रत्येक समय उद्यत रहते थे। कुछ सम्राटों ने इसकी विशेष व्यवस्था की थी। जहाँगीर ने तो एक सोने की जंजीर दुर्ग के बाहर लटकवाई थी जिसको खीचनें का अधिकार सिर्फ फरियादी को था। उसकी आवाज सुनते ही सम्राट फरियाद सुनता था और निर्णय किया करता था।

(3) सम्राट न्याय का स्रोत था और साम्राज्य का उच्चतम न्यायाधीश था।

प्रत्येक व्यक्ति को निम्न न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील करने का अधिकार प्राप्त था। महत्वपूर्ण मुकदमे सीधे सम्राट के न्यायालय में उपस्थित किए जाते थे। न्याय के लिए दिन निश्चित थे।

(4) अन्य अधिकारी

सम्राट के नीचे सदर-ए-सुदूर होता था जो माल तथा धन-संबंधी मामलों का निर्णय करता था। दूसरा काजी-उल-कुजात होता था। यह प्रधान काजी था। अधिकतर ये दोनों पद एक ही व्यक्ति के हाथ में रहते थे। उसके ऊपर ही समस्त न्याय का संचालन तथा उचित व्यवस्था की स्थापना का उत्तरदायित्व था। उसकी नियुक्ति-सम्राट करता था और वह अपने पद पर उसी समय तक आसीन रह सकता था जब तक की सम्राट का उस पर विश्वास हो।

(5) योग्यता नियुक्ति का आधार

अब तक प्रमुख काजी की मुख्य योग्यता इस्लामी धर्मशास्त्र का ज्ञान तथा संकीर्ण धार्मिक विचारधारा ही समझी जाती थी, किंतु अकबर ने इस पद पर ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करना आरंभ किया, जिनके धार्मिक विचार उदार थे तथा उनकी सभी मत तथा सांप्रदायों के लोगों के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी।

(6) न्यायधीशों का कार्य

प्रधान काजी सम्राट की अनुमित से प्रांतों, जिलों और नगरों में काजियों की नियुक्ति करता था। प्रत्येक न्यायालय में एक काजी, एक मुफ्ती और अदल होता था। काजी का कार्य मामले की जाँच करना, मुफ्ती का कार्य कानून की व्यवस्था करना तथा मीर अदल का कार्य फैसला सुनाना था। इनको राज्य की ओर से यह आदेश था कि वे निष्पक्ष निर्णय करें, किंतु ऐसा कम होता था। क्योंकि काजियों का स्तर उन्नत नहीं था।

(7) कार्य प्रणाली तथा न्याय व्यवस्था

साधारणः कुरान के नियमों के अनुसार न्याय किया जाता था, किंतु हिंदुओं के मामलों में उनके रीति-रिवाज आदि का ध्यान रखा जाता था। दंड व्यवस्था कठोर थी। अंग भंग का दंड भी दिया जाता था और जुर्मानों की धन राशि बहुत होती थी। विद्रोह तथा धन संबंधी मुकदमों में फाँसी की धन राशि बहुत अधिक थी। विद्रोह तथा धन संबंधी मुकदमों में फाँसी की सजा तथा जेल की सजा भी दी जाती थी। गाँव में न्याय की उचित व्यवस्था नहीं थी। वहाँ के लोग अपने मामलों का अपनी पंचायतों में ही निर्णय कर लिया करते थे।

(8) धार्मिक सहिष्णुता का निर्माण

औरंगजेब ने न्याय-व्यवस्था को उन्नत करने के अभिप्राय में 2 लाख रूपये व्यय करके इस्लाम धर्म के आधार पर संहिता का निर्णय करवाया जिससे काजियों को विशेष कठिनाई का अनुभव नहीं करना पड़ा। यह फतुवाये आलमगीरी के नाम से प्रसिद्ध है। यह उनकी नियुक्ति के समय निष्पक्ष रहने का आदेश देता था और उनसें शीघ्र न्याय की आशा करता था।

न्याय-व्यवस्था के दोष

मुगलों की धार्मिक न्याय-व्यवस्था में सबसे बड़ा दोष यह था कि काजियों का स्तर उन्नत नहीं था। वे धन के लालच में आकर न्याय का गला घोटतें थे, यद्यपि उनसे निष्फल होने की आशा की जाती थी, परंतु वे अपने अधिकारों का कुपयोग करते थे। न्यायालयों का संगठन भी उन्नत नहीं था। मुकदमों की लिखा पढ़ी की कोई विशेष व्यवस्था नहीं थी। इससे काजियों को मनमानी करने का अवसर प्राप्त होता था। दंड विधान बड़ा कठोर था और गाँवों के लिए न्याय की कोई व्यवस्था ही नहीं थी। न्याय-विधान का भी सर्वदा अभाव था। काजी के ऊपर ही सब कुछ निर्भर था। अधिकतर इस्लाम के कानूनों के अनुसार निर्णय करने की व्यवस्था थी।

3.1.8. सारांश

मुगलों की शासन-व्यवस्था की विशेषताएँ

(1) विदेशी प्रभाव, (2) सैनिक शासन, (3) भूमिकर की प्राचीन व्यवस्था, (4) राज्य एक उत्पादक के रूप में, (5) केंद्रीय निरंकुश शासन, (6) आधुनिक नियमों का प्रभाव, (7) सामाजिक कार्यों से उदासीनता, (8) धर्म से प्रभावित राज्य, (9) उत्तराधिकार के नियम का प्रभाव।

मुगलों के शासन की केंद्रीय व्यवस्था

(1) सम्राट का सर्वोच्च स्थान, (2) सम्राट पर कोई प्रतिबंध नहीं, (3) सम्राट को सलाह देने के लिए मंत्रि, शासन के विभागों की व्यवस्था-राजस्व दीवान या प्रधानमंत्री, राजकीय गृहमंत्री खानेसामां, सैनिक मीरबख्शी, न्याय प्रधान काजी, धार्मिक व धन-संबंधी अद्गउल-सदर, जनता व समाचार मुहतसीब, तोपखाना मीरआतिश, सम्वाद समाचार डाक चौकी का दारोगा।

मुगलों की प्रांतीय व्यवस्था

साम्राज्य के विभाग - (1) प्रांत (2) सरकार या जिला, (3) परगना, (4) नगर। (क) प्रांत का प्रबंध (1) औरंगजेब के समय तक मुगल साम्राज्य के 21 प्रांत, (2) प्रत्येक प्रांत का सर्वोच्च अधिकारी सूबेदार, (3) दूसरा महत्वपूर्ण अधिकारी दीवान -राजस्व व्यवस्था के लिए जो सीधा सम्राट के प्रति उत्तरदायी था, (4) सम्राट द्वारा काजी व मीर आदिल के कार्यों की देखभाल, (5) शांति तथा सुरक्षा के लिए आमिल की

नियुक्ति, (6) सेना मे भर्ती के लिए बख्शी। (ख) सरकार या जिले का प्रबंध- (1) प्रांत का सरकार व जिलों में विभाजन, (2) सरकार का सर्वोच्च अधिकारी फौजदार, (3) राजस्व की वसूली के लिए आमिल, (4) प्रसिद्ध नगरों में कोतवाल। (ग) परगने का प्रबंध- (1) जिला या सरकार परगनों मे विभाजित, (2) शिकदार, आमिल, खजांची आदि के द्वारा प्रबंध। (घ) नगर का प्रस्ताव- नगर के सभी कार्यों की देखभाल के लिए नगर स्तर पर सर्वोच्च अधिकारी कोतवाल था।

मुगलकालीन सैन्य प्रशासन

सेना के अंग- (1) मनसबदारी सेना, (2) दाखिली सेना, (3) अहदी सेना, और (4) स्थाई सेना। सेना का विभाजन (1) पैदल, (2) घुड़सवार, (3) तोपखाना, (4) जल सेना और (5) हस्ति सेना। सैनिक व्यवस्था में दोष- (1) राष्ट्रीय सेना का न होना, (2) सैनिको में उत्तरदायित्व की भावना का अभाव।

मुगलकालीन न्याय प्रशासन

(1) सम्राट न्याय का स्रोत, (2) अकबर द्वारा निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था, (3) जहाँगीर तथा शाहजहाँ के काल में भी उचित न्याय व्यवस्था, (4) न्याय-दंड में दंड की कठोरता, (5) औरंगजेब द्वारा न्याय कुरान के आधार पर, (6) धार्मिक संहिता का निर्माण। दोष- (1) काजियों का निम्न स्तर, (2) अधिकारियों द्वारा अधिकारों का कुएयोग, (3) लिखित व्यवस्था का दोष, (4) न्याय विधान का अभाव, (5) काजी की मनमानी, (6) इस्लाम धर्म पर आधारित कानून।

3.1.9. बोध प्रश्न

3.1.9.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

- 1. मुगल प्रशासन की दो विशेषताएँ बताइए।
- 2. मुगल प्रशासन पर विदेशी प्रभाव बताइए।
- 3. मुगल प्रशासन में सम्राट का क्या स्थान था?
- 4. मुगल प्रशासन में मंत्री परिषद का क्या स्थान था?
- 5. मुगल प्रशासन में मुख्य विभाग कौन से थे?
- 6. मुगल प्रशासन में प्रधानमंत्री के अधिकार और कर्तव्यों पर प्रकाश डालिए।
- 7. मुगल प्रशासन में सूबेदार के अधिकार और कर्तव्यों पर प्रकाश डालिए।
- 8. मुगल प्रशासन में सरकार अथवा जिले पर टिप्पणी लिखिए।
- 9. मुगल प्रशासन में परगना एवं नगर पर टिप्पणी लिखिए।
- 10. मुगल कालीन सेना के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

3.1.9.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- 1. मुगल प्रशासन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
- 2. मुगलकालीन केंद्रीय प्रशासन का वर्णन कीजिए।
- 3. मुगलकालीन प्रांतीय प्रशासन का वर्णन कीजिए।
- 4. मुगलकालीन सैन्य प्रशासन का वर्णन कीजिए।
- 5. मुगलकालीन न्याय प्रशासन का वर्णन कीजिए।
- 6. मनसबदारी प्रथा की विस्तृत विवेचना कीजिए।

3.1.10. संदर्भ-ग्रंथसूची

- 1. मजूमदार तथा पुसलकर : दी मुगल एम्पायर, भारतीय विद्या भवन, बम्बई।
- 1. एलन, हेग, डाडवेल : दी कैम्ब्रिज शार्टर हिस्टरी ऑफ इण्डिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1934।
- 2. भारद्वाज, दिनेश: मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, 1982
- 3. मेहरा, उमाशंकर: मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, आगरा, 1982
- 4. लूनिया, बी.एन. : मुगल साम्राज्य का उत्कर्ष, कमल प्रकाशन, इन्दौर, 1980
- 5. श्रीवास्तव, ए. एल : मुगल कालीन भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1980
- 6. श्रीवास्तव, ए. एल : मध्यकालीन संस्कृति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1980
- 7. सिन्हा, बी. बी : मध्यकालीन भारत, ज्ञानदा प्रकाशन, पटना, 1981
- 8. मजुमदार, रायचौधरी एवं दत्त, भारत का बृहत् इतिहास, भाग 2

खंड-3: मुगलों की प्रशासनिक, आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक नीतियाँ इकाई-2: आर्थिक स्थिति

इकाई की रूपरेखा

- 3.2.1. उद्देश्य
- 3.2.2. प्रस्तावना
- 3.2.3. मुगलकालीन आर्थिक स्थिति
- 3.2.4. राज्य का आर्थिक विभाजन
- 3.2.5. मुगलकालीन उद्योग
- 3.2.6. मुगलकालीन औद्योगिक नगर
- 3.2.7. मुगलकाल में वस्तुओं के मूल्य
- 3.2.8. औरंगजेब के उपरांत आर्थिक स्थिति
- 3.2.9. राष्ट्रीय आय
- 3.2.10. समाज की आर्थिक स्थिति
- 3.2.11. सारांश
- 3.2.12. बोध प्रश्न
- 3.2.13. संदर्भ-ग्रंथ

3.2.1. उद्देश्य

मुगल जाति तुर्क तथा मंगोल जातियों के सम्मिश्रण का परिणाम है। मंगोल पर्याप्त समय तक एशिया में शासन करते रहे और उनके पतन के उपरांत तुर्कों के अधिकार में शासन सत्ता आई। इन दोनों जातियों के पारस्परिक संबंध से मुगल जाति का उदय हुआ। बाबर से लेकर बहादुरशाह जफर तक 1526 ई. से 1857 ई. तक मुगलों ने भारत पर शासन किया, जिसमें अकबर से औरंगजेब तक संपूर्ण भारत पर मुगलों का आधिपत्य रहा। अपने विस्तृत भूभाग पर उचित प्रशासन बनाए रखने हेतु मुगलों ने अपनी आर्थिक स्थिति को विभिन्न प्रकार से सुदृढ़ बनाया। इस इकाई का उद्देश्य मुगलकालीन आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालना है।

3.2.2. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में मुगलकालीन आर्थिक स्थिति, उद्योग धंधों, व्यापार, कृषि, लगान व्यवस्था, टोडरमल के सुधार एवं सुधारों के परिणाम राष्ट्रीय आय एवं मुगलकालीन समाज के आर्थिक वर्गीकरण, औद्योगिक नगरों, स्त्रियों की दशा एवं इस विभाग के पदाधिकारियों की विस्तृत विवेचना की गई है।

3.2.3. मुगलकालीन आर्थिक स्थिति

बाबर और हुमायूँ के समय की आर्थिक दशा का बहुत कम उल्लेख मिलता है। ज्ञात स्रोतों के आधार पर यह अवश्य स्वीकार किया गया है कि वस्तुओं के दाम अधिक नहीं थे और जनता का जीवन साधारण था। शेरशाह ने आर्थिक सुधार कर साधारण जनता की आर्थिक स्थित में कुछ परिवर्तन अवश्य किया। इसके शासनकाल में व्यापार और कृषि के क्षेत्र में उन्नित हुई, किंतु अंतिम सूखंश के शासकों के समय में शासन में शिथिलता उत्पन्न हो जाने के कारण व्यापार और कृषि को बड़ा आघात पहुँचा, किंतु

अकबर ने अपनी नीति से देश में शांति और सुव्यवस्था की स्थापना कर व्यापार और कृषि को प्रोत्साहन प्रदान करने का भागीरथ प्रयत्न किया। उसके प्रयत्नों का फल उसके उत्तराधिकारी जहाँगीर तथा शाहजहाँ ने भोगा। जिनका काल विशेष गौरवमय था, किंतु समस्त गौरव सम्राट तथा उच्च कुल के व्यक्तियों तथा बड़े-बड़े पदाधिकारियों तक ही सीमित था। औरंगजेब के शासन काल में उसकी नीति ने जनता में असंतोष का प्रचार किया जिसके कारण उसके समय में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हुई और साम्राज्य का अधिकांश धन युद्धों में व्यय किया गया और जनता की आर्थिक अवस्था को उन्नत करने की ओर तिनक भी प्रयास नहीं किया। उत्तरकालीन मुगल सम्राटों के समय में भारत की आर्थिक दशा का दिन-प्रति-दिन हास होना आरंभ हो गया, किंतु इतना अवश्य है कि मुगलों के समय में वस्तुओं का मूल्य बहुत कम था और इसी कारण साधारण व्यक्ति साधारणः समय में अपनी आवश्यकताओं की वस्तुएँ सरलता से जुटाने में सफल हो सकता था। यह सत्य है कि निम्न वर्ग की आर्थिक अवस्था अधिक उन्नत नहीं थी और उनको कठिनाई का सामना करना पड़ता था।

3.2.4. राज्य का आर्थिक विभाजन

आर्थिक दृष्टि में भारत की जनता को विभक्त किया जा सकता है, जो इस प्रकार हैं -

- (1) प्रथम श्रेणी इस श्रेणी के अंतर्गत स्वयं सम्राट, राजपूत राजा जिन्होनें मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी और जो उत्तम पदों पर आसीन थे तथा अन्य उच्च पदाधिकारी तथा मनसबदार थे। इन सबकी आर्थिक अवस्था बहुत उन्नत थी। सम्राट की आय का तो कोई ठिकाना ही नहीं था और इसी कारण से बहुत ही शान-शौकत तथा ठाट-बाट का जीवन व्यतीत करते थे। वे अपना समस्त धन आमोद प्रमोद तथा भोग-विलास में व्यय करते थे। वे अपने धन को बचाने का तिनक भी प्रयत्न नहीं करते थे। क्योंकि उनकी मृत्यु के उपरांत उनकी समस्त संपत्ति पर राज्य का अधिकार हो जाता था।
- (2) द्वितीय श्रेणी इस श्रेणी के अंतर्गत बड़े व्यापारी तथा मध्य वर्ग के राजकीय व्यक्ति होते थे। मुगल काल में व्यापार की पर्याप्त उन्नति होने के कारण व्यापारी वर्ग की आर्थिक स्थिति उन्नत थी। मध्यम वर्ग के राजकीय कर्मचारियों का वेतन भी पर्याप्त था। अच्छे जीवन स्तर के लिए उनके पास धन का अभाव नहीं था, किंतु जब वे अपने से ऊँची श्रेणी के व्यक्ति का अनुकरण करना आरंभ कर देते थे तो उनको आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता था, किंतु साधारणतः उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी।
- (3) तृतीय श्रेणी इस श्रेणी के अंतर्गत छोटे राजकीय कर्मचारी तथा छोटे दुकानदार थे। इस श्रेणी के व्यक्तियों की आय साधारणः जीवन व्यतीत करने के लिए पर्याप्त थी। राज्य में कुछ ऐसे स्थान थे जहाँ रिश्वत आदि लेने का अवकाश मिल सकता था। ऐसे लोगों की आय पर्याप्त हो जाती थी, किंतु राज्य कर्मचारियों के भय के कारण ये उच्च कोटि का जीवन व्यतीत नहीं करते थे।
- (4) चौथी श्रेणी इस श्रेणी के अंतर्गत मजदू, कारीगर, और किसानों की गणना होती थी। इनकी स्थिति अच्छी नहीं थी। मजदूों की बहुत अधिकता थी, जिसके कारण उनको उचित पारिश्रमिक नहीं मिलता था और बहुधा उनको बेगार करने के लिए बाध्य किया जाता था। साधारण समय में किसानों की दशा अच्छी थी, किंतु अकाल आदि के समय उनकी दशा बहुत ही शोचनीय हो जाती थी और उनको अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता था। शेरशाह तथा अकबर ने किसानों की स्थिति को उन्नत करने का भरसक प्रयास किया, किंतु सिंचाई के उपयुक्त साधन तथा दैविक प्रकोपों के कारण उनके सुधार शिथिल पड़ जाते थे।

3.2.5. मुगलकालीन उद्योग

भारत की अधिकांश जनता राजकीय सेवा के अतिरिक्त कृषि एवं उद्योग-धंधे भी करती थी, जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं -

(1) कृषि

भारत एक कृषि-प्रधान देश था और इस कारण भारत की अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर थी। यह लोगों का मुख्य उद्यम था। बाबर और हुमायूँ को अपने जीवनकाल मे कृषि की उन्नित करने के अवकाश प्राप्त नहीं हुए और उन्होंने इस ओर तिनक भी ध्यान नहीं दिया। शेरशाह इस युग में प्रथम शासक था, जिसने किसानों के साथ सद्व्यवहार किया और उनकी दशा को उन्नित करने का प्रयास किया। अकबर ने भी इस ओर विशेष ध्यान दिया और उसके उत्तराधिकारियों ने भी उसकी ही नीति के अनुसार आचरण किया, किंतु भारतीय किसान अपने पुराने औजारों से प्राचीन प्रथा के अनुसार ही कार्य करता था, जिससे भूमि की उत्पादन शक्ति में कोई विशेष अंतर नहीं हो पाया। सिंचाई के पर्याप्त साधनों के अभाव में तथा दैवी प्रकोपों के कारण बहुधा अकाल पड़ते रहते थे और किसानों को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता था। किसान गेहूँ, जौ, बाजरा, मक्का, गन्ना, ज्वार, तिलहन, कपास, नील, दाल आदि की उपज करता था। बंगाल और बिहार में चावल, नील, गन्ना आदि अधिकतर उत्पन्न किए जाते थे। गमनागमन के साधनों के अभाव में माल एक स्थान से दूसरे स्थान को बहुत कम भेजा जा सकता था जिसके कारण अकाल-ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता उतनी नहीं हो पाती थी, जितनी होनी चाहिए थी।

(2) व्यापार

मुगलों के समय में बड़ी उन्नित हुई। इस समय भारत का विदेशों से भी व्यापार था तथा आतंरिक व्यापार भी उन्नत अवस्था में था। बाह्य व्यापार के कारण पश्चिम के नगरों ने विशेष उन्नित की इनमें सूरत विशेष प्रसिद्ध था। भारत से अन्य देशों को सूती और रेशमी वस्त्र, नील, काली मिर्च तथा अन्य मसाले भेजे जाते थे और दूसरे देशों से सोना, चाँदी, ताँबा, बहुमूल्य पत्थर, आदि मँगाए जाते थे। इसी व्यापार के कारण यूरोप की कुछ जातियों ने भारत में अपनी कोठियों की स्थापना की। मुगलों ने व्यापार की वृद्धि के उद्देश्य से सड़कों की सुरक्षा की ओर ध्यान दिया। सड़कों पर वृक्ष लगवाए और उन पर अनेक सराये भी बनाईं, जिनमें यात्री रात्रि के समय में ठहर सकते थे। इस व्यापार के कारण विभिन्न उद्योगों में बड़ी वृद्धि हुई और भारत में अच्छे से अच्छा सामान तैयार किया जाने लगा। इससे कारीगरों तथा व्यापारी वर्ग के साथ-साथ राजकीय आय में बड़ी वृद्धि हुई और देश समृद्धशाली बन गया। भारत में बहुत अच्छा धातु तथा लकड़ी का काम होता था।

3.2.6. मुगलकालीन औद्योगिक नगर

व्यापार तथा उद्योग धंधों की वृद्धि के कारण औद्योगिक नगरों का महत्व बहुत बढ़ गया और वे समृद्धशाली हो गए। सूरवंश के शासन-काल में लाहौर बड़ी उन्नत अवस्था में था। इस्किन के अनुसार-शेरशाह और इस्लामाशाह के समय में लाहौर एक बड़ा संपन्न व समृद्धशाली नगर था। वह व्यापार का बहुत बड़ा केंद्र था और वहाँ प्रत्येक उपयोगी वस्तु तथा लाभप्रद वस्तु सरलता से प्राप्त हो सकती थी। सन् 1585 ई. में फिट ने लिखा कि आगरा और फतेहपुरी दो बड़े नगर हैं। दोनों ही नगर अलग-अलग लंदन नगर में बहुत बड़े और अधिक जनसंख्या वाले हैं। आगरा और फतेहपुर के मध्य केवल बारह मील की दूरी है और समस्त रास्ते में रसद और अन्य वस्तुओं से परिपूर्ण बाजार है। ऐसा ज्ञात है कि मनुष्य एक नगर में है और अधिक व्यक्तियों के कारण ऐसा पता चलता है कि मनुष्य अभी भी बाजार में है। टैरी का कथन पंजाब के संबंध में इस प्रकार है कि यह अत्यंत बड़ा तथा उपजाऊ है। इसका प्रधान नगर लाहौर है

जिसमें मनुष्य तथा धन की बहुलता है। यह नगर व्यापारिक केंद्र है और व्यापारिक दृष्टि से इसका महत्व बहुत अधिक है। लाहौर के अतिरिक्त खानदेश में बुरहानपुर भी एक प्रसिद्ध नगर था। अहमदाबाद की प्रशंसा अबुल फजल ने की है। उसके अनुसार यह नगर उच्च कोटि का तथा समृद्धशाली है। इसके अतिरिक्त पूर्वी भारत में बनारस, पटना, राजमहल, बर्दुवान ढाका विशेष उल्लेखनीय एवं समृद्धशाली नगर थे। काबुल भी इस समय उन्नत अवस्था में था; क्योंकि यह मध्य एशिया और भारत के व्यापार का केंद्र था।

3.2.7. मुगलकाल में वस्तुओं के मूल्य

मुगलों के समय में वस्तुओं का मूल्य बहुत कम था, जिसके कारण साधारण व्यक्ति भी अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को सरलता से जुटानें मे सफल हो सकता था। यह सत्य है कि निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति अधिक उन्नत नहीं थी और उनको कठिनाई का सामना करना पड़ता था।

क्र.	वस्तुएँ	प्रति मनमूल्य (दामों में)
1.	गेंहूँ गेहूँ का आटा	12
2.	गेहूँ का आटा	22
3.	मोटा आटा	15
4.	जौ	8
5.	जौ का आटा	11
6.	बाजरा	6
7.	बढ़िया धान	100
8.	साठी (मोटा चावल)	20
9.	ज्वार	10
10.	चना	161/2
11.	सरसों	10
12.	तिल्हन	6
13.	घी	105
14.	मूँग	18
15.	तेल	80
16.	दूध	23
17.	दही	18
18.	बढ़िया गुड़	6

किंतु भूखों की संख्या का अभावसा था। अबुलफजल ने मजदूों के वेतन को बहुत कम बतलाया है। उसके साथ-साथ उसने वस्तुओं के मूल्य की एक विस्तृत सूची भी दी है। दोनों पर ध्यानपूर्वक विचारकर इस परिणाम पर अवश्य पहुँचना होगा कि साधारण जीवन सुखमय था। साधारण मजदूर की प्रतिदिन 9 दाम (आधुनिक 4/5 आने) मिलते थे और कुशल मजदूर को 7 दाम (आधुनिक 3 आने) मिलते थे। वस्तुओं के भाव उपरोक्त तालिका के अनुसार थे।

इसके अतिरिक्त सब्जी, गोश्त, पशु आदि का मूल्य भी पर्याप्त कम था। इस प्रकार साधारण जनता की आय भी कम थी। कुछ इतिहासकारों की यह धारणा है कि उस समय के साधारण व्यक्ति का जीवन आज के साधारण व्यक्ति के जीवन से अच्छा था किंतु मोरलैंड के अनुसार साधारण जनता दुखी थी, क्योंकि उसकी आय बहुत कम थी।

3.2.8. औरंगजेब के उपरांत आर्थिक स्थिति

औरंगजेब के शासन-काल के अंतिम चरणों में ही भारतीयों की आर्थिक स्थिति शोचनीय होने लगी थी। उसका प्रमुख कारण यह था कि साम्राज्य में चारों ओर अशांति, कलह एवं विद्रोह फैल गया। इसका प्रभाव भारत के उद्योग-धंधों पर विशेष रूप से पड़ा। उसकी मृत्यु के उपरांत तो स्थिति और भी भयंकर हो गई। साम्राज्य में बहुत से युद्ध हुए। नादिरशाह और अहमदशाह शब्दावली के आक्रमणों ने स्थिति को और भी गंभीर कर दिया। नादिरशाह भारत से अतल धन लेकर गया। इधर मराठों ने उत्तरी भारत में आक्रमण करने आरंभ कर दिए। इन सब का प्रभाव बहुत बुरा हुआ और जनता का अत्यधिक शोषण किया गया। बंगाल में ठेकेदारी की व्यवस्था के कारण किसानों को बहुत अधिक कष्टों का सामना करना पड़ा। बाद में वारेन हेस्टिंग्स तथा लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल की दशा को उन्नत करने का अवश्य प्रयास किया, किंतु स्थिति कुछ विशेष उन्नत नहीं हो पाई।

3.2.9. राष्ट्रीय आय

अर्थ, शासन की रीढ़ होती है और भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में राज्य की राष्ट्रीय आय का मुख्य साधन कृषि था, यद्यपि राज्य की आय के अन्य साधन चूंगी, टकसाल उत्तराधिकारी का नियम, लूट का माल, भेंट आदि भी थे, किंतु मुख्य साधन कृषि ही थी।

3.2.9.1. लगान व्यवस्था

- (1) प्रारंभिक शासकों के काल में बाबर और हुमायूँ के शासनकाल में प्राचीन प्रथा के अनुसार ही लगान व्यवस्था थी। उन्होंने कोई परिवर्तन नहीं किया। उस समय मालगुजारी प्रथा थी। उन्होंने उसको ही अपनाया और किसी प्रकार की नाप-तौल या जाँच कराए उसको वसूल करवाना आरंभ किया।
- (2) शेरशाह के काल में शेरशाह ने उसमें आवश्यक परिवर्तन करवाए और उसको सुव्यवस्थित करने की ओर प्रयास किया, जिसके कारण जनता और राज्य दोनों को पर्याप्त लाभ प्राप्त हुआ। उसकी व्यवस्था का वर्णन पिछले एक अध्याय में विस्तारपूर्वक किया जा चुका है। यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उसने भूमि की नाप-तोल कराई और उपज का ध्यान रखकर लगान की दर निश्चित की, किंतु उसकी मृत्यु के उपरांत भारत की दशा में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई और उसकी व्यवस्था समाप्त हो गई।
- (3) अकबर के काल में अकबर के राज्य सिंहासन पर आसीन होने से पूर्व समस्त भूमि दो भागों में विभक्त थी- (क) खालसा और (ख) जागीर। खालसा भूमि सम्राट के अधिकार में थी और वहाँ से राज्य सीधे रूप में लगान वसूल करता था। जागीर भूमि पर जागीरदारों तथा अमीरों का अधिकार था, जो एक निश्चित धनराशि सरकार को मालगु जारी के रूप में प्रदान किया करते थे।

3.2.9.2. अकबर के कृषि-संबंधी सुधार

- (क) शेरशाह का अनुयायी यद्यपि अकबर एक मौलिक सुधारक नहीं था और वह शेरशाह का अनुगामी था, किंतु उसने इस दिशा में परिवर्तन कर एक नई शासन व्यवस्था का प्रचलन करवाया जिसनें प्राचीन व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन कर दिया।
- (ख) अनुभवी व्यक्तियों की नियुक्ति अकबर को विशेष एवं अनुभवी व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त हुईं, जिनमें ख्वाजा मजीद दीवान थे। अनुमान के आधार पर विभिन्न सरकारों में लगान लगाया जाता था,

किंतु इससे विशेष लाभ नहीं हुआ। जब मुजफ्फर खाँ सन् 1564 ई. में दीवान के पद पर आसीन हुए और राजा टोडरमल उनके सहायक हुए तो भूमिकर को निश्चित करने का दूसरी बार प्रयास किया गया, किंतु इससे भी कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। सन् 1573 में अकबर के अधिकार में गुजरात का प्रदेश आया और वहाँ उसने टोडरमल को भेजा।

- (ग) राजा टोडरमल तथा भूमि व्यवस्था राजा टोडरमल ने वहाँ भूमि-व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने भूमि की नाप-तौल करवाई और भूमि के क्षेत्रफल तथा उसकी उत्पादक शक्ति का ध्यान रख कर भूमिकर निश्चित की। सन् 1482 में राजा टोडरमल दीवान के पद पर आसीन हुए और उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर इस ओर ध्यान दिया। उनके सम्मुख निम्न पाँच समस्याएँ थी और उनका समाधान करने के उपायों पर बड़ी योग्यता के साथ विचार किया- (1) कृषि योग्य भूमि की ठीक-ठाक नापतोल करवाना, (2) कृषि योग्य भूमि का वर्गीकरण, (3) प्रत्येक बीघे की औसत का ज्ञान प्राप्त करना, (4) बीघे का उपज में राज्य के भाग को निश्चित करना तथा (5) राज्य के भाग का मूल्य निश्चित करना जिससे प्रजा लगान नकद रूपये के रूप में दे सके।
- **3.2.9.3. टोडरमल द्वारा समस्याओं का समाधान** उपरोक्त पाँचों समस्याओं का राजा टोडरमल ने निम्न उपायों से समाधान किया -
- (1) कृषि-योग्य भूमि की ठीक-ठीक नापतोल करवाना अकबर ने जमीन की नाप-तोल सन की रस्सी के स्थान पर बाँसों में लोहे छल्ले डालकर जरीबों द्वारा करवानी आरंभ की। सन की रस्सी गरम और ठंडे मौसम में घट और बढ़ जाती है। इसके द्वारा समस्त कृषि-योग्य भूमि की नापतोल करवाई गई। इससे नाप-तोल में किसी प्रकार की गड़बड़ होने का भय नहीं रहा। यह नाप पटवारी के कागजों में लिख दी गई। (2) भूमि का वर्गीकरण कृषि योग्य संपूर्ण भूमि चार श्रेणियों में विभक्त कर दी गई। इस विभाजन का आधार भूमि की किस्म अथवा उसका उपजाऊपन न होकर काश्त का होना था। (क) पोलज प्रथम श्रेणी के अंतर्गत की भूमि पोलज कहलाती थी जिस पर सदैव काश्त होती थी और वर्ष में कभी भी परती नहीं छोड़ी जाती थी। (ख) परौती द्वितीय श्रेणी के अंतर्गत की भूमि परौती कहलाती थी। यह भूमि प्रथम श्रेणी की भूमि की अपेक्षा कम उर्वर थी। इस भूमि पर दो तीन वर्ष निरंतर खेती करने के उपरांतएक आध वर्ष के लिए परती छोड़ी जाती थी जिससे भूमि पुनः अपनी उर्वरा शक्ति प्राप्त कर सके। (ग) चाचर तृतीय श्रेणी के अंतर्गत चाचर भूमि थी। इसकी उत्पादन शक्ति प्रथम दो श्रेणी की शक्ति से कम होती थी। यह भूमि उर्वरा शक्ति प्राप्त करने के लिए चार वर्ष तक के लिए परती छोड़ दी जाती थी। (घ) बंजर यह चौथी श्रेणी की भूमि के अंतर्गत थी। इसकी उत्पादन शक्ति बहुत कम हो जाती थी। उर्वरा शक्ति की प्राप्ति के लिए यह भूमि पाँच छह वर्ष तक परती छोड़ दी जाती थी। इसको अपनी उर्वर-शक्ति की प्राप्ति के लिए पर्याप्त समय लगता था।
- (3) औसत उपज का ज्ञान प्रथम तीन श्रेणियाँ तीन भागों में विभक्त की जाती थीं। इन तीन श्रेणियों की भूमि की औसत पैदावार निकाल ली जाती थी। वह प्रत्येक प्रकार की पैदावार मान ली जाती थी। पिछले दस वर्षों की पैदावार के आधार पर प्रत्येक फसल की प्रति बीघा पैदावार का औसत निकाल लिया जाता था।
- (4) राज्य का भार निश्चित करना औसत उपज निश्चित करने के उपरांत राज्य उस औसत उपज 1/3 भाग लगाने के रूप में ले लेता था।
- (5) मूल्य निश्चित करना- राज्य का भाग निश्चित करने के उपरांत उसका नकद मूल्य निकाला जा सकता था क्योंकि राज्य लगान अनाज के रूप में नहीं, वरन् नकद रुपये के रूप में वसूल करने की ओर

प्रयत्नशील रहता था। दस वर्षों के औसत आधार पर अनाज का मूल्य निश्चित कर उसको नकद रूपये के रूप मे परिणित किया गया और यह पटवारी के कागजों में दर्ज कर दिया जाता था।

3.2.9.4. माल विभाग के पदाधिकारी

अकबर ने रैयतबाड़ी प्रथा को अपनाना और जमींदारी प्रथा का अंत कर दिया। इस प्रथा में राज्य का सीधा संपर्क एवं संबंध किसानों से होता है जो स्वयं कृषि करते हैं। उसने लगान वसूल करने के लिए कुछ राजकीय कर्मचारियों की नियुक्ति की। उसने मालगुजारी वसूल करने के लिए अमीन नियुक्त किए और उसकी सहायता के लिए वित्तीय, पोद्दार, कानूनगों, पटवारी, मुकद्दम की नियुक्ति की गई। राज्य की ओर से कर्मचारियों को आदेश था कि वे जनता का ध्यान रखकर लगान वसूल करें। किसान को यह भी अधिकार था कि वह स्वयं राजकोष में धन जमा कर सकता था। निश्चित लगान के अतिरिक्त धन वसूल नहीं किया जाता था। जो कर्मचारी ऐसा करता था उसको राज्य की ओर से दंड दिया जाता था।

उक्त सुधारों का परिणाम

अकबर की राजस्व व्यवस्था उच्च कोटि की थी और इस विभाग को उन्नत करने में अकबर ने अपनी योग्यता का पूर्णरूप से परिचय दिया। इस व्यवस्था में किसान और राज्य दोनों को लाभ हुआ। राज्य की आय में बड़ी वृद्धि हुई और किसान का सीधा संपर्क राज्य से स्थापित होने के कारण वह ठेकेदारों तथा जमीदारों के अत्याचारों से मुक्त हो गया। किसान का भूमि पर अधिकार सुरक्षित हो गया। उनसे कर अधिक वसूल नहीं किया जा सकता था और न वह कम दे सकता था। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉक्टर विसेट स्मिथ ने भी अकबर की राजस्व व्यवस्था की प्रशंसा की। उनके अनुसार ''अकबर की राजस्व व्यवस्था प्रशंसनीय थी। उसके सिद्धांत उच्च कोटि के थे ओर वे आदेश जो राज्य की ओर से कर्मचारियों को दिए गए थे संतोषजनक थें।'' अकबर द्वारा स्थापित राजस्व व्यवस्था पर्याप्त समय तक चलती रही और अंग्रेजों ने भी इसी व्यवस्था में कुछ सुधार कर इसको अपनाया। बाद में इस व्यवस्था में केंद्रीय शासन के शिथिल होने के कारण कुछ दोष उत्पन्न हो गए, किंतु उस समय तक जब केंद्रीय शासन सशक्त रहा यह व्यवस्था चलती रही। ज्ञातव्य है कि शाहजहाँ और औरंगजेब के शासन काल में उन व्यक्तियों के साथ कठोर व्यवहार किया गया जो घूस व भ्रष्टाचार में लिप्त पाए जाते थे। इसके अतिरिक्त फसल आदि के नष्ट हो जाने पर किसानों को क्षमा मिल जाती थी और कभी-कभी राज्य की ओर से उनको तकावी भी दी जाती थी।

3.2.10. समाज की आर्थिक स्थिति

मुगलकालीन समाज के ज्ञान के संबंध में स्रोतों का आभाव है। उनका ज्ञान केवल यूरोपीय तथा अन्य यात्रियों द्वारा होता है, जो विभिन्न समयों पर भारत आए। इनके अतिरिक्त तत्कालीन इतिहासकारों ने फारसी तथा अन्य प्रदेशिक भाषाओं में भी इस पर प्रकार डाला है।

3.2.10.1. समाज का विभाजन - मुगलकालीन समाज आधुनिक युग के समाज से बहुत से अर्थों में समानता रखता है। समाज तीन वर्गों में विभक्त था -

(1) उच्च वर्ग

(क) विलास प्रिय जीवन - उच्च वर्ग के अंतर्गत सम्राट और उसके उच्च कोटि के मनसब थे। इनका जीवन-स्तर बहुत उन्नत था और इनको राज्य की ओर से विशेष अधिकार प्राप्त थे। इनकी आर्थिक स्थिति बहुत उन्नत थी और वे धनधान्यपूर्ण थे। धन की बहुलता के कारण वे अपना अधिकांश समय भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में व्यतीत करते थे। मुगलों का नियम था कि मृत्यु के उपरांत प्रत्येक राजकीय बड़े पदाधिकारियों की संपत्ति पर राज्य का अधिकार हो जाता था और उसके उत्तराधिकारियों का उस पर

कोई अधिकार नहीं होता था। इससे प्रत्येक पदाधिकारी अपना समस्त धन अपने जीवन-काल मे ध्यान करना ठीक समझता था।

- (ख) भव्यता उच्च वर्गीय लोग बड़े भवनों मे निवास तथा नारी प्रेम करते थे एवं मदिरा और स्त्रियों में अपना समस्त धन फूँक देते थे। सम्राट और अमीरों के हरमों में सैकड़ों स्त्रियाँ निवास करती थीं। उनमें घमंड विशेष होता था और वे साधारण जनता के साथ कोई संपर्क नहीं रखते थे। वे उनको हेय दृष्टि से रखते थे और उनका अनादर करने में उनको तिनक भी संकोच नहीं होता था। स्त्रियाँ केवल भोग की ही वस्तु समझी जाती थीं। मुगल सम्राटों की भी ऐसी धारणा थी, अकबर के हरम में पाँच हजार स्त्रियाँ थी जिनका प्रबंध करने के लिए एक अलग विभाग स्थापित किया गया था। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इसके जीवन में भोग-विलास के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।
- वे विभिन्न कलाओं शासन-प्रबंधन, दानशील, विद्या तथा कला के प्रेमी भी होते थे और इनके संरक्षण में तथा प्रोत्साहन द्वारा विद्या की विशेष प्रगित हुई। ये उत्तम भोजन करते तथा आभूषित वस्त्र धारण करते थे। इस पर इनका बहुत अधिक धन व्यय होता था। इनका आभूषण धारण करने का भी चाव था। इनको संगीत तथा नाच गानों से विशेष प्रेम था।
- (2) मध्य वर्ग मध्य वर्ग के अंतर्गत व्यापारी या मध्यम श्रेणी के राजकीय पदाधिकारी थे। इनका जीवन सरल और सादा था। इनकी आर्थिक अवस्था उन्नत थी, िकंतु ये लोग उच्च वर्ग के लोगों के समान अधिक ठाट-बाट का या भोग विलास का जीवन व्यतीत नहीं करते थे। इनका जीवन कलुषित नहीं था और ये लोग अधिक मात्रा में मदिरा सेवन नहीं करते थे। कुछ यूरोपीय लेखकों के अनुसार पश्चिमी समुद्र तट के व्यापारियों का जीवन अन्य व्यापारियों के जीवन की अपेक्षा अधिक उन्नत तथा ठाट-बाट का था क्योंकि उनको बाह्य व्यापार से पर्याप्त धन प्राप्त हो जाता था। उनमें वे व्यसन विद्यमान थे जो उच्च कुल के व्यक्तियों में पाए जाते थे।

(3) निम्न वर्ग-

- (क) निम्न स्तर या निम्न वर्ग के अंतर्गत मजदूर, छोटे व्यापारी, छोटे कर्मचारी आते हैं। इनका जीवन बहुत ही साधारण था और इनको आवश्यक वस्तुओं का भी अभाव था। वास्तव में इनका जीवन नाटकीय जीवन के समान था। इनके जीवन की तुलना दासों के जीवन से की जा सकती थी। ये अपनी परिस्थिति तथा आर्थिक दयनीय अवस्था से बाध्य होकर इस जीवन को व्यतीत करते थे।
- (ख) सामाजिक हीनता इनका समाज में कोई स्थान नहीं था और न वे आदर व श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते थे। इनके पास न पर्याप्त वस्त्र और न भोजन था। ये नंगे पाँव रहते थे और मिट्टी तथा फूस के मकानों से अपना जीवन व्यतीत करते थे। मजदूरी की दर बहुत कम थी ओर उनको बेगार पर ही कार्य करना पड़ता था। वास्तव में उनकी दयनीय अवस्था के कारण ही मुगल भव्य भवनों का निर्माण करने में सफल हो सके।
- (ग) भाग्यवादी ये लोग भाग्यवादी थे, जिसके कारण इन्होंने कभी भी राज्य के विरुद्ध विद्रोह नहीं किया। साधारण समय में इनको दोनों समय पेट भर भोजन अवश्य मिल जाता था।
- (घ) शोषित वर्ग डॉ. सरकार तथा दत्त के शब्दों में श्रमिकों को बहुत कम वेतन मिलता था। सामंत तथा राजकीय अधिकारी वर्ग उनका शोषण किया करता था और वे बेगार करने पर बाध्य किए जाते थे। इसके बदले में उनको बहुत कम मजदूरी मिलती थी अथवा कुछ नहीं मिलता था। उनका भोजन बड़ा साधारण था और वे दिन में केवल एक बार ही भोजन करते थे। भोजन में चावल में मिली हुई हरी दाल की थोड़ी-सी खिचड़ी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता था। उनके घर मिट्टी के बने होते थे। उनके छप्पर फूंस के

होते थे। उनके पास मिट्टी के बर्तन तथा बिछोने के अतिरिक्त कुछ नहीं था। चपरासी और नौकर बहुत संख्या में मिलते थे। उनका वेतन कम था, परंतु उनकी मजदूी बराबर मिलती थी और उसमे से उनकी संख्या बहुत कम थी जो ईमानदारी से अपनी स्वामी की सेवा करते हों। मजदूों की अपेक्षा दुका नदारों की स्थिति उन्नत थी, किंतु कर्मचारियों के आतंक तथा भय के कारण वे भी अपना जीवन गरीबों में व्यतीत करते थे।

- (इ) निर्दोष जीवन अन्य श्रेणियों में वे दुर्ज्यसन नहीं पाए जाते थे, जो उच्च कुल के व्यक्तियों में विद्यमान थे। वे कभी मिदरापान नहीं करते थे ओर उनका भोजन भी सात्विक था। लोगों का व्यवहार विदेशियों के साथ साधारणतः शिष्टाचार पूर्ण था।
- (च) स्त्री समाज मुगल काल में स्त्री समाज उन्नत नहीं था। उच्च कुल के लोग उनको केवल भोग विलास की वस्तु समझते थे। वे अपने पित की इच्छा पर आश्रित थी। उनको किसी प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी। उनका समस्त समय महल की चारदीवारियों में सीमित था। उनकी शिक्षा की उचित व्यवस्था नहीं थीं। पर्दा-प्रथा का रिवाज था। मुसलमानों में तलाक की व्यवस्था थी। तलाक के उपरांत उनका जीवन बड़ा कलुषित हो जाता था। एक सामंत तथा पदाधिकारी के घरों में सैकड़ों स्त्रियाँ भी रहती थीं। समाज में वेश्या वृत्ति थी। हिंदुओं में सती प्रथा विद्यमान थी। अकबर ने इस प्रथा को रोकने का प्रयत्न किया, किंतु वह इस कुप्रथा को रोकने में सफल नहीं हो सका। उस समय बाल-विवाह की प्रथा के साथ-साथ दहेज प्रथा भी विद्यमान थी। कन्याओं का विवाह माता-पिता की इच्छा पर निर्भर था। सारांश यह है कि इनका समाज में आदर नहीं था। इस काल में कुछ स्त्रियाँ ऐसी हुई हैं जिन्होंने पर्याप्त उन्नित की और जो अपने पितयों को उनके कार्यों में सहायता प्रदान करती थी तथा विशेष सुशिक्षित तथा सभ्य थीं। उनमें अकबर की माता हमीदाबानू बेगम, उसकी दादी महामनंगा, नूर्जहाँ आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। कुछ स्त्रियों ने अपनी जान जोखिम में डालकर अपने सतीत्व धर्म की उस समय रक्षा की। बहु-विवाह की विशेष प्रथा थी।

3.2.10.2. सम्राटों का हिंदु ओं के साथ व्यवहार

सम्राटों का साधारणतः हिंदुओं और मुसलमानों के साथ सद्-व्यवहार था जिसके कारण हिंदू और मुसलमान एक दूसरे के पर्याप्त समीप आ गए और उनमें उस प्रकार की ईर्ष्या तथा वैमनस्य नहीं था, जो दिल्ली के सुल्तानों के युग में विद्यमान थी। दोनों एक दूसरे के उत्सवों में भाग लेते थे। राजपूतों और मुगलों में वैवाहिक संबंधों की स्थापना हुई। औरंगजेब की असहिष्णुतापूर्ण नीति के कारण हिंदू और मुसलमानों में खाई तो अवश्य उत्पन्न कर दी, किंतु वे एक दूसरे से बिल्कुल अलग नहीं हो सके। मुसलमानों ने हिंदुओं के साहित्यिक तथा धार्मिक गुणों का अध्ययन किया।

3.2.10.3. सामाजिक दोष

हिंदू और मुसलमानों में सामाजिक दोष विद्यामान थे। इनमें धार्मिक अंधविश्वास पर्याप्त मात्रा में था। इनका पीरों, फकीरों, साधुओं में बड़ा विश्वास था। ये जादू टोना में भी विश्वास करते थे। इनका ज्योतिष में भी विश्वास था। धार्मिक यात्राओं में भी समान विश्वास था। मिदरापान तथा व्यभिचार का बोलबाला था। शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था, जिसके कारण लोगों का नैतिक तथा मानिसक विकास नहीं हो पाया। हिंदुओं में सती, बालविवाह तथा दहेज की कुप्रथाएँ विद्यमान थीं।

इस प्रकार यह कहना ठीक ही होगा कि मुगलों के काल में भारत की सामाजिक स्थिति उन्नत नहीं थी और उसका मानसिक तथा नैतिक पतन हो चुका था। लोगों की मनोभावनाएँ पतित तथा कलुषित जीवन की ओर अधिक आकर्षित थी और सम्राटों ने इसको उन्नत करने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

3.2.11. सारांश

मुगलकालीन आर्थिक स्थिति - (1) व्यापारी, दुकानदार व मजदूों का वर्ग , (2) कृषि व व्यापार मुख्य उद्योग, (3) विशाल व्यापार, (4) बड़े-बड़े औद्योगिक और व्यवसायी नगर और (5) भाव सस्तें, (6) औरंगजेब के उपरांत आर्थिक दशा का खराब होना।

राष्ट्रीय आय - (1) बाबर तथा हुमायूँ को इस संबंध में समय नहीं मिला, (2) शेरशाह ने भूमि की पैमाइश कराई और उपज का ध्यान रखकर लगान की दर निश्चित की, (3) अकबर ने शेरशाह के चिह्नों का अनुसरण किया और भूमि की व्यवस्था की, (4) भूमिकर के पदाधिकारियों की नियुक्ति की। समाज की स्थिति - (1) उच्च वर्ग का विलासपूर्ण जीवन, (2) मध्यवर्ग व्यापारियों का, (3) निम्नवर्ग की शोचनीय दशा, (4) स्त्रियों की निम्न दशा, (5) कुछ कुरीतियाँ, (6) बाल विवाह, सती प्रथा, बहुविवाह, (7) सम्राट का हिंदुओं से विरोध।

3.2.12. बोध प्रश्न

3.2.12.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

- 1. मुगलकालीन जनता की श्रेणियों पर प्रकाश डालिए।
- 2. मुगलकालीन कृषि पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
- 3. मुगलकालीन उद्योग पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
- 4. मुगलकालीन औद्योगिक नगरों पर टिप्पणी लिखिए।
- 5. औरंगजेब के पश्चात मुगलकालीन आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
- 6. मुगलकालीन स्त्रियों की दशा पर प्रकाश डालिए।
- 7. मुगलकालीन सम्राटों का जनता के प्रति व्यवहार कैसा था? समझाइए।

3.2.12.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- 1. मुगलकालीन जनता के आर्थिक विभाजन की विवेचना कीजिए।
- 2. मुगलकालीन कृषि एवं व्यापार का वर्णन कीजिए।
- 3. मुगलकालीन उद्योग धंधों का मूल्याँकन कीजिए।
- 4. मुगलकालीन लगान व्यवस्था पर एक समीक्षात्मक निबन्ध लिखिए।
- 5. राजा टोडरमल के सुधारों की समीक्षा कीजिए।
- 6. मुगलकालीन समाज की आर्थिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
- 7. मुगलकालीन आर्थिक स्थिति की समालोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
- 8. मुगलकालीन औद्योगिक नगरों एवं दैनिक वस्तुओं के मूल्यों पर प्रकाश डालिए।

2.2.13. संदर्भ-ग्रंथ

- 1. मजूमदार तथा पुसलकर : दी मुगल एम्पायर, भारतीय विद्या भवन, बम्बई।
- 2. एलन, हेग, डाडवेल : दी कैम्ब्रिज शार्टर हिस्टरी ऑफ इण्डिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1934।
- 3. भारद्वाज, दिनेश: मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, 1982
- 4. मेहरा, उमाशंकर: मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, आगरा, 1982
- 5. लूनिया, बी.एन. : मुगल साम्राज्य का उत्कर्ष, कमल प्रकाशन, इन्दौर, 1980
- 6. श्रीवास्तव, ए. एल : मुगल कालीन भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1980
- 7. श्रीवास्तव, ए. एल : मध्यकालीन संस्कृति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1980

- 8. सिन्हा, बी. बी : मध्यकालीन भारत, ज्ञानदा प्रकाशन, पटना, 1981
- 9. तपन रायचौधरी एवं इरफान हबीब, कैम्ब्रिज इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉल्यूम-2

खंड-3: मुगलों की प्रशासनिक, आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक नीतियाँ इकाई-3: स्थापत्य और कला

इकाई की रूपरेखा

- 3.3.1. उद्देश्य
- 3.3.2. प्रस्तावना
- 3.3.3. मुगल स्थापत्य की विशेषताएँ
- 3.3.4. बाबर कालीन स्थापत्य कला
- 3.3.5. हुमायूँ कालीन स्थापत्य कला
- 3.3.6. अकबर कालीन स्थापत्य कला
- 3.3.7. जहाँगीर कालीन स्थापत्य कला
- 3.3.8. शाहजहाँ कालीन स्थापत्य कला
- 3.3.9. औरंगजेब कालीन स्थापत्य कला
- 3.3.10. मुगलकालीन चित्रकला की विशेषताएँ
- 3.3.11. अकबर कालीन चित्रकला
- 3.3.12. जहाँगीर कालीन चित्रकला
- 3.3.13. शाहजहाँ कालीन चित्रकला
- 3.3.14. मुगल चित्रकला मूल्यांकन
- 3.3.15. सारांश
- 3.3.16. बोध प्रश्न
- 3.3.17. संदर्भग्रंथ सूची

3.3.1. उद्देश्य

सोलहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य की नींव भारत में पड़ी। भारत पर आधिपत्य स्थापित करने के पश्चात् मुगलों ने स्थापत्य और कला की ओर ध्यान केंद्रित किया। तुर्क शासकों के समान मुगलों को भी स्थापत्य कला से प्रेम था। उनके शासन काल में अनेक कलापूर्ण भवनों का निर्माण किया गया। मुगलों की स्थापत्य शैली के मूल विषय में विद्वानों में परस्पर मतभेद है। मुगलकाल में वृहद स्थापत्य के निर्माण हुए एवं विभिन्न कलाओं की उन्नित हुई। इस इकाई का उद्देश्य मुगलकालीन स्थापत्य एवं कला पर प्रकाश डालना है।

3.3.2. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में मुगलकालीन स्थापत्य जैसे विभिन्न भवनों, मकबरों, मिस्जिदों एवं नगरों की कलात्मक विशेषताओं एवं मुगलकालीन कला की विस्तृत विवेचना की जाना प्रस्तावित है। इकाई के अंत में पाठ का सारांश, लघु उत्तरीय प्रश्न, दीर्घ उत्तरीय प्रश्न एवं संदर्भ ग्रंथों की सूची का उल्लेख भी प्रस्तावित है।

3.3.3. मुगल स्थापत्य की विशेषताएँ

- (1) विद्वान फर्ग्यूसन के मत में मुगल स्थापत्य कला पर विदेशी प्रभाव अत्यधिक है, परंतु हैवेल का मत इसके विरुद्ध है। उनके अनुसार मुगल स्थापत्य पूर्णतया भारतीय है। हैबेल के मत में भारत में मुगल शिल्पकार नहीं के बराबर थे। मुगल शासकों को पूर्णतया भारतीय शिल्पकारी पर ही निर्भर रहना पडता था।
- (2) सर जॉन मार्शल के मतानुसार, ''मुगल शैली के विषय में यह निश्चित करना कठिन है कि इस पर किन तत्वों का अधिक प्रभाव है। भारत में अनेक विभिन्नताओं के कारण शैलियों में भी विभिन्नता रही है। अतः मुगल शैली के आधार पर ठीक-ठीक पता लगाना भी कठिन है।'' परंतु यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि मुगल स्थापत्य पर विदेशी प्रभाव किसी न किसी सीमा तक है।
- (3) डॉ. ईश्वरीलाल के शब्दों में "मुगलकालीन कारीगरों ने विदेशी कला के सिद्धांतों को इस प्रकार परिवर्तित और संशोधित रूप में अपनाया कि भारतीय कला के साथ मिलकर वे देशीय प्रतीत होने लंगे। विदेशी कला जिसका अकबर के पूर्व मुगल स्थापत्य कला पर विशेष प्रभाव पड़ा, फारसी, अरबी और मध्य एशियाई शैलियों का सिम्मश्रण है।" वे आगे और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "इस कला पर फारसी और हिंदू बौद्धिक शैलियों का विशेष प्रभाव है। फारसी-शैली का प्रभाव मुगल इमारतों की सजावट, उच्चकोटि की नक्काशी और सुंदर बेल-बूटों के काम से स्पष्ट झलकता है। मुगल इमारतों के पास बगीचों की स्थापना का दृश्य और सुंदरतम बनाने की चेष्टा करना ही फारसी शैली से ली गई एक अनुपम निधि है। हिंदू बौद्धिक शैली का प्रभाव मुगल इमारतों की दृढ़ता और भव्यता में स्पष्ट है।"
- (4) श्री दिनकर भी इस मत के समर्थक हैं। उसके मतानुसार, "भारतीय वास्तु में प्राणवत्ता, पौरुष और बेराट्य था। ईरानी कला के लालित्य, नारीत्व और सूक्ष्मता का जब उसके साथ मिश्रण हुआ, एक नई कला का जन्म हो गया जो अत्यंत मनोहर और अपूर्व थी... मथुरा, तंजौर, भुवनेश्वर और बोधगया में हिंदू वास्तु का जो पौरुष, प्राणवत्ता और वेराट्स साकार है, फतेहपुरसीकरी, दिल्ली और आगरे में वही ईरानी लालित्य और प्रगतिमयता को अपनी गोद में उठाए हुए है। कहते हैं कि मुगल निर्माता निर्माण तो विश्वकर्मा की तरह करते थे किंतु समाप्ति उनकी जौहरियों की तरह होती थी। लेकिन यह विश्वकर्मा भारत का ही था केवल जौहरी को ही हम ईरानी कह सकते हैं। अतएव इस कहावत को बदलकर ऐसे रखना चाहिए कि विश्वकर्मा के समान विराट निर्माण करने की क्षमता हिंदुओं में थी और जौहरियों की तरह समाप्त करने में मुसलमान प्रवीण थे। मुगल स्थापत्य में हम जो चमत्कार देखते हैं, वह इसी विश्वकर्मा और जौहरी के मिलन का चमत्कार है।"
- (5) मुगल शैली की प्रमुख विशेषता 'विशाल गुंबद' को प्रधानता देना है। मुगलों से पूर्व भी गुंबदों का प्रचार था परंतु वे न तो सुंदर थे और न आकार में ही बड़े। इस युग के गुंबद बड़े कलापूर्ण ढंग से बाहर की ओर उभारे गए हैं। नुकीली महरावें भी अनेक ढंग से सजायी जाती थीं। सल्तनतकालीन भवनों का निर्माण प्रायः भूरे पत्थरों से होता था परंतु मुगल काल में लाल पत्थर प्रयोग में लाया जाने लगा। आगे चलकर लाल पत्थर के साथ-साथ मनोहरता लाने के लिए श्वेत संगमरमर का भी प्रयोग हुआ। श्वेत संगमरमर का प्रयोग लाल पत्थर की गंभीरता को दूर करने के लिए किया जाता था। रंगों का प्रयोग विश्लेषण से किया जाने लगा। मीनारों के साथ-साथ छोटी-छोटी बुर्जियों का चलन भी मुगल काल में प्रारंभ हुआ। भवन के दरवाजों पर आकर्षक खुदाई तथा पच्चीकारी कराने का शौक मुगलों को विशेष रूप से था।

3.3.4. बाबर कालीन स्थापत्य कला

बाबर को भारत में निर्मित भवनों में किसी प्रकार का भी आकर्षण नहीं लगा। तुर्क और अफगान इमारतों के प्रति भी उसने उदासीनता प्रकट की। ग्वालियर के मानिसंह तथा विक्रमाजीत द्वारा निर्मित महलों ने उसको अवश्य प्रभावित किया; परंतु इस पर भी वह महलों के स्थान पर मंडप स्नानागार, कुएँ, सरोवर तथा फब्बारे आदि ही बनवा सका। संभवत: निम्न कोटि की सामग्री के कारण उनके द्वारा निर्मित बड़े भवन नष्ट हो गए। बाबर द्वारा निर्मित अब केवल दो इमारतें रह गईं हैं जो दोनों मस्जिदें हैं तथा जो सन् 1529 में निर्मित की गईं थीं। प्रथम पानीपत के काबुली बाग में स्थित है तो दूसरी रूलेहखंड में है। एक और मस्जिद का निर्माण अयोध्या में किया गया था। परंतु ये तीनों मस्जिदें स्थापत्य की दृष्टि से कोई विशेष महत्वपूर्ण नहीं हैं।

3.3.5. हुमायूँ कालीन स्थापत्य कला

हुमायूँ का अधिकांश समय युद्ध और कठिनाइयों में बीता, इस कारण इसे नवीन इमारतें बनाने का अधिक समय नहीं मिल सका। उसके द्वारा निर्मित एक दो इमारतें ही मिलती हैं। दिल्ली में उसने दीनपनाह नामक महल बनवाया था। यह महल अत्यंत शीघ्रता में बनवाया गया था। अतः यह न तो सुंदर है और न ही टिकाऊ संभवतः शेरशाह ने इसे नष्ट कर दिया था। आगरा तथा फतेहशाह हिसार में भी उसने दो मिलतों का निर्माण करवाया था। अब इनके केवल खंडहर ही मिलते है। स्थापत्य की दृष्टि से ये मिस्जिदें महत्वपूर्ण नहीं है।

3.3.6. अकबर कालीन स्थापत्य कला

मुगलकालीन स्थापत्य कला का वास्तविक आरंभ अकबर के शासन से होता है। उसके काल में अनेक महत्वपूर्ण इमारतों का निर्माण हुआ। उसके स्थापत्य कला के प्रेम के विषय में अबुल फजल लिखता है "शाहजहाँ मध्य भवनों की योजना बनाते हैं और अपने मस्तिष्क और हृदय की रचना को पाषाण तथा मिट्टी के वस्त्र पहनाते हैं। अकबर के काल में बने भवनों पर हिंदू शैली का अधिक प्रभाव है। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के शब्दों में...... "उसके भवनों को देखने से यह ज्ञात होता है कि राज्य में भारतीय कला का अधिक बोलबाला था। कारण यह है कि अकबर स्वयं अपने को एक भारतीय समझता था और इसी कारण भारतीय शैली को प्रोत्साहन देने की चेष्टा करता था। उसने यह देख लिया था कि सुंदर से सुंदर भवनों और इमारतों का निर्माण कर सकते हैं। अकबर के राज्य में हिंदु ओं को धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में काफी स्वतंत्रता थी और शिल्प के क्षेत्र में भी उन्हें पूर्ण अवसर मिला।" अकबर ने निम्न इमारतों का निर्माण करवाया।

3.3.6.1. हुमायूँका मकबरा

अकबर द्वारा निर्मित यह सबसे पहली इमारत है। इस मकबरे का निर्माण अकबर की शैलियों में हाजी बेगम ने करवाया। इसका निर्माण सन् 1564 में प्रारंभ किया गया था तथा सन् 1565 में यह बनकर तैयार हो गया था। मकबरे में फारसी स्थापत्य शैली की अधिक झलक मिलती है। हाजी बेगम का स्वयं ईरानी स्थापत्य के प्रति गहरा झुकाव था तथा दूसरे मकबरे का प्रधान कारीगर मिर्जा गियास भी ईरान का निवासी था। इन सब कारणों से ही ईरानी शैली का इस मकबरे पर अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यह प्रथम मकबरा है जिसमें उभरी हुई दुहरी गुंबद का प्रयोग किया गया है। मकबरे का निचला भाग भारतीय शैली की छाप लिए हुए है परंतु ऊपर के भाग पर ईरानी शैली का प्रभाव है। इस आदर्श की मस्जिद

सर्वप्रथम ग्यारहवीं शताब्दी में दिमश्क में निर्मित हुई थी। इस मकबरे के गुंबद की शैली तैमूर और बीबी खानम के मकबरे से मिलती-जुलती है। प्रमुख इमारतों के चारों तरफ उद्यान है। मुख्य द्वार विशाल है जिससे मकबरे का सुंदर तथा भव्य दृश्य अवश्य दृष्टिगोचर होता है। मकबरा 156 फीट वर्गाकार है। गुंबद पर्याप्त विशाल है, जिसके चारों ओर खंभों के सहारे गुंबद नुमा छतरियों को निर्मित किया गया है।

3.3.6.2. आगरा का लाल किला

स्थापत्य की दृष्टि से आगरे के किले का विशेष महत्व है। यह लगभग डेढ़ मील क्षेत्र में बना हुआ है। इसकी दीवारें प्रायः 70 फीट ऊँची है। प्रवेश के लिए दो मुख्य द्वार है प्रथम का नाम अमरिसंह द्वार है तथा दूसरा द्वार पश्चिम में है, जिसे दिल्ली-दरवाजा कहकर पुकारा जाता है। किले की रक्षा के लिए दीवार के चारों ओर खाई खुदी है। चारदीवारी में लगभग 500 से अधिक भवन बने हुए हैं। ये अधिकांश लाल पत्थर द्वारा निर्मित हैं। शाहजहाँ ने बाद में कुछ भवनों को गिरवाकर उनकी जगह श्वेत पत्थरों के मंडपों को निर्मित करवाया था। इस विशाल सुदृढ़ किले का निर्माण सन् 1565 में प्रमुख इंजीनियर कालिमखाँ की देख-रेख में हुआ था। यह लगभग 15 वर्षों में बनकर तैयार हुआ। लगभग चार हजार मजदूर नित्य इसके निर्माण में लगे रहते थे तथा उसकी लागत लगभग 35 लाख रुपये आई थी।

आगरे के किले की दीवार अत्यंत सुदृढ़ है। दीवारों के निर्माण में जो लाल पत्थर जोड़े गए हैं, वे इस मजबूती के साथ जोड़े गए हैं कि उसके बीच कोई दरार तक नहीं दिखाई देती। इस किले में पहले चार दरवाजे थे जिनमें से दो को बाद में बंद कर दिया गया। अब केवल अमरिसंह दरवाजा एवं दिल्ली दरवाजा ही प्रयोग में लाए जाते हैं। दिल्ली दरवाजे का प्रयोग मुख्यद्वार के रूप में किया जाता था तथा अमरिसंह दरवाजे का प्रयोग व्यक्तिगत प्रवेश के लिए होता था। दिल्ली दरवाजे से घुसने के पश्चात् हाथी द्वार या हाथी पोल मिलता है। महरावों पर दो हाथी बने थे जिसके कारण इसका नाम हाथीद्वार पड़ा। बाद में औरंगजेब ने इन हाथियों को हटवा दिया था। दिल्ली दरवाजे के शिल्प की पर्सी ब्राउन ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वे दिल्ली दरवाजे के विषय में लिखते हैं कि ''नि:संदेह ही ये भारत के सबसे अधिक प्रभावशाली दरवाजों में से हैं। मुख्य महादाबदार द्वार था, पर दोनों ओर दो बुर्ज बने हैं, ये बुर्ज अत्यंत साधारण योजना द्वारा परंतु कुशलता के साथ निर्मित किए गए हैं जिससे उनका इतना प्रभावशाली तथा कलात्मक रूप हो गया है। इसकी अठपहला योजना को ध्यान में रखकर इसके निर्माताओं ने बुर्ज बीच के महारानी कक्ष और बुर्जों के ऊपर की छतरियाँ सभी अठपहला रखी है। दूसरी ओर के दरवाजों का नाम अमरिसंह द्वार शाहजहाँ काल में हुई अमरिसंह राठौर की घटना पर रखा गया। यह द्वार स्थापत्य की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। एक लकड़ी के पुल द्वारा प्रमुख द्वार का मार्ग से संबंध स्थित किया गया है। इस द्वार से ही आजकल दर्शक किले में प्रवेश करते हैं।

अकबर ने इस किले में एवं इसके आसपास लगभग पाँच सौ भवनों का निर्माण करवाया था, जिनमें से कुछ का उल्लेख निम्नानुसार है:-

(1) जहाँगीरी महल

(2) अकबरी महल

(3) इलाहाबाद का किला

(4) लाहौर का किला

3.3.6.3. फतेहपुर सीकरी

फतेहपुर सीकरी में अकबर की महत्वपूर्ण इमारतें हैं। सन् 1569 में बादशाह ने सीकरी के पास एक पहाड़ी पर फतेहपुर सीकरी नामक नगर की नींव डाली थी। इस प्रकार की स्थापना शेख सलीम चिश्ती की स्मृति में की गई थी। यह आगरा से लगभग 22 मील दूरी पर स्थित है। फतेहपुर सीकरी की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें हमें हिंदूमुस्लिम स्थापत्य के समन्वय के पूरे-पूरे दर्शन होते हैं। फर्यूसन फतेहपुरसीकरी के विषय में लिखते हैं: ''यह उस महान व्यक्ति (अकबर) की परछाई है जिसने उसको बनवाया था।'' इस नगर में बनी इमारतों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है।

- (1) विशाल प्रासाद (2) निवास स्थान (3) कार्यालय (4) धार्मिक इमारतें इनका संक्षिप्त उल्लेख निम्नलिखित है:-
- (1) दीवाने-आम
- (2) दीवाने-खास
- (3) जोधाबाई का महल

- (4) तुर्की सुल्तान का महल
- (5) पंचमहल
- (6) टकसाल तथा अस्पताल

- (7) ज्योतिष भवन
- (8) विद्यालय
- (9) बीरबल का महल

- (10) मरियम का भवन
- (11) सराय तथा हिरन मीनार

3.3.6.4. जामा मस्जिद

अबुलफजल के निवास-स्थल के ठीक पीछे जामा मस्जिद है। इस मस्जिद के निर्माण कार्य का आरंभ सन् 1571 में हुआ था तथा सन् 1575 तक यह बनकर पूर्ण हो गई थी। यह आयताकार मस्जिद है जिसकी लंबाई 288 फीट तथा चौड़ाई 66 फीट है। प्रारंभ में इसके तीन द्वार उत्तर, दक्षिण और पश्चिम की ओर थे लेकिन सन् 1577 में शेख सलीम चिश्ती की समाधि बन जाने के पश्चात् उत्तरी द्वार बंद कर दिया गया। मस्जिद में एक चौड़ा सहन है। यह सहन तीन ओर से स्तंभों द्वारा आच्छादित है। दक्षिण की विजय करने के पश्चात् अकबर ने दक्षिण का द्वार नष्ट करवा कर उसके स्थान पर शानदार बुलंददरवाजा बनवाया। अब केवल पूर्व का द्वार ही अपने वास्तविक रूप में दृष्टिगोचर होता है। संपूर्ण मस्जिद तीन गुंबदों द्वारा ढकी गई हैं। मध्य का गुंबद बड़ा शेष दो छोटे-छोटे हैं। बड़े गुंबद का व्यास 41 फीट है। छोटे गुंबदों का व्यास 25 फीट के लगभग है। जामा मस्जिद के चबुतरे की लंबाई 359 फीट 10 इंच तथा चौड़ाई 248 फीट 9 इंच है। मस्जिद के अंदर प्रवेश करने के पश्चात् दर्शक को मस्जिद का अग्रभाग या मोहरा दिखाई देता है, जो बहुत आकर्षक है। कुछ विद्वान इस मोहरे को देश का सबसे सुंदर मोहरा मानते हैं। इस मोहरे का आकर्षण इसकी सत्यता तथा गौरव में है। यह मोहरा तीन भागों में विभाजित है। मध्य में एक विशाल महराबदार पोर्टिको को है तथा दो और महाराब से ढके हुए स्तंभ हैं। उपासना गृह के मध्य भाग में तीन द्वारों द्वारा पहुँचा जा सकता है। यह उपासना गृह हॉल के मध्य में है, जो मध्य गुंबद द्वारा आच्छादित है। चबूतरे के चारों तरफ दस वर्ग फीट के कमरे बने हुए हैं। इनका प्रयोग मुल्ला तथा उसके शिष्य करते थे। यह सत्य है कि इस मस्जिद की योजना अरबी और ईरानी के आधार पर की गई थी परंतु निर्मित हिंदू कला के रूप में हुई। फारसी कला केवल आधारभूत में ही स्वीकार की गई थी परंतु उसकी नकल का प्रयास नहीं किया गया था। इस मस्जिद के गुंबद भी दृढ़ रूप से फारसी शैली के नहीं कहे जा सकते। मध्य का गुंबद चंपानगर की जामा मस्जिद से मिलता जुलता है। मुख्य इमारत के तोड़े पूर्णतया हिंदू शैली के हैं। इस भवन में जो खुदाई तथा चित्रकारी हुई है, वह अत्यंत उच्चतर श्रेणी की है। अकबरकालीन इमारतों में यह कला की दृष्टि से एक श्रेष्ठ इमारत मानी जाती है। पर्सी ब्राउन के मतानुसार भी इस मस्जिद के प्रायः समस्त गुंबद हिंदू कला से प्रभावित हैं।

3.3.6.5. बुलंद दरवाजा

बुलंद दरवाजा भारतीय स्थापत्य कला का एक भव्य तथा अनुपम उदाहरण है। यह दरवाजा सड़क से लगभग 176 फीट ऊँचा लगभग 134 फीट है। बुलंद दरवाजे के विषय में कहा जाता है कि ''बुलंद दरवाजे में शिल्पकला का उत्कृष्ट नमूना दिखाई देता है जैसा कि देश में अन्यत्र नहीं है।'' पर्सी ब्राउन के शब्दों में ''बुलंद दरवाजा एक महान एवं प्रभावशाली निर्माण कार्य है विशेषतः जब इसे भूमि के धरातल पर खड़ा होकर देखा जाता है, तब यह उत्तेजक एवं विस्मयकारक शक्ति का रूप दिखाई देता

है, परंतु इसका प्रभाव भारस्वरूप या कृत्रिम नहीं ज्ञात होता।" बुलंद दरवाजा अपने में एक पूर्ण इमारत है। इसमें विशाल हॉल होने के अतिरिक्त अनेक छोटे-छोटे कमरे हैं। बुलंद दरवाजे का बाह्य रूप फासी कला से प्रभावित है। परंतु स्थापत्य की दृष्टि से इसकी आत्मा हिंदू है। मुख्य द्वार डाटदार बनाया गया है। इस पर होने वाली नक्काशी हिंदू कला से प्रभावित है। द्वार के ऊपर बनी छतरियाँ भी हिंदू कला की प्रतीक लगती है। द्वार के दायी-बायीं ओर बने ताखे-झरोखे हिंदू कला से समानता रखते हैं। बुलंद दरवाजे की छतरियाँ तथा आतंरिक भाग बौद्ध शैलियों की याद दिलाती है।

3.3.6.6. शेख सलीम चिश्ती का मकबरा

फतेहपुरसीकरी की केवल यही इमारत श्वेत संगमरमर की है। स्मिथ तथा पर्सी ब्राउन के अनुसार अपने मूल रूप में यह मकबरा लाल पत्थरों द्वारा निर्मित था परंतु जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन काल में इसे श्वेत संगमरमर में परिवर्तित कर दिया गया। इस मकबरे की नींव सन् 1571 में डाली गई थी। मकबरा वर्गाकार है तथा खरबूजे की शक्ल के गुंबद द्वारा आच्छादित है। इस समाधि के स्तंभ तोड़ों पर टिके हुए हैं तथा इन पर खुदाई का काम भी आकर्षक ढंग से हुआ है। इसके स्तंभों के विषय में डॉ आशीर्वादीलाल लिखते हैं : ''इस मकबरे की मुख्य विशेषताएँ इसके सजावट पूर्ण स्तंभ और इसके चौड़े छज्जे को सहारा देने वाले आलंब हैं। इसके स्तंभ की आकृति अद्धुत है। इसके तीरे टेढ़े मेढ़े सर्पिल से हैं और उनके ऊपर के शिरभाग जैसे चूने की लटकनी डिजायनों से सुसज्जित हैं।'' इस भवन का स्थापत्य भी बहुत कुछ हिंदू स्थापत्य से प्रभावित है। डॉ. स्मिथ के अनुसार, समाधि का संपूर्ण ढॉचा हिंदू भावनाओं से ओत-प्रोत है। दीवारों का आतंरिक भाग बहुत ही भव्य है तथा फर्शों को भी अनेक रंगों से सजाया गया है। बरामदे का भाग बहुत ही भव्य तथा आकर्षक है। पच्चीकारी बड़े ही अनुपम ढंग से की गई है। सलीम चिश्ती की समाधि को देखकर मन में सात्विक तथा शांति की भावनाएँ उत्पन्न होती है। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, ''जिस प्रकार बुलंद दरवाजा ऊँचा उठा हुआ विजयोल्लास में संसार को अकबर की विजय का संदेश देता है, उसी प्रकार सलीम चिश्ती का शांतिपूर्ण और सादा मकबरा विश्व को शांति का उपदेश देता है।''

3.3.7. जहाँगीर कालीन स्थापत्य कला

अकबर के समान जहाँगीर को स्थापत्य कला के स्थान पर उद्यानकला और चित्रकला से विशेष प्रेम था। उसके शासन काल में बहुत कम भवनों का निर्माण हुआ। इस पर भी कुछ भवनों का निर्माण हुआ और वे भवन स्थापत्य की दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं। कुछ महत्वपूर्ण इमारतों का उल्लेख निम्नलिखित हैं:-

3.3.7.1. अकबर का मकबरा (सिकंदरा)

आगरा से लगभग पाँच मील दूर पर आगरा दिल्ली सड़क पर सिकंदरा गाँव में अकबर का मकबरा स्थित है। यह मकबरा सिकंदरा के नाम से पुकारा जाता है। इसका निर्माण कार्य अकबर ने प्रारंभ किया था और जहाँगीर ने 8 वर्ष बाद पूरा किया। अकबर द्वारा निर्मित अनेक भाग जहाँगीर को पसंद नहीं आए अतः उसने उन्हें पुनः बनवाया। जहाँगीर अपनी आत्मकथा 'तुझके-जहाँगीरी' में लिखता है, ''जब हम अपने पिता के मकबरे को देखने गए.. तब हमने का कब्रिस्तान पर बनी इमारत देखी परंतु यह हमारी इच्छा के अनुकूल नहीं थी। हमारी इच्छा थी कि राहगीर उसे देखकर यह कहें कि ऐसी इमारत हमने संसार में और कहीं नहीं देखी है।..... हमने आदेश दिया कि अनुभवी कारीगरों एवं अन्य अनुभवी लोगों की राय से व्यवस्थित एवं निश्चित ढंग से इसकी नींव डाले।' जहाँगीर के वर्णन को पढ़ने से ज्ञात होता है कि

उसने कुछ भागों को केवल पुनः ही नहीं बनवाया वरन् मकब्रे के नक्शे में भी परिवर्तन कर दिया था। भवन के निर्माण में लगभग बीस वर्ष लगे।

यह मकबरा विशाल बाग के मध्य में स्थित है जो 339 वर्ग फीट तथा 100 फीट ऊँचा है, देश में बने अन्य मकबरों से यह भिन्नता रखता है। इसका नमूना पूर्णतया बौद्ध -विहार से मिलता-जुलता पिरामिड आकार का है। इसके चारों ओर के बगीचे का क्षेत्रफल लगभग एक मील से भी अधिक है। किले की दीवार के चारों ओर चार द्वार है जिनमें तीन द्वार दिखावटी है जो प्रवेश के लिए खुला हुआ है। यही मुख्यद्वार है जिस पर संगमरमर की पच्चीकारी का काम बड़े आकर्षक ढंग से किया गया है। द्वार के चारों कोनों पर चार मीनारें मनोहर तथा अत्यंत प्रभावशाली हैं। पर्सी ब्राउन के अनुसार संपूर्ण उत्तरी भारत में इतनी आकर्षक मीनारें इससे पूर्व कभी नहीं बनी। मीनारों का निर्माण श्वेत संगमरमर द्वारा किया गया है। मीनारों की प्रथम मंजिल के तोड़े मुसलमानीकला के प्रतीक हैं तो दूसरी और तीसरी मंजिल के हिंदू कला के। लतीफ के अनुसार : ''प्रमुख प्रवेशद्वार इतना पूर्ण तथा शानदार है कि उसे देखकर महल का धोखा होता है।" उद्यान-प्राचीर के चारों ओर कोनों पर अठकोने बुर्ज बने हुए थे, जो छतरी वाले गुंबदों से आच्छादित थे। इसमें तीन को अभी देखा जा सकता है। यह मकबरा बौद्ध विहारों की शिल्प शैली के आधार पर निर्मित है। संपूर्ण मकबरा ऐसा है जिसमें गुंबद नहीं बना हुआ है। अंतिम मंजिल सबसे छोटी है तथा पूर्णतया संगमरमर की बनी है। जालियों में हिंदू स्थापत्य कला स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। श्वेत संगमरमर की छतरियाँ राजपूत कला से प्रभावित है। ऊपर मंजिल के घेरे के कोनों का खूबसूरत मंडल एक गुंबद द्वारा आच्छादित है। घेरे की दीवारों पर संगमरमर की जाली का काम बना हुआ है। घेरे के मध्य में खुला चबूतरा है जिसके मध्य में नक्काशीयुक्त एक कल्पित कब्र बनी हुए है। घेरे की दीवारें विभिन्न ज्यामितीय आकार की डिजाइनों द्वारा सज्जित हैं। ये डिजाइनें सुंदर होने के अतिरिक्त अत्यंत पेचीदी हैं। घेरे की दीवारों में 36 महराबदार द्वार हैं। दो महराबों के बीच की दूरी में फारसी पद्य ख़ुदे हुए हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर 36 पद्य खुदे हुए हैं। दो पद्य अकबर की प्रशंसा तथा न्यायप्रियता के विषय में है। कल्पित कब्र एक शुद्ध ठोस श्वेत संगमरमर के पत्थर की बनी है जिस पर अनेक हिम सदृश्य फूल बने हुए हैं। कब्र के ऊपर 'अल्लाही अकबर जल्ले-जलाल हुँ' खुदाई द्वारा लिखा गया है।

3.3.7.2. मरियम की समाधि

सिकंदरा के पास ही मिरयम की समाधि है। ऊपर हम उल्लेख कर चुके हैं कि प्रायः मिरयम को अकबर की ईसाई रानी के रूप में माना जाता रहा है। परंतु यह पूर्णतया असत्य है। अकबर के कोई भी ईसाई रानी नहीं थी। मिरयम जहाँगीर की माँ की एक उपाधि थी। इस समाधि के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ के अनुसार इस ऐतिहासिक भवन का निर्माण सिकंदर लोदी ने किया गया था और मरने के बाद वह इसी में दफनाया गया परंतु इसके प्रमाण नहीं मिलते।

इस भवन के गुंबद प्रारंभिक मुगल शैली के आधार पर बने हुए हैं। चारों ओर चौड़े छज्जे अलंकारयुक्त तोड़ों से बंधे हुए हैं। पैविलियन के स्तंभों पर खुदाई तथा कोने के पत्थरों पर खुदी पशुओं की आकृतियाँ, इस बात की प्रतीक हैं कि यह भवन या तो अकबर के काल में निर्मित हुआ था या जहाँगीर के शासन काल के प्रारंभिक दिनों में। इस प्रकार यह मत कि सिकंदर लोदी ने इस भवन का निर्माण करवाया था पूर्णतया भ्रमपूर्ण है क्योंकि लोदी इस्लाम का कट्टर पोषक तथा मूर्तिभंजक था, अतः वह कभी भी पशु पक्षियों की आकृतियों से अपने मकबरे की साज-सज्जा नहीं करवाया होगा। दूसरे तहखाने में बनी कब्र तथा छत की कल्पित कब्र का आकार तथा आकृति से पूर्णतया स्त्री की कब्र ज्ञात होता है। ये दोनों कब्रें आकार में इतनी छोटी हैं कि सिकंदर लोदी जैसे बलिष्ठ व्यक्ति की ज्ञात नहीं होती।

यह मकबरा दुमंजिला है, जिसके नीचे एक तहखाना है। समस्त भवन के पूर्व से पश्चिम की ओर एक गैलरी गई है तथा गैलरी के चारों ओर चालीस के लगभग कक्ष बने हैं, जो तोरणयुक्त छतों से आच्छादित है। संपूर्ण भवन का निर्माण लाल पत्थरों तथा ईटों से हुआ है। 145 वर्ग फीट तथा 39 फीट ऊँचाई का यह मकबरा है। इसके चार द्वार हैं। जो चारों ओर बने हुए हैं। उत्तरी द्वार मुख्य प्रवेश द्वार है जिसमें तीन महराब हैं। मध्य की महराब अत्यंत कलापूर्ण ढंग से अंलकृत है। मकबरे के चारों ओर चौड़े छज्जे हैं जो पत्थरों द्वारा बने हुए हैं। तहखाने की लंबाई 19 फीट 6 इंच है तथा चौड़ाई भी इतनी नहीं है कि प्राचीरों पर किसी भी प्रकार का साज-सज्जा नहीं की गई है।

ऊपर की मंजिल की छत चौड़ी है जिस पर मध्य में संगमरमर की किल्पत कब्र है। महराबदार द्वार के ठीक ऊपर चार खुले मंडप बने हैं। प्रत्येक मंडप आठ स्तंभों पर आधारित है। मंडपों के बाहर की निकले छज्जे अत्यंत आकर्षक ढंग से तोड़ी पर सधे हुए हैं। भवनों के प्रत्येक कोनों पर अष्टकोणीय बुर्ज बने हैं, जिन पर गोल गुंबद है। स्तंभों के नीचे के भाग तथा शीर्ष अलंकृत हैं। कोने के मंडपों पर पशुओं की आकृतियाँ बनी हैं। पर्याप्त काल तक यह भवन ईसाई मिशनिरयों द्वारा प्रयोग में लाया गया। आजकल यह भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के अधीन है।

3.3.7.3. इतमाहुदौला का मकबरा

इस मकबरे का निर्माण नूरजहाँ ने सन् 1626 में अपने पिता की यादगार में करवाया था। यह मकबरा चारों ओर से दीवारों द्वारा एक आहाते में घिरा हुआ है, जो 540 फीट लंबा तथा इतना ही चौड़ा है। यह यमुना के बाएँ किनारे पर स्थित है। द्वार में प्रवेश करने के पश्चात् यदि ध्यान से देखा जाय तो यह मकबरा उद्यान के मध्य में ही स्थित ज्ञात होता है। जिसमें से चारों ओर तालाब और फौवारे आदि लगे हुए हैं। यह दुमंजिला भवन है जिसका फर्श वर्गाकार है और जिसके प्रत्येक ओर 70 फीट की दीवार है। चौड़े अठपहलु बुर्ज मीनारों के रूप में चारों कोनों में स्थित है। दूसरी मंजिल में छत के ऊपर एक मंडप भी है। मुख्य हॉल प्रत्येक ओर 22 फीट 4 इंच है। हॉल का फर्श श्वेत संगमरमर का बना हुआ है तथा बहुत ही कलापूर्ण ढंग से पच्चीकारी की गई है। इस हॉल के अंदर ही इतमाहु दौला और उसकी पत्नी की समाधियाँ हैं। हॉल की दीवार पर कुरान की लिपि खुदी हुई है। हॉल से लगे अनेक कमरे हैं जिनमें इतमाहु दौला के परिवार जनों की कर्क्ने हैं।

ऊपर मंडप में वर्गीकृत कक्ष है, जिसकी दीवारें पर्दे के आकार की संगमरमर की जालियों की बनी हैं। इसका फर्श भी पॉलिश किया गया है। यह प्रथम इमारत है जिसमें श्वेत संगमरमर का प्रयोग प्रथम बार किया गया है। स्थापत्य की दृष्टि से यह भवन अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रथम बार इसमें पिट्रा ड्यूरा का प्रयोग किया गया था। पर्सी ब्राउन के अनुसार इसमें पच्चीकारी का काम औपस ड्यूरा का है जिसके अंदर लेपिस, ओनिक्सी, जैस्पर, ट्रीपस, और कोरनेलियन जैसे कड़े पत्थर जड़े हुए हैं।

3.3.7.4. जहाँगीर का मकबरा (शाहदरा)

जहाँगीर कालीन अंतिम भवन उसका स्वयं का मकबरा है। यह लाहौर के निकट शाहदरा में है। संभवत: इसका डिजाइन जहाँगीर ने स्वयं तैयार किया था, परंतु इसे उसकी रानी न्रूजहाँ ने ही पूर्ण किया। सिकंदरों के मकबरे की शैली से बहुत कुछ इसकी शैली मिलती है। परंतु इसमें उसकी भव्यता और मोहकता का अभाव है। संपूर्ण इमारत वर्गीकृत तथा 22 फीट ऊँची बनी हुई है। इसके चारों कोनों पर सुंदर मीनारें बनी हैं। पहले मकबरे की छत के बीच में एक मंडप निर्मित किया गया था, जो नष्ट हो चुका है। मकबरे के मध्य में हॉल है जिसमें कब्र बनी है। मकबरे की साज-सज्जा टाइल के प्रयोग द्वारा तथा दीवारों पर लगाए गए चलस्तर द्वारा की गई हैं।

3.3.8. शाहजहाँ कालीन स्थापत्य कला

शाहजहाँ मुगल युग का एक महान निर्माता था। इसके युग में स्थापत्य कला अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। पर्सी ब्राउन इस विषय में लिखते हैं कि "With the reign of emperor Shah jahan the golden era of Mughal domination was attained a period which found expression in a style of architechture of exceptional splendor carried to the highest degree of perfection". डॉ. ईश्वरी प्रसाद भी लिखते हैं कि "मुगल काल का सबसे महान निर्माता शाहजहाँ था। उसका राज्यकाल भारतीय स्थापत्य कला के इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से प्रसिद्ध है। भारतीय वैभव और कला का पूर्ण विकास इस सम्राट द्वारा बनवाए गए भवनों और मकबरों में छलकता है। इमारतों की विशालता और साथ-ही-साथ उनकी सुकुमारता और सौंदर्य भारतीय कला और कारीगरी की विशेषताएँ हैं, जो दूसरे देशों की इमारतों में कदाचित् ही देखने को मिलेंगी। स्वच्छ और निर्मल संगमरमर की बनी हुई इमारतें अपनी भव्यता के लिए संसार में प्रसिद्ध हैं। वास्तव में पत्थरों में प्राण डालने का श्रेय शाहजहाँ को ही जाता है। जहाँगीर काल तक मुगल स्थापत्य कला शैली का पर्याप्त निखार हो चुका था। शाहजहाँ स्वयं भी कला का पारखी था। अतः इसके युग में स्थापत्य कला अपने चरम विकास पर पहुँच गया था। अकबर को जितना अनुराग लाल पत्थरों से था, उतना ही शाहजहाँ को श्वेत संगमरमर प्रिय था। इस विषय में डॉ समरबहाद्सुसिंह लिखते हैं कि ''तड़क-भड़क के शौकीन इस बादशाह को आगरा दुर्ग में बनी शाह बाबा की लाल कत्थई पत्थरों की इमारतें न भाई। अतः यमुना की ओर की अकबरी इमारतों को यह एक-एक करके दहाता गया और उनकी जगह बनवाता गया सफेद चमचमाते संगमरमरों के ये भवन, जिन्होंने उसके यशस्वी युग में चार चाँद लगा दिए। लाल पत्थरों की दुनिया संगमरमरों में बदल गई।" उसके काल में स्थापत्य कला की शैली में परिवर्तन आए। अकबरकालीन भवन भारतीय शैली के अधिक निकट है जबकि शाहजहाँ द्वारा भवनों में विदेशी शैली की पर्याप्त झलक है। उसी प्रकार अकबरी भवनों में हमें यदि विराटता और सादगी के दर्शन होते हैं तो शाहजहाँकालीन भवनों में सौंदर्य और मोहकता के। अकबरकालीन स्थापत्य तथा शाहजहाँकालीन स्थापत्य के अंतर पर प्रकाश डालते हए भी लुनिया लिखते हैं। "शाहजहाँ की इमारतें अकबर की इमारतों की अपेक्षा भव्यता और मौलिकता में निम्न कोटि की है। फलस्वरूप शाहजहाँ की इमारतें बड़े पैमाने पर रत्नजटित आभूषणों के समान है। उसके राज्याश्रय में जड़िया और चित्रकार की कलाएँ सफलतापूर्वक सम्मिलित हो गई है। यदि अकबर की इमारतों का सौंदर्य विराट है तो शाहजहाँ की इमारतों का सौंदर्य सूक्ष्म और कोमल है। यदि अकबरकालीन कला में महाकाव्य की विराट गरिमा और दिगंत का विस्तार है तो शाहजहाँ की कला में अलंकृत नीति काव्य की रसात्मकता और सूक्ष्म चमत्कार है।.... सोने के रंग का मुक्त प्रयोग् नक्काशी की सूक्ष्मता तथा रत्नों व मणियों का कलापूर्ण जड़ाव शाहजहाँ की इमारतों में विलक्षण हैं। शाहजहाँयुगीन स्थापत्य में नक्काशी कला व चित्रण कला की विशिष्टता भी अधिक है। यदि ताज में नक्काशी कला का अधिक्य है तो दीवाने खास में चित्रण कला का।" अकबरकालीन भवनों में जो हिंदू प्रभाव पाया जाता है, वह शाहजहाँ के युग में समाप्त हो गया। शाहजहाँकालीन स्थापत्य पर प्रकाश डालते हुए डॉ. समरबहाद्गुसिंह लिखते हैं कि ''शाहजहाँनी भवनों में देशी-विदेशी शैलियों का सामंजस्य था। कटाबदार मेहराब, छरहरे खंबे, बल्यनुमा गुंबद, फौवारों का आयोजन आदि इस शैली की विशेषताएँ हैं। अकबरी प्रासादों का अलंकरण होता था बेल-कूटी की नक्काशी तथा दीवारों और छतों पर रंग-बिरंगी चित्रों से। लाल पत्थरों में यह फबता भी खुब था, किंतु संगमरमर में इस तरह के अलंकरण की गुजहंश ज्यादा न थी..... इस पर साज-सज्जा बहुत सोच समझकर उपयुक्त मात्रा में ही की जा सकती थी।

गौरवपूर्ण नायिका की भाँति इनमें उतना ही शृंगार फबता जिससे इनका सहज सौंदर्य और निखर उठता। कुछ सुडौल अंग प्रत्यंग खुले छूटे रहने पर ही मोहक दीखते। शाहजहाँ ने इस अलंकरणके लिए विशिष्ट शैली अपनाई, जिसे पच्चीकारी (पीट्रा ड्यूरा) कहते हैं। बेशकीमती रंग-बिरंगे प्रस्तर खंडों में यथोचित मात्रा में उपयुक्त स्थानों पर विभिन्न रूपों में जड़ावट- यहीं वह अनूठी शैली थी। आगरा के किले में बनी इमारतें-

(1) खास महल

(2) अंगूरी बाग

(3) झरोखा-दर्शन

(4) मुसम्मन- बुर्ज

(5) मच्छी भवन

(6) शीशमहल

(7) व्यक्तिगत मस्जिद

(8) नगीना-मस्जिद

(9) मोती मस्जिद

(10) दीवाने आम

(11) दीवाने खास

3.3.8.1. आगरे का जामा मस्जिद

यह मस्जिद आगरा फोर्ट रेलवे स्टेशन के पास है। इसका निर्माण शाहजहाँ की पुत्री जहानआरा ने सन् 1648 में करवाया था। इसकी लंबाई 130 फीट है तथा चौड़ाई 100 फीट है। यह लाल पत्थरों द्वारा निर्मित है। मस्जिद तीन भागों में विभाजित है, जो तीन गुंबदों द्वारा आच्छादित है। ये गुंबद महराबों के माध्यम से सधे हुए हैं। इसकी महराबें सामने की ओर चौड़ा स्थान छोड़कर बनाई गई हैं। सामने की ओर पाँच महराब हैं। मध्य की महराब अगल-बगल की महारबों से बड़ी है। इनके सामने एक खुला सहन है। मध्य की महाराब लगभग 40 फीट चौड़ी है। दिल्ली की मस्जिद की तुलना में यह अधिक सुंदर तथा पूर्ण नहीं है। इसके गुंबदों की ऊँचाई तथा परिधि बहुत कम है अतः ये अधिक आकर्षक नहीं बन पाए हैं। लंबी मीनारों का अभाव भी खटकता है। वास्तव में जामा मस्जिद का आतंरिक भाग अत्यंत सादगी लिए हुए है। मानो इसका निर्माण केवल नमाज पढ़ने के लिए ही किया गया था।

3.3.8.2. दिल्ली का लाल किला

सन् 1638 में शाहजहाँ ने दिल्ली के पास एक नए नगर की स्थापना की, जिसका नाम उसने अपने नाम के आधार पर 'शाहजहाँबाद' रखा। इस नगर में ही उसने लाल किले का निर्माण करवाया। यह किला आगरा के लाल किले से पर्याप्त मिलता जुलता है परंतु आकार में छोटा होने के साथसाथ अधिक दृढ़ नहीं है। यह उत्तर से दक्षिण में 3200 फीट तथा 1650 फीट की लंबाई और चौड़ाई में फैला हुआ है। आगरे के किले के समान कंग्र्रेदार दीवारों द्वारा घिरा हुआ है। इसके तीन द्वार हैं। मुख्य द्वार को देखकर उच्च कोटि की स्थापत्य कला का ज्ञान होता है। शेष दो द्वारों में से एक व्यक्तिगत द्वार है तो दूसरा नदी द्वार।

इस किले में शाहजहाँ ने अनेक संगमरमर की सुंदर तथा मोहक इमारतें बनवाई। इन इमारतों में रंगमहल, हीरामहल तथा मोतीमहल का विशेष महत्व है। अधिकांश महलों के फर्श संगमरमर के बनवाए गए थे। दीवाने आम और दीवाने-खास सरकारी भवन है। उनके पास ही संगीत भवन तथा अनेक बाजार निर्मित किए गए थे। प्रत्येक महल के सामने शोभा बढ़ाने वाले मनोहर उद्यान बने हुए थे। जिनमें फूलों की क्यारियाँ शोभा बढ़ाती थीं। भवनों को कंगूरी की पत्तियाँ, चमकते गुंबदों और हवादार गोखों द्वारा सजाया गया था। भवनों का जाली का कटाव, आकर्षक महराब और दीवारों पर बने चित्र उनकी सुंदरता में चार चाँद लगा देते थे।

किले के विशाल भाग में चतुर्भुज आकार का दीवाने आम है। दीवाने आम के दो ओर वर्गाकार स्थान में न्यायालय तथा शाही परिवार के भवनों की शृंखलाएँ हैं। ये समस्त भवन पूर्ण योजना के अनुसार बनाए गए थे। स्थापत्य कला की दृष्टि से दीवाने खास और रंगमहल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रंगमहल, मोतीमहल तथा हीरामहल शैली की दृष्टि से एक-दूसरे से पर्याप्त मिलते-जुलते हैं। प्रत्येक में एक हॉल वाली मंजिल है जो चारों ओर खुली हुई है। तथा प्रत्येक की छत पत्तीदार महराबों से सधी हैं। ऊपर की छत अत्यंत कलापूर्ण ढंग से सजी हुई थी। तथा जिस पर बहुमूल्य पाषाण और सोने का मिश्रित अलंकरण किया गया था। दीवारों और महराबों की शोभा, गुलाब, लिली आदि के फूलों की सज्जा से और बढ़ गई थी।

दिल्ली के लाल किले की इमारतें-

(1) दीवाने-खास

(2) रंग-महल

(3) दीवाने-आम

3.3.8.3. दिल्ली की जामा मस्जिद

लालिकले के निकट ही शाहजहाँ ने दिल्ली में जामा मस्जिद का निर्माण करवाया था। यह आकार में पर्याप्त बड़ी तथा सुंदर इमारत है। सन् 1644 में इसका निर्माण आरंभ हुआ था तथा सन् 1658 तक यह बनकर तैयार हो गई थी। यह एक उठी हुई नींव पर बनी है तथा इसमें तीन विशाल द्वार है। सर्वसाधारण जनता उत्तर तथा दक्षिण द्वारों से होकर प्रवेश करती थी। शाही परिवार के सदस्य पूर्वी द्वार से प्रवेश करते थे। संपूर्ण भवन में तीन बड़े-बड़े कुज्बे वाले श्वेत संगममर के गुंबद बने हैं। स्थापत्य की दृष्टि से यह एक पूर्ण इमारत है।

3.3.8.4. ताजमहल

शाहजहाँ द्वारा निर्मित भवनों में ताजमहल एक अनुपम तथा अद्वितीय कला है। इस मकबरे का निर्माण शाहजहाँ ने अपनी सर्वप्रिय बेगम अर्जुमंदबानू बेगम (मुमताजमहल) की याद में किया गया था। मुमताज का सौंदर्य इतनी विशिष्ट मोहकता रखता था कि मृत्यु के पश्चात् भी उसका लावण्य शाहजहाँ की आँखों में मंडरता रहा और उसकी स्मृति को स्थायी करने के लिए ही उसने ताजमहल को जन्म दिया। आज इस नश्चर संसार में मुमताजमहल नहीं हैं परंतु उसकी स्नेह की पवित्र याद दिलाने के लिए स्वप्नों में खोया ताज मानव प्रेम की स्थिरता का आदर्श बना खड़ा है।

आगरा में यमुना के दाहिने किनारे पर ताजमहल स्थित है। इसका निर्माण सन् 1631 के लगभग प्रारंभ हुआ था और सन् 1653 तक यह बनकर पूर्ण हो गया। इस प्रकार मकबरे के पूर्ण होने में लगभग 22 वर्ष लगे और लगभग पचास लाख रूपया इसके निर्माण का व्यय आया। इसके बनाने में जिस मुख्य कलाकार का हाथ था. इस पर विद्वानों में मतभेद है। स्पेनिश यात्री का कथन है कि इसका निर्माण वीनस-निवासी जेरोनीमो बैरोनीयो ने किया था। यह संभव हो सकता है कि शाहजहाँ ने वीनस के निवासी से इसके निर्माण के विषय में किसी प्रकार की सलाह ली हो परंतु ऐसा ज्ञात नहीं होता कि उसका नक्शा पूर्णतया उसी के द्वारा निर्मित हुआ था। किसी भी मुगलकालीन लेखक या यात्री ने भी इस बात का उल्लेख नहीं किया कि ताज के निर्माण में किसी विदेशी का हाथ था। टेबर्नियर और बर्नियर बेसनियर मौन हैं. वे विषय पर तिनक भी प्रकाश नहीं डालते। थायिनॉट नाम के फ्रेंच यात्री ने सन् 1640 में ताज के विषय में लिखा था, ''यह अद्भृत इमारत ही यह बताने के लिए कि भारतीय निर्माण कला से अनिभज्ञ नहीं है, यद्यपि इसकी निर्माण शैली यूरोपवासियों को कुछ अच्छी लगी। यह एक कलात्मक रुचि का द्योतक है और इसे देखकर हर कोई यह कहेगा कि यह सुंदर है।" स्पष्ट है कि इस कथन में भी ताज को किसी विदेशी निर्माता का नहीं माना गया है। इस विषय में अब्दुल हमीद लाहौरी का कथन उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं ''यह उल्लेखनीय है कि बादशाह को सल्तनत के कोने-कोने से मूर्तिकार, संगतराश, राज, चित्रकारी करने वालों के झूंड के झूंड आ गए। प्रत्येक कला के विशेषज्ञ अपने सहायकों के साथ जुट गए।'' महाजन दंपत्ति के अनुसार, 'यह बात स्मरणीय है कि इस इमारत को यदि आलोचनात्मक दृष्टि से

भी देखा जाय तो भी यह एशिया की निर्माण शैली की प्रतीत होती है। इस पर ईरानी शैली का, यूरोप की शैली में नगण्य प्रभाव से कहीं अधिक प्रभुत्व है। हैबेल के मतानुसार भी ताज के निर्माण में किसी भी यूरोपीय शैली की प्रमुखता नहीं ज्ञात होती। उनके शब्दों में ''ताज का नक्शा एक वीनस निवासी द्वारा बनाया गया है। इस मत की दृष्टि से कोई प्रमाण नहीं मिलता। पर्सी ब्राउन का मत भी हैबेल के मत से मेल खाता है। उनका कथन है ''यह बात ध्यान देने योग्य है कि जहाँ इसके निर्माण की माप-तौल का कार्य मुसलमानों के हाथों में था, इसकी सजावट का कार्य हिंदू कारीगरों के हाथ में था, विशेषतः रंगीन पत्थर के बेल बूटों का कठिन कार्य कन्नौज के हिंदू कारीगरों द्वारा ही कराया गया।'' वे आगे और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं ''इसका गुंबद बनावट के विचार से तैमूर शैली का है, किंतु इसकी गुलाई में गहराई वाले छत्र की तरह तनी हुई बनावट की शैली विशुद्ध भारतीय है, जो एक दूसरे पर चढ़ती हुई चिनाई के घेरे में हिंदू मंदिरों के शिखर पर कलश की भाँति बनी हुई है।' परंतु फर्ग्यूसन के मतानुसार ताजमहल के निर्माण के लिए फ्लोरेन्स से इटालियन कलाकारों को लाया गया था। ये कलाकार संगमरमर के बहुमूल्य पत्थर जोड़ने की कला में विशेष निपुण थे। वास्तव में भारत में उन्होंने ही बहुमूल्य पत्थर जोड़ने की कला का आरंभ किया, मुख्यतया शाहजहाँ-युग में फर्ग्यूसन कहते हैं कि ''यह कहना कि किसी भी भारतीय लेखक ने किसी विदेशी कलाकार का उल्लेख नहीं किया, इसका कारण यह है कि कोई भी भारतीय अपने से सिद्धहस्त कलाकार का उल्लेख करना अपमान समझता। दूसरे, इटली के निर्धन कलाकारों को इतना समय ही नहीं मिल पाता था कि वे अपने कलात्मक कार्यों का कहीं उल्लेख कर पाते।" स्मिथ के मतानुसार भी ताज एशियायी और यूरोपीय विद्धता का अद्भत मिश्रण है परंतु आधुनिक खोजों ने पर्यूसन और स्मिथ के मतों का खंडन कर दिया है। अब प्रायः विद्वान् उस्ताद अहमद लाहौरी को ताजमहल का प्रमुख कलाकार मानते है। परंतु यथार्थ में ताज के निर्माण की समस्त योजना शाहजहाँ के मस्तिष्क की स्वयं की उपज थी। इस पर भी उसके सलाहकार हिंदू और मुसलमान दोनों थे। हैबैल ताज को सांसारिक (अरबी) शैली का भी नहीं मानते थे उनके अनुसार ताज का आकर प्रकार बहुत कुछ जावा के चण्डीसेना के मंदिर से मिलता-जुलता है अतः इसकी कला मूलतः भारतीय है।

ताज का प्रसिद्ध मकबरा 22 फुट ऊँचे चौकोर चबूतरे पर निर्मित किया गया है। इसकी लंबाई चौड़ाई 186 फीट है, इसके पाँच गुंबद हैं, जिसमें प्रधान गुंबद 187 फुट ऊपर बने हुए हैं। मध्य के प्रधान गुंबद गुंबद की शोभा को और भी अधिक बढ़ा देते हैं। मध्य का प्रधान गुंबद एक विशेष महत्वरखता है। इसकी आकृति बहुत कुछ जरुसलम में बने गुंबद से मिलती जुलती है। गुंबद का ऊपरी भाग फारसी कला से प्रभावित है तो निचला भाग हिंदू भाग हिंदू कला का प्रतीक है। चबूतरे के चारों कोनों पर संगमरमर की तीन मंजिली 137 फीट ऊँची मीनारें है। चारों कोनों में खड़ी ये मीनारें ऐसी प्रतीत होती है कि मानों शाहजहाँ के पवित्र प्रेम का संदेश समस्त दिशाओं को दे रही हैं।

ताजमहल के आतंरिक कमरों की योजना हुमायूँ के मकबरे से पर्याप्त मिलती है। मध्य में अठपहलू केंद्रीय हॉल है जिसके नीचे तहखाने में भी कब्रे हैं। केंद्रीय हॉल में किल्पत कब्रें श्वेत संगमरममर की बड़े आकर्षक ढंग से बनायी गई है। कब्रों को फूल पत्तियों की पच्चीकारी से अलंकृत किया गया है। सजावट में बहुमूल्य पत्थरों का प्रयोग किया गया है। दोनों कब्रे जालीदार आठ फीट ऊँचे परदे से घिरी हुई थी। वह जालीदार पर्दा भी संगमरमर का बना हुआ है। संपूर्ण भवन में प्रकाश आने का प्रबंध बड़े नियोजित ढंग से किया गया है। गुलाब तथा अन्य पौधे की पत्तियों की संगमरमर पर खुदाई बड़े ही कलापूर्ण ढंग से बनाई गई है। शाहजहाँ ने उस्ताद अहमद लाहौरी को 'नादिरी-उल-असर' (उस युग का आश्चर्य) नामक उपाधि से विभूषित किया था।

ताज के विषय में उल्लेख है कि सम्राट और साम्राज्ञी के मकबरे बने हुए हैं। कोई भी दर्शक प्रारंभ में ताज की सीमा में प्रवेश करता है तो वह तोरणयुक्त लाल पत्थर के भवनों को दोनों ओर पाता है। इसके पश्चात् दुहरे महराबदार लाल पत्थर के द्वार में प्रवेश करना पड़ेगा। इसी प्रकार के द्वार चारों ओर बने हैं। उत्तर का प्रवेश द्वार मकबरे की ओर ले जाता है। यह द्वार अलंकृत है तथा इसका निर्माण रेत के पत्थरों द्वारा किया गया है। मध्य में नुकीला महराब है, दो छतिरयाँ हैं जो दो ब्रेकेटों के द्वारा सधी हैं। द्वार का मत्था बहुत सुंदर अरबी लिपि द्वारा दोनों ओर सजाया गया है। यह द्वारा ग्यारह गोलाकार शृंगों द्वारा आच्छादित है। मकबरे के दूसरी ओर भी द्वार की साज-सज्जा इसी प्रकार की गई है। प्रवेश द्वार के पश्चात् ही मनोहर उद्यान प्रारंभ हो जाता है। यह उद्यान वर्गाकार है तथा इसकी प्रत्येक दिशा 1000 फीट है। उद्यान के उत्तरी सिरे पर श्वेत संगमरमर की खुली छत है। इस छत के मध्य में 22 फुट की ऊँचाई पर स्वप्नों में खोया मुमताज का मकबरा खड़ा है। इस मकबरे के पश्चिम में मस्जिद है तथा पूर्व में उसी प्रकार की शाही मेहमानों के लिए एक इमारत बनी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मकबरा उद्यान के ठीक मध्य में नहीं है, जैसे अन्य मकबरों में हैं।

हैबेल के मतानुसार ताज का संपूर्ण ढाँचा सारेसेनिक न हो कर मुख्यतया हिंदू शैली का है। उनके अनुसार, हुमायूँ के मकबरे की अपेक्षा ताज की शैली बहुत कुछ जावा में बने चण्डीसेना के मंदिर से मिलती-जुलती है जो सन् 1098 में बना था। इसके गुंबद का आकार प्रकार भी हिंदू शैली का है परंतु पर्सी ब्राउन का मत है कि मध्य का विशाल गुंबद शैली का नकल है और छोटे गुंबद भारतीय शैली से प्रभावित हैं।

शाहजहाँ यमुना के उस पार एक दूसरा काले पत्थर का ताजमहल और बनवाना चाहता था। दूसरे ताज की नींव डाली भी जा चुकी थी, परंतु झ्म बीच पुत्रों में गृहयुद्ध आरंभ हो गया और उसकी योजना अधूरी ही रह गई। दूसरे ताज का निर्माण शाहजहाँ अपने मकबरे के लिए करना चाहता था।

3.3.8.5. ताज की विशेषताएँ

अनेक विद्वानों ने ताज के स्थापत्य तथा सौंदर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस मकबरे के सौंदर्य की नियुक्ति करने वाली इसकी स्थिति है। यमुना के श्यामल जल में पड़ने वाला ताज का प्रतिबिंब इसके सौंदर्य को सहस्त्र गुना बढ़ा देता है। वर्षा काल में आकाश में तैरते काले बादल ताज के संगमरमरी शरीर पर किसी गौरवपूर्ण नारी की अपार केशराशि के सदृश्य ज्ञात होते हैं। फर्ग्यूशन ताज की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं आगरे का ताजमहल संभवत: अकेला ही ऐसा मकबरा है जो अपनी महत्ता को अपनी सादगी के साथ लिए खड़ा है। संभवत: संसार भर में कहीं भी ऐसा दृश्य नहीं हैं जहाँ प्रकृति और कला एक सर्वश्रेष्ठ कला की मूर्त रूप करने में इतनी सफलता से आ जुटी हो, जैसा इस प्रसिद्ध मकबरे की सीमा में।" वास्तव में ताज के सौंदर्य में एक चतुर्थ सादगी छिपी है जो दर्शक के मन पर महल वहन वेदनापूर्ण प्रभाव डालती है।

ताज के सामने का उद्यान उसकी मनोहरता को बढ़ाने में विशेष योग देता है। हरियाली के पश्चात् श्वेत मकबरे पर अब आँखे ठहरती हैं, तो मन मुमताज की करुण स्मृति में डूब जाता है। डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार ताज का डिजाइन इतने नाप-तौल तथा वैज्ञानिक ढंग से बनाया गया है कि उसने उसके सौंदर्य को अमरता प्रदान कर दी है। दूसरे शब्दों में ताज के निर्माण में मनोहरता और सौंदर्य का ध्यान रखने के साथ-साथ दृढ़ता और व्यवस्था का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है।

प्राकृतिक वातावरण में परिवर्तन के साथ-साथ उसके सौंदर्य की परिवर्तनता। एक विद्वान के शब्दों में, ''इस इमारत में विशेष बात यह है कि इस पर बाहरी वातावरण का तनिक भी प्रभाव नहीं है और न ही प्रकाश का उसकी संगमरमर की दीवारों पर कोई प्रभाव है। मकराना की भद्दी पहाड़ियों से पहली बार निकाला हुआ यह संगमरमर बहुत ही बढ़िया नम श्वेत पत्थर, हल्की भूरी झनक लिए हुए है। सिदयों से धूप ने इसे कोमलता प्रदान की तथा वर्षा में निकट के प्रदेश से लाल धूल ने उड़कर इस पर एक ऐसी पर्त जमा दी है जो सरलता से दीख नहीं पड़ती, किंतु इसमें छाये हुए, भिन्न-भिन्न रंग भली प्रकार झलक जाते हैं परिणामस्वरूप, यह इमारत दिन में अनेक रंग में रंगी हुई प्रतीत होती है। प्रायः शीतल भूरीसी, झिलमिलाती श्वेत, दोपहर और संध्या में खिले गुलाबी रंग की अन्य रंगों की झलक में नहायी-सी प्रतीत होती है। पूर्णिमा के चंद्रमा की चाँदनी में एक अद्भुत रंग इसमें भर जाता है। कभीकभी तो इसके बाग के फूलों की भूमिका में एक सौंदर्यपूर्ण चित्र खिंच जाता है और ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति और मनुष्य दोनों ने अपने हाथ मिलाकर एक अत्यंत लुभावना दृश्य स्थापित किया।''

हैबेल के मतानुसार ताज में हमें नारी भावना के दर्शन होते हैं। एक नारी में प्रतीत होता लज्जा, कोमलता तथा लालित्य के जो गुण होते हैं, वे ही ताज को देखने में प्रतीत होते हैं। इसीलिए वे ताज को (The apothesis of Indian womanhood) कहते हैं। भवन की अपेक्षा यह मूर्ति के रूप लिए अधिक ज्ञात होता है। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, ''ऐसा कहने में अत्युक्ति नहीं होती है कि मकबरे की कारीगरी और सुंदरता में स्थान-स्थान पर काव्योचित सौंदर्य बिखर पड़ता है। ... ताज प्रातः काल के समय एक स्वप्न की आभा से परिपूरित जान पड़ता है। एक धूमिल संध्या में ताज दिनकर की स्वर्ण रिश्मयों में अलंकृत हो स्वर्णमयी आभा से व्याप्त हो उठता है और शाही दांपत्य की गौरवगाथा का गान करता प्रतीत होता है। यमुना नदी के तट पर बना यह मकबरा उसकी लहरों से खेलता हुआ वास्तव में दो प्रेमियों के सच्चे अनुराग का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है।

ताज के अनुपम सौंदर्य पर प्रकाश डालते हुए डॉ. समरबहाद्गुसिंह लिखते हैं कि ''मादक उद्यान के एक सिरे पर सिरतातट से सटी नपी-तुली नाक नक्शेवाली यह धवलवर्णी अलबेली इमारत पच्चीकारी के अलंकरण से विभूषित ऐसी लगती है कि जैसे कोई मध्यकालीन छबीली नायिका सजी-धजी प्रियतम की राह निहारती खड़ी हो। चबूतरे के चारों कोनों पर उभरती श्वेत मीनारें मानों उसके चारों ओर खड़ी पिरचारिकाएँ हो।'' वे एक स्थल पर और लिखते हैं, ''यमुना की पृष्ठभूमि के पीछे खुला नीला आकाश, सामने लहलहाता, नयनाभिराम उद्यान, दुधिया रंग के दमकते संगमरमर, पच्चीकारी की अनूठी सजावट, आनुपातिक अंग-प्रत्यंग, चार मंडपों के बीच उभरता हुआ यह आलीशान गुंबद प्रहरी की भाँति चारों कोनों पर खड़ी चार छरहरी श्वेत मीनारें और इन सबके आगे पीछे जल में झलकती परछाई ताज को सचमुच संसार का अनुपम स्मारक बना देती है। सभी उपकरण इतने उपयुक्त व इतने आनुपातिक ढंग से लगाए गए हैं कि उनका संतुलन एवं कौशलपूर्ण आयोजन ही इस समाधि भवन को विश्व में अप्रतिम बना देता है।''

3.3.9. औरंगजेब कालीन स्थापत्य कला

शाहजहाँ के पश्चात् स्थापत्य कला का अंत हो गया, जिसका प्रमुख कारण औरंगजेब की कट्टर तथा पक्षपातपूर्ण नीति है। पर्सी ब्राउन के मतानुसार मुगल स्थापत्य कला के विकास में मुगल शासकों का हाथ था अतः जब तक वे योग देते रहे तब तक इस कला का विकास भी होता रहा और जब औरंगजेब के काल में इसके प्रति उदासीनता प्रकट की जाने लगी, तो स्थापत्य कला का पतन भी होने लगा। वास्तव में अपने पिता के स्वभाव के विरुद्ध औरंगजेब को किसी भी कला से अनुराग नहीं था। उसके शासन काल में कुछ इनी-गिनी इमारतों का ही निर्माण हुआ, जो स्थापत्य की दृष्टि से उनके पूर्वजों द्वारा निर्मित

भवनों की अपेक्षा कहीं अधिक निम्न कोटि की हैं। दिल्ली के लाल किले में उसने श्वेत संगमरमर की एक मस्जिद का निर्माण करवाया, जो उसके पिता द्वारा निर्मित आगरे के किले की मोती मस्जिद से बहुत कुछ मिलता है।

सन् 1679 में दक्षिण में औरंगजेब ने अपनी सर्वप्रिय रानी रिबया दुर्गनी की याद में एक मकबरा बनवाया जो दूसरा ताजमहल कहलाता है। यह मकबरा ताज की नकल है परंतु स्थापत्य की दृष्टि से निम्न कोटि की इमारत है। आकार में यह ताज से आधी थी। श्वेत संगमरमर का बना अष्टकोणीय पर्दा अवश्य एक कलापूर्ण नमूना है। औरंगजेब ने कुछ प्रमुख मिस्जिदों का भी निर्माण करवाया था। लाहौर की बादशाही मिस्जिद स्थापत्य कला का एक अच्छा उदाहरण है। इसका निर्माण शाही आदेश के द्वारा फिदाईखाँ की देख-रेख में किया गया था, परंतु आगरा और दिल्ली की जामा मिस्जिद की अपेक्षा आकार में बहुत छोटी है। औरंगजेब की दूसरी मिस्जिद विश्वनाथ मंदिर के भग्नावशेष पर निर्मित थी। इसी प्रकार एक अन्य मिस्जिद मथुरा में केशवदेव के मंदिर के स्थान पर बनवायी थी, जो लाल पत्थरों एवं बहुत विशाल आकार की है। यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि औरंगजेब कालीन भवन कलाहीन सजावट, सफाई और कट्टर विचारों के अच्छे प्रतिबिंब हैं।

3.3.10. मुगलकालीन चित्रकला की विशेषताएँ

मध्यकाल में चित्रकला का वास्ताविक विकास मुगलकाल से आरंभ होता है। औरंगजेब को छोड़कर समस्त मुगल शासक चित्रकला के प्रेमी थे। बाबर को जितना प्यार पेड़-पौधों और प्रकृति से था, उतना ही प्यार उसे चित्रकला से भी था। वह भारत में अपने साथ बिहजाद की चित्रकला लाया था। तैमूरी चित्रकला की प्रमुख विशेषता थी चीनी तत्वों के साथ उसका व्यक्तिवादी होना। इस कला में सादगी और सरलता का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता था। आगे चलकर तैमूरी चित्रकला में सूफी रहस्यवाद और प्रणय भावनाओं को भी विचित्र किया जाने लगा। वास्तव में बाबर कालीन चित्रकला बहुत कुछ तैमूर शैली से प्रभावित थी।

बाबर के समान हुमायूँ भी चित्रकला का अनुरागी था। उसके काल में भी चित्रकला का पर्याप्त विकास हुआ। राजनैतिक उथल-पुथल के कारण जब वह भारत छोड़कर फारस गया तो वहाँ वह अनेक चित्रकारों के संपर्क में आया। उसे चित्रकला से इतना प्रेम था कि युद्धयात्राओं में भी वह अपने साथ सचित्र पुस्तकें रखता था। भारत आते समय अपने साथ सैयदअली तबरीजी तथा ख्वाजा अब्दुलसयद नामक दो चित्रकार भी लेता आया। इन दोनों चित्रकारों की शैली विहजाद शैली थी। हुमायूँ के आदेश से ही दास्ताने-गम्भीर हमजा का चित्रण किया। संक्षेप में मुगलकालीन चित्रकला की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं। मुगलकालीन चित्रकला से विषयों को निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं-

(क) धार्मिक ग्रंथों के चित्र।

- (ख) इतिहास संबंधी चित्र।
- (ग) दरबारी तथा सामंती जीवन से संबंधित चित्र।
- (घ) आखेट-चित्र
- (इ) प्राकृतिक पशु-पक्षियों, फल-फूलों से चित्र।
- (च) मानवीय चित्र।
- (1) अकबर ने धार्मिक सिहष्णुता तथा हिंदू रानियों के प्रभाव के कारण इस युग में रामायण, महाभारत और अन्य धार्मिक कथाओं के चित्र बनवाए। इस कार्य के लिए प्रमुखरूप से हिंदू चित्रकार लगाए जाते थे। इस प्रकार के चित्रों की शैली अन्य चित्रों की शैली से भिन्न होती है।
- (2) इस युग में ऐतिहासिक चित्र भी बने जिनमें प्रमुखरूप से युद्ध संबंधी चित्र थे। इन चित्रों की प्रमुख विशेषता है- इनकी सजीवता।

- (3) कुछ पशु-युद्धों के चित्र भी बनाए गए, जिनमें बटेर, बैल, तीतर तथा मुर्गों को लड़ते दिखाया गया।
- (4) दरबारी जीवन का चित्रण करना मुगल शैली का प्रमुख विषय रहा है। शाही ठाठ-बाट को तुलिका द्वारा रंगना मुगलकालीन चित्रकार अपना परम कर्तव्य समझते थे। इस प्रकार के चित्रण का उद्देश्य पुरस्कार प्राप्त करना भी था। शाहजहाँ के काल में यह शैली पूर्णरूप से विकसित हो चुकी थी।
- (5) प्रकृति का चित्रण मुगल कलाकारों ने बड़ी कुशलता के साथ किया। पिक्षयों का चित्रण इस युग के चित्रकारों ने किया। पिक्षयों के चित्रण में मोर को सबसे अधिक प्रधानता दी गई। मोर के अनेक चित्र उपलब्ध होते हैं। चिड़ियों की चोंच और पंजों को बड़े आकर्षक ढंग से बनाया गया है। पशुओं में हाथी, ऊँट, बैल, बकरी, शेर तथा हिरण प्रमुख हैं। पहाड़ी दृश्यों का अंकन भी किया जाता था। परंतु इनकी संख्या बहुत कम है। पहाड़ी चित्र जहाँगीर के काल में अधिक बने। वृक्षों के चित्रण में विशेष सावधानी रखी जाती थी। पत्तियों और तनों आदि को बड़े कलापूर्ण ढंग से बनाया जाता था। कहीं-कहीं तो पत्तियों की नलों तक का उभार स्पष्ट झलकता था। जहाँगीर को फूलों से विशेष प्यार था। जहाँगीर और नूरजहाँ दोनों के उपलब्ध चित्रों में उन्हें गुलाब के फूल सूँघते दिखाया गया। मुगल चित्रकला में गुलाब का फूल विशेष रूप से दिखाया गया है।
- (6) प्राकृतिक चित्रों के समान मानवीय चित्रों का निर्माण पर्याप्त मात्रा में हुआ। मानवीय चित्र ईरानी और भारतीय दोनों प्रकार की शैलियों के थे। ईरानी चित्रों में छाया और प्रकाश (Light and shade) के नियमों का विशेषरूप से पालन नहीं होता था। भारतीय शैली के मानव-चित्र, हिंदू और मुसलमान दोनों कलाकारों के प्रयास का प्रतिफल थे। इनमें भारतीयता की छाप अधिक थी। राजा-महाराजा, सामंतों तथा शाही परिवारों के सदस्यों का चित्रण इनमें प्रमुखता से किया जाता था। कभी-कभी चमकीले रंग प्रयोग में लाए जाते थे।
- (7) मुगलकालीन चित्रकला में अनेक नवीन प्रणालियों का प्रयोग हुआ तथा चमक-धमक को विशेष महत्व दिया गया। इस विषय में भी विद्यार्थी लिखते हैं: ''अजंता को चिकनाहट पर समरकंद और हेरात को सुडौलता, अनुपात तथा फैलाव को नवीन प्रणालियों में लागू कर दी गई। पुरानी तड़क-भड़क में नई चमक दमक मिला दी गई और पुराने स्वतंत्र जीवन के स्थान पर दरबारी ढंग और अनुशासन आ गया।''
- (8) चित्रों में अनेक प्रकार के चमकीले रंग प्रयोग में लाए जाते थे। रंगों का प्रयोग इस कलापूर्ण ढंग से किया जाता था कि रंगों के स्थान पर प्राणियों का भ्रम हो जाता था।
- (9) इस युग के कलाकार जन साधारण के जीवन से संबंधित चित्र नहीं बनाते थे। ग्रामीण जीवन के दृश्यों का अंकन प्रायः मिलता ही नहीं।
- (10) मुगलकालीन चित्रकला में कृत्रिमता अधिक थी तथा सजीवता का उनमें पूर्णतया अभाव था। मानवीय चित्रों में मानवताओं का प्रायः अभाव-सा रहता था। केवल बाह्य सजावट पर ध्यान दिया जाता था लेकिन मुख, मस्तक, नाक आदि को बड़े कलात्मक ढंग से चित्रित किया जाता था। रेखाओं की गोलाई का अंकन बहुत ही कलापूर्ण ढंग से किया जाता था।

3.3.11. अकबर कालीन चित्रकला

अकबर के युग में चित्रकला की विशेष प्रगति हुई। अकबर कुरान का आदर करता था परंतु साथ ही उसका विश्वास था कि चित्रकला किसी भी व्यक्ति को पथभ्रष्ट करने की अपेक्षा ईश्वर प्रेमी बनाती है। उसने फारस के चित्रकारों को भी आमंत्रित किया। अबुलफजल के अनुसार फरुख तथा शौराब नामक चित्रकार विदेशों से ही आमंत्रित किए गए थे। अबुलफजल अकबर की चित्रकला के प्रेम के विषय में लिखता है ''बहत से लोग चित्रों से घुणा करते हैं, किंतु ऐसे लोगों को मैं नापंसद करता हाँ। मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि चित्रकला के माध्यम से चित्रकार एक चित्रमय ढंग से ईश्वर की पहचान करता है, क्योंकि हर चित्र को बनाते समय चित्रकार एक चित्रमय यह अनुभव करता है कि चित्र के हाथ, पैर, रूपरेखा आदि सब कुछ बन सकने के बाद भी वह उसे जीवन तथा व्यक्तित्व का जन्म नहीं दे सकता, यहीं उसे इस बात का आभास होता है कि ईश्वर ही केवल जीवन प्रदान कर सकता है।" वह आगे लिखते हैं कि "सम्राट इसे हर प्रकार से प्रोत्साहन देते हैं और उसे शिक्षा और मन-बहलाव दोनों का साधन मानते हैं इसलिए इस कला की वृद्धि हुई और अनेक चित्रकारों ने महान् यश प्राप्त किया है.... रंगों के मिश्रण की उत्तमता विशेष रूप से उन्नत हुई, जिसके कारण चित्रों में अकथनीय सुंदरता आ गई है। सर्वश्रेष्ठ सिद्धहस्त चित्रकार यत्र-तत्र पाए जाते हैं और उनकी उच्च कला-कृतियाँ 'बिहजाद' के योग्य है और वह जगत प्रसिद्ध यूरोपीय कलाकारों के मुधकारी चित्रों के साथ-साथ रखे जा सकते हैं। सूक्ष्म भावों का प्रदर्शन कला की श्रेष्ठता और कार्यकला का उत्साहपूर्ण चित्रण इत्यादि जो इस समय के चित्रों में भी देखा जा रहा है, वह अनुपमेय है। निर्जीव पदार्थों के चित्रों सें भी ऐसा भान होता है मानों उसमें आत्मा हो, जीवन हो। 100 से भी अधिक चित्रकला के प्रसिद्ध आचार्य आ चुके हैं। कितने ही इस कला में दक्ष हो चुके हैं और जो कलाकार अभी मध्य श्रेणी के हैं उनकी संख्या बहुत है। विशेषतः हिंदू कलाकारों के विषय में यह सत्य है कि उनके चित्र हमारी कल्पना से भी परे हैं, वास्तव में सारे संसार में उनके तुल्य थोड़े कलाकार पाए जाते हैं।'' अकबर के दरबार में अनेक चित्रकारों में से 17 प्रमुख चित्रकार थे इनमें से 13 हिंदू थे। फतेहपुरसीकरी के प्रासादों में इन चित्रकारों ने अपनी ही चित्रकला का प्रदर्शन किया था। इन चित्रकारों में दशवन्त, वसावन केस, लाल, मुकन्द, मधु, जगन, महेश, तारा, खेमकरन, हरिवंश, अब्दुलसमद, फारुखबेग खुशरुअली, जगदेव, साँवल तथा राम आदि थे। अब्दुलसमद के निरीक्षण में दशवन्त ने चित्रकला के क्षेत्र में विशेष प्रगति की थी। दशवन्त एक निम्न जाति में पैदा हुआ था परंतु कलाकार होने के कारण वह सम्राट की श्रद्धा का पात्र बन गया था। बसावन अंगप्रत्यंगों के रंगों का अंकन करने में विशेष दक्ष था। इस युग में 'चंगेज-नामा', रामायण, कालिया-दमन, जफर-नामा, नल-दमन, और 'राज्य-नामा' आदि ग्रंथों का विचित्रण किया गया था।

अबुल फजल अकबरकालीन चित्रकला के विकास के विषय में लिखता है कि ''जिस तरह इस उद्योग का उत्थान हुआ इसी तरह सुंदर चित्रों का निर्माण भी होने लगा। फारसी गद्य और पद्य की पुस्तकें चित्रों से अलंकृत की गई और बहुत- सी चित्ताकर्षक चित्रों का संग्रह किया गया। दास्ताने हम्जा को बारह दफ्तरों (जिल्दों) में विभक्त करके चित्रों द्वारा सुशोभित किया गया और निपुण चित्रकारी ने कहानी के एक हजार चार सौ अनुच्छेदों से संबद्ध चित्र बनाए जिन्होंने देखने वालों को चिकत कर दिया। चंगेजनामा जफरनामा, इकबालनामा, रज्मनामा, रामायण, नलनन्दन, काली-दमन और ऐयार दानिश आदि पुस्तकें चित्रों से अलंकृत की गई। बादशाह स्वयं अपना चित्र खींचने के लिए बैठते और उनकी आज्ञा से दरबार के अधिकारियों के चित्र भी खीचें गए और चित्रों की एक बड़ीं किताब (एल्बम) तैयार की गई। अतीत के लोगों को नया जीवन दिया गया और वर्तमान के लोगों को अमरता प्राप्त हुई। जिस तरह चित्रकारों के पद

ऊँचे हुए उसी तरह नक्काशी, सोने की कलई करने वालों, हाशियाँ सजाने वालों, सहाफान (जिल्दबाजी) का भी बाजार गर्म हुआ।

चित्रकला को विशेष रूप से प्रोत्साहन देने के लिए अकबर ने चित्रकला का एक अलग विभाग स्थापित किया तथा ख्वाजा अब्दुलसमद को इस विभाग का अध्यक्ष बनाया। वह एक योग्य चित्रकार था। उसके चित्रों में कोमलता और सुंदरता का अद्भुत मिश्रण है। इस कारण ही उसे 'शीरी-कलम' की उपाधि प्रदान की गई थी। तत्कालीन अनेक चित्रकारों ने अब्दुलसमद की प्रतिभा से लाभ उठाया। अकबर ने एक चित्रशाला का और निर्माण किया तथा मखतूब नामक प्रसिद्ध चित्रकार को उसका कार्यभार सौंपा। इस चित्रकला में विभिन्न देशों की शैलियों को संग्रहीत किया गया था। इस विभिन्न शैलियों से प्रेरणा लेकर ही तत्कालीन चित्रकार चित्र बनाते थे। इस चित्रकला में बिहजाद, सुलतान मुहम्मद, आगा मिराक तथा मुजफ्फरअली आदि प्रमुख चित्रकारों के चित्र संप्रहीत रहते थे। इस प्रकार के प्रोत्साहनों से चित्रकला का अपूर्व विकास हुआ। अबुलफजल लिखता है कि "इस प्रकार रेखाओं की भव्यता और कला कौशल के धारण चित्रों में सजीवता ज्ञात करने लगी।" अनेक चित्रकार मिलकर कभी-कभी एक महान कलापूर्ण चित्र को जन्म देते थे। अब्दुलसमद ने इण्डो-पर्शियन (Indo-Persian) कला को जन्म दिया। अकबर के काल में फारसी-शैली और हिंदू शैली दोनों का अद्भुत मिश्रण हुआ तथा धीरे-धीरे इस नवीन शैली में से विदेशी तत्वों का लोप हो गया। इस विषय में डॉ. आशीर्वादीलाल लिखते हैं "The two styles Persian and gradually fursed into one of the foreign elements disappeared so that it eventually became purely Indian" कि दूसरे शब्दों में अकबर से पूर्व चित्र कला पर ईरानी प्रभाव अधिक था। बाद में अकबर के काल में भारतीय और ईरानी शैलियाँ परस्पर घुल-मिल गई, परंतु यह दशा भी अधिक समय तक न रह सकी और धीरे-धीरे भारतीय कला अपना प्रभाव प्रकट करने लगी। श्री दिनकर के अनुसार मुगल-कला का जन्म अकबर के समय में ही हुआ था और इस कला में पर्याप्त मात्रा में भारतीय तत्वों का समावेश हो गया था। वे लिखते हैं कि ''जो कला भारत में मुगल-काल कही जाती है, यह वास्तव में चित्र शैली है। अब यह निश्चित हो गया है कि अकबर से पहले मुगलों की सभा में जो चित्र शैली थी, वह ईरानी थी, आगे भारतीयता के प्रेमी, उदारचित्त एवं कल्पनाशील व्यक्ति की आवश्यकता थी। अकबर के ये सभी गुण अकबरी चित्रों में प्रतिफलित मिलते हैं। अकबरी चित्रों में से अधिकांश चित्र भारतीय एवं प्राचीन बाह्यण धर्म से संबंधित है। वास्तव में अकबर के काल में चित्रकला में विदेशी तत्वों का प्रायः लोप हो गया था और भारतीय तत्व स्पष्ट झलकने लगे थे। उसकी सद्भावना पूर्ण नीति से हिंदू और मुसलमान दोनों वर्गों के चित्रकारों को प्रोत्साहन मिला तथा दोनों वर्गों ने एक-दूसरे से बहुत कुछ सीखा।

इस युग की चित्रकला का विषय मुख्यतया दरबारी जीवन था। इसमें बादशाहों की शान शौकत तथा रहन-सहन का चित्रण बड़े आकर्षक ढंग से किया जाता था। कभी-कभी दरबारी रत्नों के चित्र भी बनाए जाते थे। प्रत्येक चित्र को कलापूर्ण बनाने के लिए उसे सुनहरे रंगों से सजाया जाता था। यह कार्य सुलेखकारों की सहायता से प्रमुख रूप से होता था। छाया और प्रकाश के संतुलन का ध्यान विशेष रूप से किया जाता था। चित्रों की रेखाओं में गोलाई प्रदर्शित की गई है तथा धरातल बड़े मनोहर ढंग से दिखाए गए हैं। प्राकृतिक चित्रों में दूरी का भी ध्यान रखा गया है। अकबर के युग के अंतिम चरण में चित्रों में सजावट का काम कम हो गया था और उनकी सजीवता की ओर विशेष रूप से ध्यान रखा जाने लगा था। अबुलफजल के अनुसार इस काल में चित्रकला अपनी पूर्णता पर पहुँच गई। यहाँ तक कि निर्जीव पदार्थ भी चित्र में सजीव सदृश्य लगते थे। बादशाही दरबार तथा दरबारी जीवन का चित्रण करने के साथ-साथ

शाही हरम के दृश्य मुख्यतया शृंगार करती स्त्रियों का चित्रण विशेष रूप से किया जाता था। मदिरापान करती या मदिरा डालती स्त्रियों का चित्रण चित्रकला का प्रमुख विषय था। आखेट करने के दृश्यों का चित्रण भी बड़े सजीव ढंग से किया जाता था।

पुस्तकों की विचित्रण करने की परंपरा का पर्याप्त विकास हो गया था। अनुवाद तथा मूल पुस्तकों को प्रायः चित्रित किया जाता था। बाबर की आत्मकथा अकबर कालीन कलाकारों द्वारा बड़े छंग से चित्रित की गई। 'महाभारत' के फारसी अनुवाद को युद्धों तथा घटनाओं के आधार पर चित्रित किया गया था। इसी प्रकार 'हमजा-नामा' 'बाबर-नामा' और तैमूर नामा' नामक ग्रंथों को भी विभिन्न चित्रों द्वारा सजाया गया। दरबारी चित्रकारों ने संस्कृत ग्रंथों के फारसी अनुवादों की भी साज-सज्जा का कार्य चित्रों के माध्यम से किया।

मुगल काल में चित्रकारों द्वारा जिन रंगों का प्रयोग किया गया है वे प्राकृतिक तथा बनावटी दोनों प्रकार के होते थे। नीला, गहरा, समुद्री और सुनहरा रंग विशेष रूप से प्रयोग में लाए जाते थे। ये इतनी सावधानी तथा वैज्ञानिक ढंग से तैयार किए जाते थे कि तीन शताब्दियों के बीत जाने के पश्चात् भी फीके नहीं पड़े हैं। चमकीले रंगों का प्रयोग संभवत: फारसी प्रभाव का द्योतक है। प्रारंभ में मुगलकालीन चित्रकार रंगों को परस्पर मिलाना नहीं जानते थे परंतु जहाँगीर तथा शाहजहाँ के शासन काल में रंगों को मिलाने की कला का पर्याप्त विकास हो गया था।

सुलेखन (Calligraphy) को चित्रकला का एक शाखा के रूप में लिया जाता था तथा इसका उपयोग संपूर्ण मुगल काल में होता रहा। समय-समय पर सुलेख प्रतियोगिताएँ होती थी तथा कलापूर्ण लेखों को पुरस्कृत करने के साथ-साथ संग्रहीत भी किया जाता था। द्वारों पर सुंदर अक्षरों को खुदाई करवाने का शौक मुगल शासकों को विशेष रूप से था।

3.3.12. जहाँगीर कालीन चित्रकला

मुगल शासकों में जहाँगीर को सबसे अधिक चित्रकला का अनुराग था। जहाँगीर 'तुजके-जहाँगीरी' में अपने चित्रकला के ज्ञान के विषय में लिखता है, ''अपने विषय में कह सकता हूँ कि चित्रकला में मेरी आशक्ति और विवेचना इस सीमा तक पहुँच गई है कि कोई चित्र मेरे समक्ष प्रस्तुत किया जाता है- चाहे मृत चित्रकला का हो, चाहे जीवित का मैं देखकर बता सकता हूँ कि उसके निर्माता कौन हैं और यदि एक चित्र पर अनेक व्यक्तियों की छवियाँ हैं जो विभिन्न चित्रकारों द्वारा अंकित की गई है तो मैं यह बता सकता हूँ कि अमुक मुख अमुक चितेरे ने बनाया है। यदि एक मुख के नेत्र और भूकुटियाँ किसी अन्य ने रंगी हैं तो मैं यह बता सकता हूँ कि मुख नेत्र और भूकुटियों का निर्माता कौन है।" अकबर के काल में चित्रकला की जिस शैली का विकास हुआ, वह जहाँगीर के संरक्षण में अबाध गति से फलती-फूलती रही। जहाँगीर कालीन कला पर प्रकाश डालते हुए वाचस्पति गैरोला लिखते हैं, ''अकबर के बाद जहाँगीर ने मुगल कला के स्वर्णिम युग को बड़ी योग्यता और निष्ठा से आगे बढ़ाया। उसके समय में शैली और शिल्प की दृष्टि से मुगल चित्र भारतीयता के अधिक निकट थे। अकबर द्वारा समारम्मशैली में उच्च कलात्मक ध्येयों और नए विकास तत्वों का समावेश हुआ। मानवीय अभीप्साओं आकांक्षाओं और भावनाओं के अनुरूप चित्र जहाँगीर के ही समय में बने, जहाँगीर के ही समय कलाकारों द्वारा तैयार किए जाते थे। रंगों और उनके दर्शाने का ढंग अपूर्व था। रंगों के अतिरिक्त रेखाओं के अंकन की दिशा में भी जहाँगीर कालीन चित्रकारों ने अपनी विशेषता का परिचय दिया। उस समय के चित्रकारों की यथार्थ दृष्टि उल्लेखनीय है। जहाँगीर के युग में चित्रों में नफासत और बरीकी की मात्रा अधिक बढ़ गई थी। उसे प्रकृति

से विशेष प्रेम था। अतः उसके काल में फूलों और पशु-पिक्षयों के श्रेष्ठ चित्र बने। इस चित्र में प्रकृति निरीक्षण का चित्रण उत्तम कोटि का किया गया है। अकबर के युग में चित्र प्रायः पुस्तकों में ही चित्रित किए जाते थे परंतु जहाँगीर के समय में स्फूर्ति चित्रों का अंकन अधिक होने लगा। जहाँगीर कालीन चित्रकला के विषय में ईश्वरीप्रसाद लिखते हैं, ''पशुओं-पिक्षयों और फूल-पौधों के चित्रण में मुगल चित्रकारों ने कला कौशल का प्रदर्शन किया है। पशुओं में हाथियों, घोड़ों के चित्र बहुतायात में मिलेगें, पिक्षयों में मोर तथा बाज के चित्र बनाए जाते हैं। चित्रकार मंसूर पिक्षयों तथा फूल-पित्तयों के चित्रण में विशेष योग्यता रखता था। मुगल चित्रकारों द्वारा बनाए गए चित्रों में दरबार और शिकार विषयक दृश्य अधिक चित्रित हैं। व्यक्तियों में समूह चित्रण और स्त्री संबंधी चित्रों का सर्वथा अभाव नहीं है। मुगल चित्रकारों द्वारा बनाए गए धार्मिक चित्र असंख्य हैं। उच्च कोटि के चित्रकारों ने साधु तथा फकीरों के शांत स्थानों की छिव का प्रदर्शन अपने चित्रों में किया है।परंतु इस काल की चित्रकला का मुख्य विषय प्राकृतिक सौंदर्थ था। जहाँगीर के समय में चित्रकला अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी।

जहाँगीर के दरबार में अनेक महान चित्रकार थे। हिरात के आगारजा, अब्दुलहसन, समरकन्द के मुहम्मद नादिर, मुहम्मद मुराद तथा उस्ताद मंसूर विशेष उल्लेखनीय थे। उस्ताद मंसूर जहाँगीर के युग में महान चित्रकारों में माने जाते थे, उन्होंने मूक पशुओं के जीवित चित्र बड़ी कुशलता से चित्रित किए थे। हिंदू चित्रकारों में विशनदास, मनोहर, माधव, तुलसी और गोवर्धन के नाम प्रमुख थे। जहाँगीर को चित्रकला से इतना प्रेम था कि उसने अपने एक उद्यान में आर्ट-गैलरी की स्थापना की। इसमें उसकी पसंद के चित्र सजे रहते थे। उसके महलों में भी इस प्रकार की गैलरी अवश्य रही होगी। वास्तव में जहाँगीर के आश्रय में चित्रकला फली-फूली और विकसित हुई और उसकी मृत्यु के साथ-साथ उसका पतन का भी प्रारंभ हुआ। पर्सी ब्राउन के शब्दों में, ''इसकी मृत्यु के साथ-साथ मुगल चित्रकला की आत्मा भी निकल गई। यद्यपि सुनहरे और बहुमूल्य सजावट के रूप में इसका कंकाल थोड़े दिन अन्य मुगल सम्राटों के समय तक बना रहा किंतु इसकी वास्ताविक आत्मा जहाँगीर के साथ मर गई। जहाँगीर कालीन चित्रकला ने एक नया मोड़ लिया।

3.3.13. शाहजहाँ कालीन चित्रकला

जहाँगीर की तरह ही शाहजँहा भी चित्रकला का प्रेमी तथा स्थापत्य-कला का अनुरागी था। उसने चित्रकला को आश्रय तो दिया परंतु जहाँगीर के समान उसके प्रति विशेष उत्साह नहीं दिखाया। अतः चित्रकला के विकास की गित में बाधा आई। उसके शासन काल में दरबारी चित्रकारों की संख्या घट गई। शाहजहाँयुगीन चित्रों में राजसभा के आंतरिक जीवन की झाँकी, शाही वैभव, धन संपन्न सामंतों के रहन-सहन का चित्रण ही अधिक मिलता है। चित्रों में सजीवता-सरसता और मौलिकता जो पहले पाई जाती थी, वह अब विलुप्त हो गई। शाहजहाँकालीन चित्रकला पर प्रकाश डालते हुए वाचस्पित गैरोला लिखते हैं, ''जहाँगीर के बाद शाहजहाँ के समय मुगल शैली में पर्याप्त परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन उस उच्चता का परिचायक नहीं, हीनता का परिचायक था। इस समय के बने अधिकतर चित्रों में आंतरिक सौंदर्य के भाव प्रदर्शित न होकर रियाज, बारीकी, रंगों की तड़क-भड़क हस्तमुद्राओं का आकर्षण अंग-प्रत्यंग का अवास्तिवक उभार और हुकूमत का दरबार अधिक दिखायी देता है। स्त्रियों के भावी विकास विस्तार के लिए यह स्थिति कुछ अच्छी साबित नहीं हुई। ऐसा विदित होता है कि अकबर और जहाँगीर के समय मुगल शैली की जो प्रगित रही है, शाहजहाँ उसका निर्वाह करने में असफल रहा। इस विषय में श्री दिनकर

का कथन भी उल्लेखनीय है उनके मतानुसार, ''शाहजहाँ का ध्यान स्थापत्य की ओर अधिक रहा हो, फिर भी उसके चित्रों में हम मुगल चित्रों के गौरव की पराकाष्ठा पाते हैं। फलतः इस काल के चित्र मीने जैसे दिखते हैं। परंतु यह सब शाही शान का अंगमात्र था। स्पष्ट है कि शाहजहाँ के युग में चित्रकला शाही वैभव को प्रकट करने का साधन मात्र बन गई, उसमें सजीवता तथा प्राकृतिकता की उपेक्षा की जाने लगी।

शाहजहाँ के युग में चित्रों में बहुमूल्य रंगों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया जाने लगा था। चित्रों में रंग अत्यधिक सूक्ष्मता से प्रयोग किए जाते थे। कभी-कभी तो रंगों के स्थान पर मणियों का भ्रम हो जाता था, परंतु इस पर भी स्वाभाविकता के स्थान पर तड़क-भड़क का ही अधिक बोलबाला था। शाहजहाँ युगीन चित्रकारी में मीर हासिम, अनूप तथा चित्रमणि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। दाराशिकोह चित्रकला का प्रेमी था। उसने पर्याप्त अंशों में अपने पूर्वजों की परंपरा की रक्षा की तथा यथासंभव उस युग के चित्रकारों को उत्साहित भी किया। उसने स्वयं अनेक कलापूर्ण चित्रों का संग्रह किया था।

शाहजहाँ के पश्चात् चित्रकला का पतन आरंभ हो जाता है। एक कट्टर मुसलमान होने के कारण औरंगजेब को चित्र कला से घृणा थी। कहा जाता है कि उसने अकबर के मकबरे पर बने चित्रों पर सफेदी करा दी थी तथा बीजापुर के आसार महलों में बने चित्रों को विनष्ट करवा दिया था। इस पर भी चित्रकारों की तूलिका चलती रही। अनेक चित्र औरंगजेब के युद्धों तथा दुर्गों के प्राप्त होते हैं परंतु औरंगजेब की कला के प्रति उदासीन नीति ने तत्कालीन चित्रकारों को निराश कर दिया; अतः वे राजधानी छोड़कर देश के विभिन्न भागों में बिखर गए। बिहार, बंगाल, राजपूताना और दक्षिण भारत में जाकर इन चित्रकारों ने शरण ली तथा वे अपनी चित्रकला में स्थानीय विशिष्टताओं को अधिक महत्व देने लगे। फलतः अनेक शैलियों का जन्म हुआ।

3.3.14. मुगल चित्रकला मूल्यांकन

सर्वविदित है कि प्रारंभ में मुगल चित्रकला पर ईरानी प्रभाव अधिक था। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो ईरानी कला में मुख्य रूप से पुस्तकों को सचित्र करने की कला अधिक थी। इसमें चमकदार रंगों का प्रयोग अधिक किया जाता था। इन रंगों में सोने की मिलावट रहती थी। विषय की दृष्टि से भी इरानी कला सीमित थी। युद्ध-दृश्य, मद्यपान, करती-कराती नारियाँ आदि इसके प्रमुख विषय थे। ईरानी कला का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में मुगल-कला पर पड़ा। आनन्दकुमार स्वामी के अनुसार 16वीं शताब्दी तक ईरानी प्रभाव भारतीय चित्रकला पर छाया रहा परंतु 17वीं शताब्दी में यह प्रभाव लुप्त हो गया और भारतीयता स्पष्ट झलकने लगी। मुगल कला का वास्ताविक रूप यही था।

परंतु इस सत्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मुगल-चित्रकला की आत्मा में ईरानी प्रभाव बना रहा। इसके विषय पर्याप्त मात्रा में ईरानी विषय से मेल खाते हैं। मुगल-काल में व्यक्ति की आकृति को प्रधानता दी गई तथा चित्रों में भावों की सूक्ष्मता और गहनता का प्रदर्शन करने की ओर मुगल चित्रकारों का ध्यान तिनक नहीं गया। आत्मा के गुणों की अभिव्यंजना करना मुगल चित्रकार जानते ही नहीं थे।

इस प्रकार चित्रण-विद्या की दृष्टि से यदि हम मुगल शैली का सर्वेक्षण करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि निरंतर दो सौ वर्षों के लंबे समय तक उसमें नित्य नवीनीकरण होता रहा किंतु आदि से अंत तक उसमें जो एक ही बात देखने को मिलती है वह है उसकी सूक्ष्मता तथा सौम्यता। मुगल-शैली के सभी चित्रकारों ने परंपरा से प्रवर्तित इन विशेषताओं को अपनी कृतियों में एक जैसे रूप में उतारा। व्यक्ति चित्र लघु चित्र और प्रकृति चित्र सभी में परंपरा की मान्यताओं का पालन किया गया। उसकी लोकप्रियता और महत्व का कारण यही है। वे आगे लिखते हैं कि ''मुगल-शैली की इस वैभवास्था को देखकर तत्कालीन भारत की सुख-समृद्धि और जीवनस्थापत्य का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। जिस युग में कला को इतनी अभिरुचि से अपनाया गया, उस युग की सांस्कृतिक उन्नति का अंदाजा आज भी लगाया जा सकता है।''

3.3.15. सारांश

- (1) विद्वान् फर्ग्यूसन के मत में- "मुगल स्थापत्य कला पर विदेशी प्रभाव अत्यधिक है परंतु हैबेल का मत इसके विरुद्ध है। उनके अनुसार मुगल स्थापत्य पूर्णतया भारतीय है।" हैबेल के मत में- "भारत में मुगल शिल्पकार नहीं के बराबर थे। मुगल शासकों को पूर्णतया भारतीय शिल्पकारी पर ही निर्भर रहना पडता था।"
- (2) सर जॉन मार्शल के मतानुसार- ''मुगल शैली के विषय में यह निश्चित करना कठिन है कि इस पर किन तत्वों का अधिक प्रभाव है। भारत में अनेक विभिन्नताओं के कारण शैलियों में भी विभिन्नता रही है अतः मुगल शैली के आधार पर ठीक-ठीक पता लगाना भी कठिन है।'' परंतु यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि मुगल स्थापत्य पर विदेशी प्रभाव किसी-न-किसी सीमा तक है।
- (3) डॉ. ईश्वरीलाल के शब्दों में- 'मुगलकालीन कारीगरों ने विदेशी कला के सिद्धांतों को इस प्रकार परिवर्तित और संशोधित रूप में अपनाया कि भारतीय कला के साथ मिलकर वे देशी प्रतीत होने लगे। विदेशी कला जिसका अकबर के पूर्व मुगल स्थापत्य कला पर विशेष प्रभाव पड़ा, फारसी, अरबी और मध्य एशियाई शैलियों का सिम्मिश्रण है।'' वे आगे और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि ''इस कला पर फारसी और हिंदू बौद्धिक शैलियों का विशेष प्रभाव है। फारसीशैली का प्रभाव मुगल इमारतों की सजावट, उच्चकोटि की नक्काशी और सुंदर बेल-बूदों के काम से स्पष्ट झलकता है। मुगल इमारतों के पास बगीचों की स्थापना का दृश्य और सुंदरतम बनाने की चेष्टा करना ही फारसी शैली से ली गई एक अनुपम निधि है। हिंदू बौद्धिक शैली का प्रभाव मुगल इमारतों की दृढ़ता और भव्यता में स्पष्ट है।''
- (4) श्री दिनकर भी उपरोक्त मत के समर्थक हैं। उसके अनुसार, भारतीय वास्तु में प्राणवत्ता, पौरुष और बेराट्य था। ईरानी कला के लालित्य, नारीत्व और सूक्ष्मता का जब उसके साथ मिश्रण हुआ, एक नई कला का जन्म हो गया जो अत्यंत मनोहर और अपूर्व थी... मथुरा, तं जौर, भुवनेश्वर और बोधगया में हिंदू वास्तु का जो पौरुष, प्राणवत्ता और वेराट्स साकार है, फतेहपुरसीकरी, दिल्ली और आगरे में वहीं ईरानी लालित्य और प्रगतिमयता को अपनी गोद में उठाए हुए है। कहते हैं कि मुगल निर्माता निर्माण तो विश्वकर्मा की तरह करते थे किंतु समाप्ति उनकी जौहरियों की तरह होती थी। लेकिन यह विश्वकर्मा भारत का ही था केवल जौहरी को ही हम ईरानी कह सकते हैं। अतएव इस कहावत को बदलकर ऐसे रखना चाहिए कि विश्वकर्मा के समान विराट निर्माण करने की क्षमता हिंदुओं में थी और जौहरियों की तरह समाप्त करने में मुसलमान प्रवीण थे। मुगल स्थापत्य में हम जो चमत्कार देखते हैं, वे इसी विश्वकर्मा और जौहरी के मिलन का चमत्कार है।"

(5) मुगल शैली की प्रमुख विशेषता ''विशाल गुंबद' को प्रधानता देना है। मुगलों से पूर्व भी गुंबदों का प्रचार था परंतु वे न तो सुंदर थे और न आकार में ही बड़े। इस युग के गुंबद बड़े कलापूर्ण ढंग से बाहर की ओर उभारे गए हैं। नुकीली महरावें भी अनेक ढंग से सजाई जाती थीं। सल्तनतकालीन भवनों का निर्माण प्रायः भूरे पत्थरों से होता था परंतु मुगल काल में लाल पत्थर प्रयोग में लाया जाने लगा। आगे चलकर लाल पत्थर के साथ-साथ मनोहरता लाने के लिए श्वेत संगमरमर का भी प्रयोग हुआ। श्वेत संगमरमर का प्रयोग लाल पत्थर की गंभीरता को दूर करने के लिए किया जाता था। रंगों का प्रयोग विश्लेषण से किया जाने लगा। मीनारों के साथ-साथ छोटी-छोटी बुर्जियों का चलन भी मुगल काल में प्रारंभ हुआ। भवन के दरवाजों पर आकर्षक खुदाई तथा पच्चीकारी कराने का शौक मुगलों को विशेष रूप से था।

मुगलकालीन चित्रकला की विशेषताएँ

मुगलकालीन चित्रकला से विषयों को निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं-

(क) धार्मिक ग्रंथों के चित्र।

(ख) इतिहास संबंधी चित्र।

(ग) दरबारी तथा सामंती जीवन से संबंधित चित्र।

(घ) आखेट-चित्र

(इ) प्राकृतिक पशु-पक्षियों, फल-फूलों से चित्र।

(च) मानवीय चित्र।

- (1) (1) अकबर ने धार्मिक सिहष्णुता तथा हिंदू रानियों के प्रभाव के कारण इस युग में रामायण, महाभारत और अन्य धार्मिक कथाओं के चित्र बनवाए। इस कार्य के लिए प्रमुख रूप से हिंदू चित्रकार लगाए जाते थे। इस प्रकार के चित्रों की शैली अन्य चित्रों की शैली से भिन्न होती हैं।
- (2) इस युग में ऐतिहासिक चित्र भी बने जिनमें प्रमुख रूप से युद्ध संबंधी थे। इन चित्रों की प्रमुख विशेषता है इनकी सजीवता।
- (3) कुछ पशु-युद्धों के चित्र भी बनाए गए, जिनमें बटेर, बैल, तीतर तथा मुर्गों को लड़ते दिखाया गया।
- (4) दरबारी जीवन का चित्रण करना मुगल शैली का प्रमुख विषय रहा है। शाही ठाठ-बाट की तुलिका द्वारा रंगना मुगलकालीन चित्रकार अपना परम कर्तव्य समझते थे। इस प्रकार चित्रण का उद्देश्य पुरस्कार प्राप्त करना भी था। शाहजहाँ के काल में यह शैली पूर्णरूप से विकसित हो चुकी थी।
- (5) प्रकृति का चित्रण मुगल कलाकारों ने बड़ी कुशलता के साथ किया। पिक्षयों का चित्रण इस युग के चित्रकारों ने किया। पिक्षयों के चित्रण में मोर को सबसे अधिक प्रधानता दी गई। मोर के अनेक चित्र उपलब्ध होते हैं। चिड़ियों की चोंच और पंजों को बड़े आकर्षक ढंग से बनाया गया है। पशुओं में हाथी, ऊँट, बैल, बकरी, शेर तथा हिरण प्रमुख हैं पहाड़ी दृश्यों का अंकन भी किया जाता था। परंतु इनकी संख्या बहुत कम है। पहाड़ी चित्र जहाँगीर के काल में अधिक बने। वृक्षों के चित्रण में विशेष सावधानी रखी जाती थी। पित्तयों और तनों आदि को बड़े कलापूर्ण ढंग से बनाया जाता था। कहीं-कहीं तो पित्तयों की नलों तक का उभार स्पष्ट झलकता था। जहाँगीर को फूलों से विशेष प्यार था। जहाँगीर और नूरजहाँ दोनों के उपलब्ध चित्रों में उन्हें गुलाब के फूल सूँघते दिखाया गया है। मुगल चित्रकला में गुलाब का फूल विशेष रूप से दिखाया गया है।
- (6) प्राकृतिक चित्रों के समान मानवीय चित्रों का निर्माण पर्याप्त मात्रा में हुआ। मानवीय चित्र ईरानी और भारतीय दोनों प्रकार की शैलियों के थे। ईरानी चित्रों में छाया और प्रकाश (Light and Shade) के नियमों का विशेष रूप से पालन नहीं होता था। भारतीय शैली के मानव-चित्र, हिंदू

- और मुसलमान दोनों कलाकारों के प्रयास का प्रतिफल थे। इनमें भारतीयता की छाप अधिक थी। राजा-महाराजा, सामंतों तथा शाही परिवार के सदस्यों का चित्रण इनमें प्रमुखता से किया जाता था। कभी-कभी चमकीले रंग प्रयोग में लाए जाते थे।
- (7) मुगलकालीन चित्रकला में अनेक नवीन प्रणालियों का प्रयोग हुआ तथा चमक-धमक को विशेष महत्व दिया गया। इस विषय में भी विद्यार्थी लिखते हैं ''अजंता की चिकनाहट पर समरकंद और हेरात की सुडौलता, अनुपात तथा फैलाव को नवीन प्रणालियाँ लागू कर दी गई।''
- (8) चित्रों में अनेक प्रकार के चमकीले रंग प्रयोग में लाए जाते थे। रंगों का प्रयोग ऐसे कलापूर्ण ढंग से किया जाता था कि रंगों के स्थान पर प्राणियों का भ्रम हो जाता था।
- (9) इस युग के कलाकार जन साधारण के जीवन से संबंधित चित्र नहीं बनाते थे। ग्रामीण जीवन के दृश्यों का अंकन प्रायः मिलता ही नहीं।
- (10) मुगलकालीन चित्रकला में कृत्रिमता अधिक थी तथा सजीवता का उनमें पूर्णतया अभाव था। मानवीय चित्रों में मानवताओं का प्रायः अभाव-सा रहता था। केवल बाह्य सजावट पर ध्यान दिया जाता था लेकिन मुख, मस्तक, नाक आदि को बड़े कलात्मक ढंग से चित्रित किया जाता था। रेखाओं की गोलाई का अंकन बहुत ही कलापूर्ण ढंग से किया जाता था।

3.3.16. बोध प्रश्न

3.3.16.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

- 1. मुगलकालीन स्थापत्य कला की दो विशेषताएँ लिखिए।
- 2. बाबर कालीन स्थापत्य कला के विषय में आप क्या जानते हैं?
- 3. हुमायूँ कालीन स्थापत्य कला के विषय में आप क्या जानते हैं?
- 4. अकबर द्वारा निर्मित कोई पाँच इमारतों के नाम लिखिए।
- 5. फतेहपुर सीकरी की पाँच इमारतों के नाम लिखिए।
- 6. बुलंद दरवाजा पर टिप्पणी लिखिए।
- 7. शेख सलीम चिश्ती का मकबरा पर टिप्पणी लिखिए।
- 8. मरियम की समाधि के विषय में आप क्या जानते हैं?
- 9. आगरा के किले में निर्मित इमारतों के नाम लिखिए।
- 10. दिल्ली के किले में निर्मित इमारतों के नाम लिखिए।
- 11. दिल्ली की जामा मस्जिद पर टिप्पणी लिखिए।
- 12. ताजमहल की पाँच विशेषताएँ लिखिए।
- 13. औरंगजेब कालीन स्थापत्य कला पर प्रकाश डालिए।
- 14. मुगलकालीन चित्र कला की दो विशेषताएँ लिखिए।
- 15. मुगलकालीन चित्र कला के प्रमुख विषय कौन-से हैं?

3.3.16.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- 1. मुगलकालीन स्थापत्य कला की विशेषताएँ लिखिए।
- 2. अकबर कालीन स्थापत्य कला का वर्णन कीजिए।
- 3. जहाँगीर कालीन स्थापत्य कला का वर्णन कीजिए।

- 4. शाहजहाँ कालीन स्थापत्य कला का वर्णन कीजिए।
- 5. मुगलकालीन चित्र कला की विशेषताएँ लिखिए।
- 6. अकबर कालीन चित्र कला का वर्णन कीजिए।
- 7. जहाँगीर कालीन चित्र कला का वर्णन कीजिए।
- 8. शाहजहाँ कालीन चित्र कला का वर्णन कीजिए।
- 9. फतेहपुर सीकरी में निर्मित इमारतों का वर्णन कीजिए।
- 10. ताज महल की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
- 11. मुगलकाल में आगरा में निर्मित इमारतों का वर्णन कीजिए।
- 12. मुगलकाल में दिल्ली में निर्मित इमारतों का वर्णन कीजिए।
- 13. आगरा के किले में निर्मित इमारतों की विवेचना कीजिए।
- 14. दिल्ली के किले में निर्मित इमारतों की विवेचना कीजिए।
- 15. मुगल कालीन स्थापत्य एवं कला पर एक निबंध लिखिए।

3.3.17. संदर्भ ग्रंथ

- 1. ए.एल. वाशम : अद्भुत भारत : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, आगरा, 1967।
- 2. रैप्सन, ई.जे. : कैम्ब्रिज हिस्टरी ऑफ इंडिया, खंड-2।
- 3. मजूमदार तथा पुसलकर: दी मुगल एम्पायर, भारतीय विद्या भवन, बम्बई।
- 4. नीलकंठ शास्त्री : ए कम्प्रिहैन्सिव हिस्टरी ऑफ इंडिया, खंड-2, ओरियन्ट लांगमैन्स, 1957।
- 5. एलन, हेग, डाडवेल : दी कैम्ब्रिज शार्टर हिस्टरी ऑफ इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1934।
- 6. मजूमदार तथा पुसलकर : दि डेल्ही सल्तनत, भारतीय विद्या भवन, बंबई, 1953।
- 7. भारद्वाज, दिनेश : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, 1982
- 8. मेहरा, उमाशंकर: मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, आगरा, 1982
- 9. लूनिया, बी.एन. : मुगल साम्राज्य का उत्कर्ष, कमल प्रकाशन, इन्दौर, 1980
- 10. श्रीवास्तव, ए. एल : मुगलकालीन भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1980
- 11. श्रीवास्तव, ए. एल : मध्यकालीन संस्कृति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1980
- 12. सिन्हा, बी. बी : मध्यकालीन भारत, ज्ञानदा प्रकाशन, पटना, 1981
- 13. वेल्च, स्टुअर्ट सी. : द आर्ट ऑफ मुगल इंडिया, न्यूयॉर्क, 1963
- 14. नाथ, आर. : हिस्ट्री ऑफ मुगल आर्कीटेक्चर, नई दिल्ली, 1994
- 15. ब्राउन, पर्सी : इंडियन आर्कीटेक्चर (इस्लामिक पीरियड), यू.के., 1942

खंड-3: मुगलों की प्रशासनिक, आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक नीतियाँ इकाई - 4: साहित्य व सांस्कृतिक विकास

इकाई की रूपरेखा

- 3.4.1. उद्देश्य
- 3.4.2. प्रस्तावना
- 3.4.3. मुगल कालीन साहित्य
 - 3.4.3.1. बाबरनामा
 - 3.4.3.2. हुमायूँनामा
 - 3.4.3.3. तबकाते बाबरी
 - 3.4.3.4. अकबरनामा
 - 3.4.3.5. तुजुके जहाँगीरी
 - 3.4.3.6. बादशाहनामें
 - 3.4.3.7. आलमगीरनामा
- 3.4.4. मुगलकाल में साहित्य का विकास
 - 3.4.4.1. फारसी साहित्य
 - 3.4.4.2. अकबर का काल
 - 3.4.4.3. अनुवाद विभाग
 - 3.4.4.4. जहाँगीर का काल
 - 3.4.4.5. शाहजहाँ का काल
 - 3.4.4.6. औरंगजेब का काल
 - 3.4.4.7. संस्कृत साहित्य
 - 3.4.4.8. हिंदी साहित्य
 - 3.4.4.9. बांग्ला तथा मराठी साहित्य
 - 3.4.4.10. गुजराती साहित्य
 - 3.4.4.11. उर्दू साहित्य
- 3.4.5. मुगलकाल में सांस्कृतिक विकास
 - 3.4.5.1. संगीत
 - 3.4.5.2. मुगलयुगीन संगीत
 - 3.4.5.3. बागवानी
 - 3.4.5.4. मूर्तिकला
 - 3.4.5.5. हाथी दाँत का प्रयोग
- 3.4.6. सारांश
- 3.4.7. बोध प्रश्न
 - 3.4.7.1. लघु उत्तरीय प्रश्न
 - 3.4.7.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
- 3.4.8. संदर्भ ग्रंथसूची

3.4.1 उद्देश्य

तुर्क तथा मंगोल जातियों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप मुगल जाति का उदय हुआ। बाबर से लेकर बहादुरशाह जफर तक मुगलों ने भारत पर 1526 ई. से 1857 ई. तक शासन किया। लगभग संपूर्ण भारत पर आधिपत्य स्थापित करने के पश्चात् मुगलों ने सांस्कृतिक विकास कीओर ध्यान केंद्रित किया। मुगलकाल में वृहद साहित्य की रचना हुई एवं विभिन्न कलाओं की उन्नित हुई। इस इकाई का उद्देश्य मुगलकाल में हुई सांस्कृतिक स्थिति एवं साहित्य पर प्रकाश डालना है।

3.4.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में मुगलकाल की सांस्कृतिक विशेषताओं एवं मुगलकालीन साहित्य की विस्तृत विवेचना है। इकाई के अंत में पाठ का सारांश, लघु उत्तरीय प्रश्न, दीर्घ उत्तरीय प्रश्न एवं संदर्भ ग्रंथों की सूची का उल्लेख भी प्रस्तावित है।

3.4.3 मुगल कालीन साहित्य

3.4.3.1 बाबरनामा

मुगल काल में भी अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की गई हैं। इन ग्रंथों में बाबर द्वारा रचित तुजुक-ए-बाबरी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस ग्रंथ में बाबर ने भारतवर्ष की राजनीतिक अवस्था का अत्यंत संक्षिप्त और सजीव चित्रण किया है। प्रकृतिप्रेमी होने के कारण इस देश की वनस्पित तथा पशु-पक्षी भी वर्णित किए गए हैं। यहाँ के निवासियों के स्वभाव आदि के वर्णन में उसने कुछ अतिशयोक्ति से काम लिया है। वर्ण-व्यवस्था, श्रम-विभाग तथा व्यवसायों आदि का उल्लेख यथास्थान किया गया है। तुजुक-ए-बाबरी के विषय में लेनपूल लिखते हैं ''उसकी आत्मकथा उन बहुमूल्य लेखों में से एक है जो समस्त युगों में बहुमूल्य रहे हैं। यह गिबन एवं न्यूटन की स्मृतियों तथा आगस्टाइन एवं रूसों की श्रेणियों में रखने योग्य है।

1589-90 में बैराम खाँ के पुत्र अब्दुल रहमान खानखाना ने इसका फारसी में अनुवाद किया। शेख जईन ने इसका दूसरा अनुवाद तैयार किया। 1924 में मिर्जा नसीरुद्दीन हैदर ने संस्मरणों का एक उर्दू अनुवाद किया जो दिल्ली में प्रकाशित हुआ। परंतु इन संस्मरणों में बाबर के जीवन का पूरा अभिलेख नहीं है। इनमें पर्याप्त किमयाँ हैं। बाबर के 18 वर्षों के जीवन का ही वर्णन किया गया है। शेष को छोड़ दिया गया है।

3.4.3.2 हुमायूँनामा

इस ग्रंथ की रचनाकार बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम थी। 1523 के लगभग उसका जन्म हुआ था और 1603 में वह मर गई थी। अपने जीवनकाल में और मृत्यु के पश्चात् भी उसे पर्याप्त सम्मान मिला। गुलबदन का कहना था कि उसे यह आदेश मिला था कि जो कुछ बाबर तथा हुमायूँ के बारे में जानती है उसे स्वयं लिखें। उसने आज्ञा का पालन कर इस ग्रंथ की रचना की। जिस समय बाबर की मृत्यु हुई उस समय गुलबदन बहुत छोटी थी अतः उसने बाबर के विषय में जो विवरण लिखा वह अत्यंत संक्षिप्त है। उसने विस्तार से हुमायूँ के संबंध में ही लिखा है।

गुलबदन हुमायूँ की विजयों का उल्लेख करती है। उसकी कठिनाइयाँ व पराजयें भी वर्णित करती है। इस पर भी महत्वपूर्ण घटनाओं को उसने छोड़ दिया है। परंतु इस ग्रंथ से हमें उस समय के रीति-रिवाजों का पर्याप्त ज्ञान हो जाता है तथा उस काल के लोगों के जीवन के विषय में पर्याप्त रोचक विवरण प्राप्त होता है।

खादमीर ने भी हुमायूँ-नामा की रचना की। इस ग्रंथ की रचना हुमायूँ के आग्रह करने पर सन् 1534 में की गई थी। इसमें अनेक तत्कालीन प्रचलित नमूनों तथा काम में आने वाली मशीनों का उल्लेख किया गया है। अफगान और सूर शासकों का ज्ञान हमें 'तारीखे-शेरशाही' तथा तारीखे-दौदी से मिलता है। 'तारीखे -शेरशाही' में सामाजिक व आर्थिक दशा का पर्याप्त चित्रण है परंतु तत्कालीन न होने के कारण इसमें कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं।

3.4.3.3 तबकाते-बाबरी

इस ग्रंथ की रचना शेख जैनुद्दीन ने की थी। इस ग्रंथ में तत्कालीन राजनैतिकघटनाओं का उल्लेख है। तारीखे-रशीदी की रचना मिर्जा हैदर दुधलर ने की थी। इस ग्रंथ में बाबर के अंतिम दिनों व हुमायूँ तथा शेरशाह के शासन की विभिन्न घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है। मोहम्मद कासिम फिरशता द्वारा लिखित 'तारीख-ए-फिरशता' भी एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ में बाबर की आत्मकथा की किमयों को पूरा किया गया है। रशबुर्क के अनुसार इसका वर्णन सही और संतुलित है। हुमायूँ के निजी सेवक जौहर ने 'तजिकरात-उल-वािकयात' की रचना अकबर के शासन-काल में तीस वर्ष पश्चात् की थी। प्रो0 कानूनगों इसे एक प्रमाणित ग्रंथ मानते हैं। निजामुद्दीन अहमद कृत 'तबकात-ए-अकबरी भी एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें हुमायूँ से संबंधित प्रकरणों का उल्लेख किया गया है। ग्रंथ की शैली सरल व रोचक है। फिरशता इस ग्रंथ के विषय में लिखता है 'मैंने बहुत इतिहास-ग्रंथ पढ़े हैं, परंतु मैं इसी ग्रंथ को पूर्ण मानता हूँ। अकबर नाम तथा आईने अकबरी अबुलफजल कृत 'अकबरनामा' तीन जिल्दों में है। इसका अंग्रेजी अनुवाद एच. बैबरिज ने किया था। इसमें लेखक ने अकबर की प्रशंसा में कहीं-कहीं अतिशयोक्ति की है और सत्य को छिपाया है। इस पर भी यह तत्कालीन घटनाओं पर प्रकाश डालता है।

3.4.3.4 अकबरनामा

अबुलफजल ने अकबरनामा को तैयार करने में अत्याधिक श्रम किया। वह लिखता है कि ''विश्वास मानिए कि मैंने सम्राट के विवरणों तथा संस्मरणों को जमा करने में महान परिश्रम तथा शोध किया और पर्याप्त समय तक मैंने राज्य सेवकों तथा उसके परिवार के बुद्ध लोगों से पूछताछ की। मैंने दोनों प्रकार के लोगों, बुद्धिमान तथा सच बोलने वाले वृद्धों तथा चुस्त, सही काम करने वाले और समझदार युवकों का परीक्षण किया। उनके विवरणों को लेखनीबद्ध किया। देवी युग के सम्राट की उच्च कोटि की वृद्धि के कारण अभिलेख कार्यालय की स्थापना हुई, और उसके सुंदर पृष्ठों में से मैंने अनेक घटनाओं की सामग्री एकत्रित की। मैंने स्वयं अपनी शक्ति के साथ बुद्धिमान व्यक्तियों की सेवाओं तथा स्मृतियों को एकत्रित किया। इन साधनों से मैंने अपने भाग्य की वाटिका को समृद्ध कर उसका एक बड़ा कोश तैयार किया।''

प्रारंभ में अबुलफजल शासनकाल को चार अंकों में प्रस्तुत करने का विचार रखता था। मूलग्रंथ 1596 ई. में अकबर के सम्मुख प्रस्तुत करने से पूर्व पाँच बार दुहराया गया।

मुगल-काल का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ अबुलफजल कृत ''आइने-अकबरी'' है। ब्लोचमेन तथा जैरटे ने इसका अनुवाद किया था। इस ग्रंथ की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें तत्कालीन परिस्थितियों का पर्याप्त वर्णन किया गया है। मनोरंजन के साधन, रहन-सहन, भोजन तथा खान-पान का उल्लेख इस ग्रंथ में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से आया है। 'आइने-अकबरी के विषय में जदुनाथ सरकार लिखते हैं ''भारत में यह अपनी कोटि का प्रथम ग्रंथ है और इसकी रचना उस समय हुई थी जिस समय नविर्मित मुगल-शासन अर्द्ध-तरलावस्था में था। वे आगे लिखते हैं, ''जो कोई भी अकबर के शासन के विश्वकोषीय ऐतिहासिक ग्रंथ आइने अकबरी को पढ़ता है, उसमें से किसी भी विभागीय स्वरूप के किसी अभाव को समझने में वह असफल नहीं हो सकता है।..... इसमें हमें शिविर एवं राज्य परिवार, अस्तबल तथा बर्दीखानों, शास्त्र और आखेट-विभाग के संगठन का वास्तविक विवरण मिलता है।' इस पर भी अबुल फजल ने यथार्थ चित्रण की अपेक्षा आदर्शवादी दृष्टिकोण अधिक अपनाया है। वास्तव में यह ग्रंथ एक प्रकार से सामाजिक इतिहास है। के. एम. अशरफ के शब्दों में 'आइने-अकबरी सामाजिक इतिहास का प्रतीक है।

3.4.3.5 तुजुके जहाँगीरी

जहाँगीर की आत्मकथा 'तुजुके-जहाँगीरी' भी एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें तत्कालीन सामाजिक अवस्था का चित्रण किया गया है। अनेक उद्धरणों से तत्कालीन हिंदू समाज की दशा का ज्ञान होता है।

इस ग्रंथ के अनेक नाम हैं, जैसे- शाकियान-ए-जहाँगीरी, 'तारीख-ए-सलीमशाही, 'इकबालनामा तथा 'जहाँगीरनामा आदि। इसका अधिकांश भाग स्वतः जहाँगीर द्वारा लिखा गया है। इसमें जहाँगीर के शासन के अठारह वर्षों का ही वृतांत है। संपूर्ण ग्रंथ के अध्ययन से तत्कालीन लिलत कलाओं साहित्य तथा चित्रकला की प्रगति का पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। अनेक वृतांत रोचक तथा आकर्षक हैं। जहाँगीर ने अपनी दुर्बलताओं को भी स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त जहाँगीर के काल में 'इकबालनामा-जहाँगीर- मुदामतखाँ ने तथा मआसीर-ए-जहाँगीर की रचना कामदार खाँ ने की थी। ये दोनों ग्रंथ अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों की पूर्ति करते हैं।

3.4.3.6 बादशाहनामें

शाहजहाँ के काल में अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना हुई। मुख्य रूप से दो 'बादशाहनामें' उल्लेखनीय हैं। प्रथम 'बादशाहनामा' मिर्जा अमीन काजवानी कृत है। शाहजहाँ ने सर्वप्रथम काजवानी को आदेश दे दिया था कि वह राज्य का वृतांत लिखे। इसका अधिकांश वर्णन पक्षपातपूर्ण है। ग्रंथ में 1630 ई0 के दक्षिण में पड़े दुर्भिक्ष का वर्णन भी पक्षपातपूर्ण है। यह ग्रंथ शाहजहाँ कालीन केवल दस वर्षों पर ही प्रकाश डालता है। दूसरा 'बादशाहनामा' अबुल हमीद लाहिरी का है। इस ग्रंथ में शाहजहाँ के राज्य के प्रारंभिक बीस वर्षों का उल्लेख किया गया है। ग्रंथ की शैली अत्यंत कठिन तथा अलंकारिक है। परंतु इसकी सामग्री अत्यंत ठोस है। इनायत खाँ ने 'शाहजहाँनामा' की रचना की थी। यह शाहजहाँ के परम मित्रों में से था तथा शासन के किसी ऊँचे पद पर नियुक्त था। इसके अतिरिक्त भी और अनेक 'शाहजहाँनामे' लिखे गए जिसका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक नहीं है।

3.4.3.7 आलमगीरनामा

औरंगजेब के आदेश पर मिर्जा मोहम्मद कासिम ने 'आलमगीरनामा' नामक ग्रंथ की रचना की। इसका प्रारंभ 1688 ई0 में हुआ। यह ग्रंथ औरंगजेब के शासन के प्रथम दस वर्ष के इतिहास पर प्रकाश डालता है। 'सफरनामा' या 'औरंगजेब' के लेखक आकिल खाँ राजी हैं। इसकी प्रतियाँ रामपुर में सुरक्षित हैं। यह एक संक्षिप्त इतिहास है जो कि बीजापुर के आक्रमण से प्रारंभ होकर मीर जुमला की मृत्यु पर समाप्त हो जाता है।

3.4.4 मुगल-काल में साहित्य का विकास

समस्त मुगल शासक शिक्षा-प्रेमी थे। उनके काल में विभिन्न भाषाओं के साहित्य ने अपूर्व प्रगति की। मुगल शासकों ने साहित्य के विकास में योग देने के साथ-साथ स्वयं भी अनेक आत्मकथाओं की रचनाएँ कीं। इस युग में विद्वानों को राज्य का आश्रय भी पर्याप्त मिला, फलस्वरूप अनेक विद्वतापूर्वक ग्रंथों की रचना की गईं।

3.4.4.1 फारसी साहित्य

बाबर तुर्की तथा फारसी दोनों भाषाओं पर अधिकार रखता था। उसके द्वारा 'तुजके-बाबरी' उसकी विद्वता का प्रमाण है। इस ग्रंथ का फारसी में तीन बार अनुवाद किया गया। यूरोप की विभिन्न भाषाओं में भी इसे अनुवादित किया गया। वास्तव में 'तुजके-बाबरी', बाबर की स्मृतियों का एक दर्पण है। बाबर किव भी था। यह तुर्की और फारसी दोनों में किवता कर लेता था। मिर्जा हैदर के शब्दों में: तुर्की किवता की रचना में वह केवल अमीरशाह से दूसरे नम्बर पर था।'' फारसी में उसने एक नवीन शैली का आविष्कार किया। उसके दरबार की शोभा अनेक विद्वान बढ़ाते थे। बाबर के समान ही उसका पुत्र हुमायूँ भी विद्या और साहित्य में अभिरुचि रखने वाला था। अनेक विद्वान् उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे। ख्वाजामीर, अब्दुललतीफ, शेख हुसैन, जैसे विद्वान् उसके आदर के पात्र थे। तुर्की फारसी में निपुण होने के साथ-साथ वह दर्शन, गणित तथा ज्योतिष में योग्यता रखता था। वायाजिद नामक साहित्यकार भी उसके दरबार की शोभा था।

3.4.4.2 अकबर का काल

शांति और समृद्धि के काल में ही साहित्य का अपूर्व विकास होता है। अकबर के काल में ऐसा ही हुआ। शांति और समृद्धि के कारण अकबर के शासन में कला और साहित्य की आश्चर्यजनक प्रगति हुई। इस विषय में डॉ. आशीर्वादीलाल लिखते हैं: ''अकबर का शासन काल तो पूरे मध्ययुगीन भारतीय इतिहास में सांस्कृतिक पुनरुत्थान का युग ही था। उसकी सहनशीलता और उदारनीति, विद्या प्रेम और सफल शासन के फलस्वरूप आंतरिक शांति एवं समृद्धि ने साहित्य और कला के विकास से अनुकूल स्थिति उत्पन्न कर दी थी इसलिए इसमें तिनक भी आश्चर्य की बात नहीं है कि कई असाधारण प्रतिभाशाली लेखकों ने उसके शासनकाल में बड़ी ही उच्च श्रेणी के साहित्य का सृजन किया।

अकबरकालीन साहित्य दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- (क) विशुद्ध फारसी साहित्य जिसमें ऐतिहासिक ग्रंथ भी आते हैं। (ख) अनुवाद कार्य मुगल काल में कविता के प्रति रुचि शासक तथा प्रजा दोनों की थी। अकबर के संरक्षक में अनेक प्रभावशाली काव्यों की रचना हुई। ''आइन-ए-अकबरी के अनुसार उसके दरबार में 59 किव थे। जिनमें से 15 उच्चतम श्रेणी के थे। इनमें से अधिकांश किवयों ने अपने दीवान पूरे कर लिए थे। अबुल फजल स्वयं फारसी का एक महान किव था। गिजाली, फैजी, मुहम्मद हुसैन तथा सैयद जमालुद्दीनसर्फी उस युग के प्रसिद्ध किवयों में से थे मुहम्मद हुसैन नजीरी गजल लिखने में दक्ष थे तो सैयद जमालुद्दीन कसीदे लिखते थे। मीर-तुल-केनात, नक्शल-ए-बर्दीद और इसरार-ए-मक्तूब नामक ग्रंथों की रचना गिजाली ने की थी। उपर्युक्त समस्त किव अकबर के दरबार में आश्रय पाये हुए थे। फैजी किव होने के अतिरिक्त एक सफल अनुवादक भी था। उसने अनेक हिंदू ग्रंथों का अनुवाद किया था। 'अर्ब्युहीम खान-ए-खाना' भी फारसी में किवता करते थे। कुछ विद्वानों के अनुसार इस युग के

कवियों की कविता विशेष उच्चकोटि की नहीं थी। तत्कालीन कवि विचारों की अपेक्षा भाषा की ओर अधिक ध्यान देते थे। काव्य का विषय प्रमुखतया प्रेम था।

अकबर के समय अनेक ऐतिहासिक ग्रंथ भी लिखे गए। मुल्ला दाउद ने ''तारिखे-ए-अल्फी' की रचना की। अबुलफजल ने ''आइने-ए-अकबरी' और अकबरनामा लिखा। बदाऊँनी द्वारा लिखित 'मुन्तरखब-उत-तवारीख': निजामुद्दीन अहमद द्वारा रचित 'तबकात-ए-अकबरी' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त ऐतिहासिक ग्रंथों के अतिरिक्त फैजी सरहिंदी का ''अकबरनामा' और अब्दुलबाकी का 'मुआसिर-ए-रहीम' भी इस श्रेणी में आते हैं। सम्राट अकबर ने नकीब खाँ, मुल्ला मुहम्मद और जफरबेग को इस्लाम धर्म का 1000 वर्ष का इतिहास लिखने को कहा। अब्बास सरबानी का ''तौफा-ए-अकबरशाही' या ''तारीखे-शेरशाह' के प्रसिद्ध ग्रंथों में से एक है।

3.4.4.3 अनुवाद विभाग

अकबर ने अनुवाद का एक अलग विभाग स्थापित किया जिसकी वह स्वयं देख-रेख करता था। इस विभाग की स्थापना का मूल उद्देश्य भारतीय और विदेशी मुस्लिम-साहित्य के मध्य समन्वय स्थापित करना था। अरबी, तुर्की, यूनानी तथा संस्कृत भाषा के अनेक ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया। खगोल विद्या से संबंधित प्रसिद्ध ग्रंथ 'ताजक' का अनुवाद फारसी में मूकम्मल खाँ ने किया। इसी प्रकार 'तु जुके बाबरी' का अनुवाद भी फारसी में करवाया गया। अमीर फतहउल्लाह शीराजी ने 'जिच-ए-जहीद-मिरजाई' को फारसी में अनुवादित किया। नकीब खाँ मुल्ला अहमद शेरी तथा अब्दुलकादिर बदाऊँनी ने महाभारत के विभिन्न भागों अनुवाद किया जिसका नाम रज्जनामा रखा गया था। महाभारत के समान ही रामायण का भी अनुवाद किया गया। मुल्ला अहमदकासिम वेग और शेख मुहम्मद ने अरबी ग्रंथ 'मजमूल-बुल्दन' का फारसी में अनुवाद किया। प्रसिद्ध ग्रंथ ''लीलावती' का अनुवाद फैजी ने किया। शेख मुहम्मद द्वारा 'राज तरंगिणी, का अनुवाद संपन्न हुआ। हाथी उब्राहील सरहिंदी ने अर्थववेद का अनुवाद किया। इसी प्रकार के महत्वपूर्ण ग्रंथ पंचतंत्र का अनुवाद अबुलफजल ने किया। फैजी ने नल-दमयंती का अनुवाद बड़े प्रभावशाली ढंग से किया। मुहम्मद खाँ ने ज्योतिष के एक गुजराती लेख का फारसी में अनुवाद किया। कुछ यूनानी भाषा के ग्रंथ भी फारसी में अनुवादित हुए।

3.4.4.4 जहाँगीर का काल

अकबर के समान जहाँगीर भी साहित्य और शिक्षा का प्रेमी था। अपने बाबा (बाबर) के समान उसने भी अपनी आत्म-कथा 'तु जुके जहाँगीरी' लिखी। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यधिक महत्व का है। इसमें उसके शासन के 17 वर्षों तक का इतिहास लिखा हुआ है। मुतमिदखाँ ने उसके कार्य को जारी रखा और उसने 19 वर्षों तक के शासनकाल का वर्णन किया। मुतमिदखाँ ने ही 'इकबालनामा-ए-जहाँगीरी' लिखा; जहाँगीर अपने दरबार में विद्वानों को विशेष रूप से आश्रय देता था। गयासबेग, नकीबखाँ, अब्दुलहक तथा नियामतउल्लाह उसके दरबार के प्रसिद्ध विद्वानों में से थे। जहाँगीर के काल में अनुवाद कार्य में शिथिलता आ गई थी।

3.4.4.5 शाहजहाँ का काल

शाहजहाँ ने साहित्य के क्षेत्र में अपने पूर्वर्जों की परंपरा को बनाए रखा। हाजी मुहम्मदजहान, जालिहकलीय, चन्द्रभान, ब्राह्मण उसके दरबार में प्रसिद्ध विद्वान थे। शाहजहाँ के काल में अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की गईं। अब्दुलहमीद लाहौरी ने ''पादशाहनामा' लिखा। दूसरा 'पादशाहनामा' अमीन काजबीनी ने लिखा। इनायतखाँ ने 'शाहजहाँनामा' की रचना की। मुहम्मद सालेह ने 'अमन सालेह' की रचना इस युग में ही की थी। शाहजहाँ का पुत्र दारा अत्यधिक विद्याप्रेमी था। उसे

संस्कृत फारसी का अच्छा ज्ञान था। उसने अनेक 'उपनिषदों ''श्रीमद्भगवतगीता'' तथा ''योगविशष्ठ' का फारसी में अनुवाद किया। दारा ने अनेक सूफी संतों की जीवनगाथाएँ भी लिखीं। उसका प्रसिद्ध ग्रंथ 'मज्म-उल-बहरीन' है। 'मज्म-उल-बहरीन' का अर्थ है कि दो सागरों का मिश्रण। इस ग्रंथ को लिखने का उद्देश्य यह दिखाना है कि हिंदू और मुसलमान दोनों का एक ही ध्येय है। शाहजहाँ ने अनेक योग्य विद्वमों को पुरस्कृत कर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया।

3.4.4.6 औरंगजेब का काल

औरंगज़ेब यद्यपि कट्टर सुन्नी मुसलमान था परंतु साथ ही वह धर्मशास्त्रों का भी विद्वान था। उसकी आज्ञा के आधार पर ''फतवा-ए-आलमगीरी' नामक ग्रंथ की रचना की गई थी। उसके काल में अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना हुई जिनमें ''आलमगीरी-नामा', मुआसिर-ए-आलमगीरी' और कुलासत-उत-तबारीख' नाम उल्लेखनीय हैं। औरंगज़ेब के उत्तराधिकारियों ने फारसी साहित्य को पर्याप्त संरक्षण दिया। परंतु धीरेधीरे साहित्यिक गतिविधियाँ कम होती गईं।

3.4.4.7 संस्कृत साहित्य

यह सत्य है कि मुगल-काल में संस्कृत साहित्य को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला, परंतु प्रारम्भिक सम्राट बाबर और हुमायूँ की संस्कृत के प्रति कोई रुचि नहीं थी। उनका झुकाव विशेष रूप से फारसी साहित्य की ओर था। अकबर प्रथम मुगल शासक था जिसने संस्कृत भाषा को मान्यता दी और उसके विकास में भी राज्य की ओर से योग दिया। अबुलफजल अनेक संस्कृत के विद्वानों की सूची देता है जो अकबर के दरबार में अत्यधिक उच्चता के पद प्राप्त किए हुए थे। दरभंगा के महेश ठाकुर ने अकबर के शासन का इतिहास संस्कृत में लिखा था। जैन विद्वान पद्मसुंदर ने अकबरशाही श्रृगांर दर्पण नामक ग्रंथ की रचना की। अकबर के शासन काल में ही फारसी और संस्कृत का शब्दकोश ''फारसी प्रकाश' रचा गया। अन्य जैन विद्वान सिद्धचन्द्र उपाध्याय ने 'भानुचन्द्र-चित्रा' नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ से जैन धर्म से संबंधित अकबर के दरबार की गतिविधियों का पता चलता है। विजय सूरी के एक शिष्य ने 'कृपारस-कोश' की रचना की। जहाँगीर के काल में भी पूर्वजों के समान संस्कृत को आदर मिलता रहा। यह सत्य है कि शाहजहाँ एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था परंतु साथ ही उसे किसी भाषा के प्रति विशेष जिद्द नहीं थी। सुप्रसिद्धि विद्वान् जगन्नाथ पंडित उसके प्रमुख दरबारी कवि थे। इन्होंने 'रस-गंगाधर' और 'मंगलहरी', नामक पुस्तकों की रचना की। कवीन्द्र सरस्वती नामक दूसरा विद्वान था जो शाहजहाँ के दरबार में था। औरंगज़ेब के हृदय में तो संस्कृत भाषा के लिए कोई स्थान ही नहीं था। परंतु उसके काल में संस्कृत भाषा का अध्ययन हिंदू राजाओं के यहाँ चलता था। मुगल शासकों द्वारा संस्कृत भाषा को शरण न दिए जाने के कारण संस्कृत साहित्य का विकास उच्च कोटि का न हो सका।

3.4.4.8 हिंदी साहित्य

मुगलकालीन साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता कि अकबर के पूर्व बाबर और हुमायूँ हिंदी और संस्कृत भाषा के प्रति उदासीन थे। जिसके कारण हिंदी साहित्य का विकास अत्यंत मंद रहा। हिंदी साहित्य के विकास की अपूर्व प्रगति अकबर के शासन काल से प्रारंभ होती है। इस विषय में डॉ. आशीर्वादीलाल का कथन उल्लेखनीय है। इनके शब्दों में ''अकबर का राज्यकाल हिंदी काव्य का स्वर्ण युग था। उसके अपूर्व सफल शासन, उसकी हिंदू विचारधारा और जीवन के प्रतिस्नेह, उसकी पूर्ण सहनशीलता की नीति, गुणग्राहकता तथा आंतरिकता और बाह्य शांति ने बौद्धिक और साहित्यिक दोनों ही प्रकार की प्रगति के लिए अनुकूल वातावरण निर्मित कर दिया था।

वास्तव में अकबर की धार्मिक सिहण्णता की नीति ने हिंदी साहित्य के विकास में विशेष योग दिया। हिंदी के प्रमुख कवि सूरदास, तुलसीदास, रहीम आदि मुगल-युग की ही देन हैं। अकबर के दरबारी कवियों में टोडरमल, भगवानदास, मानसिंह और बीरबल के नाम उल्लेखनीय हैं परंतु इस युग के महान कवि तुलसीदास थे। अकबर से इनका कभी प्रत्यक्ष परिचय नहीं हुआ। हिंदू जाति में जागृति उत्पन्न करने का प्रमुख श्रेय इनको ही जाता है। ''रामचरितमानस' इनका प्रमुख ग्रंथ है। ''विनयपत्रिका', कवितावली, दोहावली, ''जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, आदि इनके अन्य प्रमुख ग्रंथ हैं। जार्ज ग्रिर्यसन ने तुलसीदास की 'रामचरितमानस' को करोड़ों हिंदुओं की बाईबिल कहकर पुकारा है। तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' भी एक उच्च कोटि का ग्रंथ है। तुलसीदास के पश्चात् इस युग के दूसरे बड़े कवि ''सूरदास' थे। जिन्होंने बहुत ही सुंदर गेय गीत लिखें। ब्रजभाषा में रचित सूरसागर इनका अद्वितीय ग्रंथ है। इनकी कविता श्रृंगार और भक्तिरस का अद्भुत मिश्रण है। बाल्यरस का जितना सुंदर और सजीव वर्णन सूरदार ने किया है उतना किसी और कवि ने नहीं। रसखान के पद भी बड़े भावुकतापूर्ण और सरल हैं। नन्ददास, विट्टलदास, परमानन्ददास, कुम्भन ने अनेक भक्तिरस की कविताएँ लिखी हैं। इस युग के कवियों में नाभादास का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने 'भक्तमाल' की रचना की। इस ग्रंथ में राम-कृष्ण के भक्तों और निर्गुणवादी संतों की जीवनगाथा छंदों में लिखी जाती है। रीतिकालीन कवियों का अविर्भाव भी इस युग में ही हुआ। केशवदास, मतिराम, चिन्तामणि, देव, पद्माकर आदि रीतिकालीन कवियों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। आचार्य केशव रीतिकालीन कवियों के नेता माने जाते थे। उनकी प्रसिद्ध रचना ''रामचन्द्रिका' है। 'कविप्रिया' 'रिसकप्रिया' ''विज्ञान गीता'' जहाँगीर'-जस-चन्द्रिका, वीरिसंहदेव चरित आदि उनके ग्रंथ થેા

अकबर के दरबारियों में रहीम-ए-खाना का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। उनके दोहे जीवन की व्यावहारिकता की ओर संकेत करते हैं। आज भी जन साधारण रहीम के दोहों का प्रयोग बात-बात पर करता है। नरहिर, हरीनाथ तथा करण भी दरबारी किवयों में से थे। अकबर स्वयं हिंदी में किवता के प्रति अनुराग रखता था तथा कुछ विद्वानों के मतानुसार वह स्वयं हिंदी में किवता करता था। इन सब कारणों से ही हिंदी किवता ने उसके युग में पर्याप्त प्रगित की। यह बात ध्यान में रखने की है कि इस युग में हिंदीका विकास केवल राज्याश्रय प्राप्त करने के कारण ही नहीं हुआ। स्थानीय क्षेत्रों में भी सराहनीय प्रयास होते रहे।

जहाँगीर ने भी अपने पूर्वर्जों की तरह हिंदी के संतों तथा विद्वानों को मान्यता दी। जदरूप गोसाई राय मनोहर, विषनदास आदि उनके युग के प्रमुख हिंदी के विद्वान थे। बूटा नाम का हिंदी कवि जहाँगीर का विशेष प्रिय कवि था। शाहजहाँ ने भी हिंदी के प्रति अपनी नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया। सन् 1629 के लगभग उसने तिरहुत के दो प्रसिद्ध कियों को आमंत्रित किया तथा प्रत्येक को लगभग 1000 रू. भेंट किया। उसके दरबार के प्रसिद्ध कियों में सुंदर कियाय, चिन्तामणि तथा कवीन्द्र आचार्य के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। कवींद्र आचार्य ने 'कबींद्र-कल्पतरु' नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में शाहजहाँ की प्रशंसा की गई है। ग्रंथ अवधी तथा ब्रजभाषा में लिखा गया है। शाहजहाँ के युगमें सुंदर किया नाम सबसे ऊपर आता है। राज्य की ओर से उसे 'राजकिव' तथा महाकिव की उपाधियों से विभूषित किया गया था। उसने 'सुंदरसागर' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की। सुंदर किव के समान देव किय भी इस युग के प्रमुख कियों में से थे। श्रृंगार की रचनाओं में बिहारी का नाम सबसे ऊपर आता है। प्रसिद्ध कवि सेनापित भी इस युग के किव थे। ''काव्य-कल्पहुम' और 'भिक्तसागर' उनके प्रसिद्ध ग्रंथों में से हैं। औरंगज़ेब के शासन काल में हिंदी-साहित्य का विकास अवरुद्ध हो गया। इस पर भी हिंदू राजाओं

के यहाँ हिंदी के प्रसिद्ध किव आश्रय पाते रहे। भूषण इसका ही उदाहरण है। छत्रसाल बुंदेला ने उन्हें आश्रय दिया था। भूषण वीररस के किव थे। उन्होंने शिवाजी की प्रशंसा में जो पद लिखे हैं, वे अत्याधिक प्रभावशाली तथा ओजपूर्ण हैं। मितराम भी इसी श्रेणी के किव थे।

3.4.4.9 बांग्ला तथा मराठी साहित्य

बांग्ला में वैष्णव साहित्य का विकास हुआ। अनेक गीत तथा भजनों की रचना की गई। ''चैतन्य-चिरत्र से बंगाल का वातावरण गूँज उठा। 'भगवत' का बांग्ला में अनुवाद किया गया। चण्डीदेवी तथा मनसादेवी की प्रशंसा में अनेक ग्रंथों की रचना की गई। काशीरामदास, मुकन्ददास, चक्रवर्ती तथा धनराय इस युग के प्रसिद्ध बंगाली कवियों में से थे। मुगल-काल में मराठी का भी पर्याप्त विकास हुआ। एकनाथ, दासोपन्त, मुक्तेश्वर, वामन पंडित, तुकाराम, रामदास आदि मराठी के प्रसिद्ध कवियों में से थे। पाण्डित्य की दृष्टि से मराठी की रचनाएँ अपना विशेष महत्व रखती हैं। विद्वान् मुक्तेश्वर ने अपनी रचनाओं का विषय रामायण और महाभारत की गाथाओं को रखा। प्रसिद्ध संत तथा कवि रामदास भी इस युग की प्रतिभा थे। इन्होंने प्रसिद्ध ग्रंथ 'दासबोध' की रचना की थी। मराठी के दूसरे प्रमुख कवि बामन पंडित थे। कृष्ण-भक्तिमार्ग के कवियों में इनका नाम सबसे ऊपर आता है। मोरोपन्त रामभक्ति मार्ग के प्रख्यात कवि थे।

3.4.4.10 गुजराती साहित्य

मुगलकाल में गुजराती-साहित्य की भी पर्याप्त प्रगति हुई। कवि अरवा अकबरकालीन था। 'चित्र-विचार-सँवार', शत-पद, कैवल्य-गीता तथा पंचदर्शी तात्पर्य उसके द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रंथ थे। दूसरे प्रसिद्ध कवि भट्ट प्रेमानन्द हुए। गुजराती के स्तर को ऊँचा उठाने में प्रेमानन्द का प्रमुख हाथ था। उन्होंने लगभग छत्तीस ग्रंथों की रचना की। सामन ने भी गुजराती साहित्य के विकास में अपना परम योग दिया। उसके द्वारा रचित 'मनमोहना' और 'सामलरत्नमाला' विशेष उल्लेखनीय हैं। बल्भव, मुकन्द, देवीदास, विष्णुदास, विश्वनाथ, विश्वनाथ ज्ञानी, रामेश्वर आदि भी इस युग के गुजराती के प्रसिद्ध कवि थे।

3.4.4.11 उर्दू साहित्य

मुगलकाल में उर्दू का उल्लेखनीय विकास नहीं हुआ। नूरी आजमपुरी, हजरत कमालुद्दीन, मखदुम, शेख शादी तथा मोहम्मद अफजल आदि अकबरकालीन उर्दू के प्रसिद्ध किव थे। शाहजहाँ के काल में चन्द्रभान ब्राह्मण और नासिर अफजली इलाहाबादी उर्दू के प्रमुख किवयों में से थे। मुगल शासकों की अपेक्षा दक्षिण में बीजापुर और गोलकुण्डा के शासकों ने उर्दू को अधिक आश्रय दिया। गोलकुण्डा का सुल्तान मुहम्मदकुली कुतुबशाह साहित्य प्रेमी होने के साथ स्वयं उर्दू में गद्य और पद्य की रचना करता था। बीजापुर का शासक भी उर्दू के विद्वानों को संरक्षण प्रदान करने वाला था। उसके शासन काल में वली प्रसिद्ध किव था। वली ने 'गजल' मसनवी तथा 'रूवाइयाते' अत्यंत स्वाभाविक शैली में लिखी। कुछ विद्वानों के अनुसार वली उर्दू का जन्मदाता था। हातिम, खानआर्जू और मजहर उत्तरी भारत में प्रमुख किवयों में से थे, उनकी काव्य शैली बहुत कुछ वली से प्रभावित है।

3.4.5 मुगलकाल में सांस्कृतिक विकास

3.4.5.1 संगीत

हमारे देश में संगीत की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। प्रत्येक हिंदू शासक संगीतकारों को अपने यहाँ आश्रय देता था परंतु कट्टर मुसलमान शासकों ने संगीत को धार्मिक भावनाओं के कारण हेय दृष्टि से देखा। यह सत्य है कि कुरान में संगीत को न तो अच्छा कहा गया है और न बुरा। इस प्रकार की तटस्थता की भावना दिल्ली के अनेक सुल्तानों में रही। कुछ ने अपने दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय दिया तो कुछ ने निषेधाज्ञा निकलवाकर संगीत की पूर्णतया अवहेलना कीपरंतु हिंदूसंस्कृति के संपर्क में आने के कारण मुसलमानों में भी संगीत के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई। उनमें अभिरुचि उत्पन्न करने में दो बाते विशेष रूप से सहायक हुई। सर्वप्रथम, तत्कालीन इस्लाम से सूफी मत के संतों ने श्रद्धा और प्रेम से ओत-प्रोत भजन, गीत और कविताओं के विकास में अपना परम योग दिया। दूसरे, जो हिंदू धर्म परिवर्तन द्वारा मुसलमान बन गए थे तथा वे अपने साथ जो भक्ति गीतों की भावनाओं को लाए, उसे नहीं त्याग सके। इन दो कारणों से ही मुसलमानों में संगीत के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ।

यह सत्य है कि कुछ सुल्तानों ने संगीत पर बंधन लगा दिए थे परंतु बलबन जलालउद्दीन, अलाउद्दीन तथा मुहम्मद बिन तुगलक आदि कभी-कभी अपने दरबार में संगीत द्वारा मंनोरंजन करते थे। मुबारकशाह संगीत का अनन्य प्रेमी था। मुहम्मद तुगलक ने दौलताबाद में तखआदाद नामक महल बनावाया था जिसमें शाही मेहमानों का मनोरंजन करने के लिए गाने वाली लड़िकयाँ रखता था।

सुफी संतों ने संगीत के किंगस में विशेष योग दिया। अजमेर के मुईनउद्दीन तथा दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया ने भक्ति-भावना की कब्बालियों को प्रचलित किया। निजामुद्दीन के प्रसिद्ध शिष्य अमीर ख़ुसरो एक महान संगीतकार थे। उनका सबसे बड़ा नाम भारतीय और फारसी संगीत के मध्य समन्वय करना था। इस विषय में डॉ. युसुफ हुसैन लिखते हैं: ''खुसरो में संश्लिष्टता के लिए एक महान विलक्षण बुद्धि थी। वे पहले हिंदुस्तानी मुलसमान थे जिन्होने फारसी और हिंदुस्तानी संगीत-स्वरों को आपस में मिलाने का विचार किया इस प्रकार हिंदुस्तानी संगीत को भी संपन्नबना दिया। 'धुरुपद' के अतिरिक्त 'ख्याल'' संगीत को रूप देने का उन्हें श्रेय प्राप्त है। कहा जाता है कि ख़ुसरो ने निम्न रागों का आविष्कार किया जो नवीन हिंदू-मुस्लिम संस्कृति को प्रस्तुत करते हैं। मुजिर, सज्गारी, ऐमन, उरशाक, तराना, ख्याल, निगार,बसित, शाहना और सुहेला" खुसरों ने अनेक वाद्य यंत्रों के आविष्कार में भी योगदान दिया। युसुफ हुसैन आगे लिखते हैं कि ''खुसरों ने प्राचीन भारतीय वीणा और ईरानी 'तम्बूरे' के मेल से 'सितार' का आविष्कार भी किया। कहा जाता है कि उन्होंने पुराने मृदंग का रूप परिवर्तित किया और उसे तबले का रूप दिया। उनके द्वारा हिंदुस्तानी कण्ठ और वाद्ययंत्र संगीत में किए गए रूपातंतरों का ठीक-ठीक निश्चित करना संभव नहीं है: परंतु इतना तो निश्चित है कि उन्होने कुछ परिवर्तन अवश्य किए जो संश्लिष्ट संस्कृति की नवीन आत्मा के अनुकूल थे। यह हिंदू धर्म पर इस्लाम का प्रभाव था।' सल्तनत-काल में भैरवी, पीलू, सोहनी आदि राग धार्मिक गोष्ठियों में गाये जाते थे। शाहमा दरबारी और मालकोस दरबार के अंदर गाये जाने वाले प्रमुख राग थे।

3.4.5.2 मुगलयुगीन संगीत

औरंगज़ेब को छोड़कर समस्त मुगल शासक संगीत के आश्रयदाता थे। लेनपूल के मतानुसार गायन बाबर के समय की एक विशिष्ट कला मानी जाती थी। बाबर को स्वयं गाने का शौक था। उसने अपनी आत्मकथा में स्थल-स्थल पर संगीत-गोष्ठियों का उल्लेख किया है। बाबर ने अनेक गीतों की भी रचना की। ''बाबरनामा' में उसने हिरात के प्रसिद्ध गायकों का उल्लेख किया है।

बाबर के समान ही हुमायूँ भी संगीत में अभिरुचि रखता था। उसे निश्चित दिनों में संगीत सुनने का अभ्यास था। प्रायः वह सोमवार तथा बुधवार को संगीत सुनता था। उसे सूफी संतों के गानों में विशेष अभिरुचि थी।

संगीत का वास्तविक विकास अकबर के युग में होता है। अकबर को संगीत से विशेष प्रेम था। अबुलफजल लिखता है:- ''सम्राट संगीत पर विशेषरूप से ध्यान देते हैं तथा इस मनोहर कला के कलाकारों के संरक्षक हैं। हिंदू ईरानी, तूरानी, काश्मीरी स्त्री-पुरुष बहुत से दरबारी संगीतज्ञ हैं। दरबारी संगीतज्ञों के सप्ताह में दिन के लिए सात दल हैं।" अबुलफजल अकबर के संगीत ज्ञान के विषय में लिखता है कि "अकबर को संगीत-विद्या का इतना अधिक ज्ञान था जितना कुशल गवैये को भी नहीं होगा। वह नक्कारा बजाने में अत्यंत कुशल था।" अबुलफजल से ही हमें ज्ञात होता है कि अकबर के दरबार में लगभग 66 कलाकार थे। अबुलफजल, अब्द्र्यरहीम "खानखाना", राजा भगवानदास और मानसिंह जैसे राजदरबारी विभिन्न संगीतज्ञों को अपने यहाँ संरक्षण प्रदान करते थे। अकबर के विषय में कहा जाता है कि उसने अनेक रागों को रचना की थी।

अकबर के दरबार का प्रसिद्ध गायक तानसेन था। अबुलफजल, के शब्दों में, ''भारत में उसके समान गायक एक सहस्त्र वर्षों से नहीं हुआ।'' मियाँ तानसेन रीवा के रहने वाले गौड़ ब्राह्मण थे। कालांतर में इन्होंने मुसलमान धर्म ग्रहण कर लिया था। संगीत की निपुणता ने इन्हें दरबार में सर्वोच्च श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। राजा मानसिंह ने तोमर द्वारा स्थापित विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। तानसेन ने अनेक रागनियों का आविष्कार भी किया था। उनकी संगीत कला के ऊपर अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि वे अपने संगीत द्वारा बहते हुए यमुनाजल को रोक देते थे। अत्यधिक मदिरापान करने से सन् 1589 में केवल 34 वर्ष की आयु में ही उनकी मृत्यु हो गई थी।

अन्य संगीतज्ञों में बाबा रामदास का नाम भी उल्लेखनीय है। वे तानसेन के बाद की श्रेणी में आते हैं। बाबा रामदास की संगीत कला से प्रसन्न होकर वैरमखाँ ने एक अवसर पर उसे 10,000 टंक प्रदान किए थे। मालवा के भूतपूर्व राजा राजाबहादुर भी अकबर के प्रसिद्ध संगीतज्ञ दरबारी थे।

अकबर द्वारा विभिन्न संगीतज्ञों को शरण देने से हिंदुस्तानी संगीत का अपूर्व विकास हुआ। प्रसिद्ध गायकों ने अनेक महत्वपूर्ण रागों का आविष्कार किया तथा संगीत के संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद किया। अकबर के दरबार में हिंदू और मुसलमान दोनों तरह के संगीतज्ञ थे, अतः संगीत की शैलियों में समन्वय हुआ तथा तराना, उमरी गजल, कब्बाली आदि का जन्म हुआ। अनेक विद्वानों का मत है कि फारसी और भारतीय संगीत के मिश्रण से एक नवीन शैली का उदय हुआ। जो दोनों से अधिक सरल तथा मनोहर थी, परंतु साथ ही कुछ विद्वानों का मत है कि इस मिश्रण ने भारतीय संगीत की सहृदयता को नष्ट कर दिया। तानसेन के विषय में भी कहा गया है कि उन्होंने रागों के स्वरूप को बिगाड़ दिया था। हिन्डोल और मेघ का तो अस्तित्व ही समाप्त हो गया।

अपने पिता के समान जहाँगीर ने भी संगीत को संरक्षण प्रदान किया तथा वह संगीतज्ञों को उत्साहित करता रहा। विलियम फिन्च के मतानुसार, "कई सौ गायक और गायिका दिन-रात हाजिर रहते थे। किंतु उनकी बारी हर सातवें दिन आती थी। ताकि जब बादशाह या उसकी पितनयाँ अपने महल में नाचने या गाने के लिए बुलाएँ तो वे तैयार रहें और बादशाह उन्हें योग्यता के आधार पर वजीफे देता था।" जहाँगीर के दरबार में छत्रखाँ, परबीज, एदाद, मखू, खुर्रमदाद, हम्ज, विलासखाँ तथा तानसेन के पुत्र आदि महान संगीतज्ञ थे।

शाहजहाँ संगीत प्रेमी होने के साथ-साथ स्वयं भी संगीत कला में दक्ष था। समयसमय पर वह संगीतज्ञों के साथ-साथ बैठकर अभ्यास करता था। शाहजहाँ के विषय में सर जदुनाथ सरकार लिखते हैं ''शाहजहाँ का स्वर इतना आकर्षक था कि बहुत से संसार में विरक्त पवित्र-हृदय सूफी और संत इन सायंकालीन महिफलों में शाहजहाँ की संगीत स्वर लहरी में अपनी सुध भुला बैठते थे।'' दीरंगखाँ, लालखाँ, जगन्नाथ, रामदास, महापात्र, सुखसेन आदि उसके युग के महान संगीतज्ञ थे। जगन्नाथ उस काल के महान

संगीतज्ञों में से थे। शाहजहाँ उनसे अत्याधिक प्रभावित था। जगन्नाथ संस्कृत के कवि और विद्वान थे। 'रामगंगाधर' तथा 'गंगालहरी' उनकी प्रसिद्ध रचना हैं।

औरंगज़ेब के काल में संगीत-कला का विकास अवरुद्ध हो जाता है। धार्मिक कट्टर विचारक होने के कारण उसे संगीत कला से घृणा थी। उसने अपने दरबार के समस्त संगीतज्ञों को अपदस्थ कर दिया। लोग अपने घरों में गा बजा भी नहीं सकते थे। संगीतकारों को पग-पग पर अपमानित किया जाने लगा। इन सब कारणों से तत्कालीन संगीतकारों ने मिलकर संगीत का एक जनाजा निकाला। उसी समय औरंगज़ेब मस्जिद में नमाज पढ़ने जा रहा था। उसने जनाजे के विषय में पूछा तो लोगों ने कहा कि संगीत की मृत्यु हो गई है, उसे दफनाने जा रहे हैं। इसके उत्तर में औरंगज़ेब ने कहा, ''इसे इतना गहरा दफनाना कि यह फिर सिर भी न उठा सके।'' औरंगज़ेब के इस व्यवहार के कारण संगीतज्ञ निराश होकर प्रांतीय नरेशों और नवाबों के यहाँ चले गए थे। इस युग के संगीतकारों में भागदत्त का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह राणा अनूपिसंह के राज्याश्रय में रहते थे।

औरंगज़ेब के पश्चात् मुहम्मद्गाह रंगीला ने संगीत को विशेष रूप से उत्साहित किया। अदावरंग सदावरंग आदि के ख्यालों से उनका दरबार गूँजता रहता था। उसके युग में ही शोरीमियाँ ने 'टप्पा' गायन का प्रचार किया। पर्याप्त समय के पश्चात् श्रीनिवास ने संगीत पर ''रागतत्व-नवबोध' नामक ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ उत्तरी भारत के मध्ययुगीन संगीत पर लिखा गया अंतिम ग्रंथ है।

मुगल शासकों के समान ही दक्षिण के सुल्तान संगीत में अभिरुचि रखते थे। गोलकुण्डा में तो लगभग बीस हजार संगीतज्ञ निवास करते थे। हिंदू राजा भी अपने-अपने यहाँ संगीतज्ञों को संरक्षण प्रदान करना अपना पावन कर्तव्य समझते थे तथा उन्हें अपने यहाँ यथासंभव आदर प्रदान करते थे। हिंदू गायक भजन गाने में विशेष दक्ष थे।

3.4.5.3 बागवानी

समस्त मुगल शासक बागवानी के शौकीन थे। यह सत्य है कि मुगलों के आगमन से पूर्व भी इस देश में उद्यान थे परंतु वे न तो किसी व्यवस्था के आधार पर बनाए गए थे और न उनमें ज्यामिति डिजाइन का प्रयोग किया जाता था। बागवानी को कलात्मक रूप देने का श्रेय मुगल शासकों को ही जाता है। फीरोज-शाह तुगलक ने दिल्ली के आसपास 1200 उद्यान लगवाये थे। बाबर प्रथम मुगल शासक था जिसने फारसी और तुर्की शैली के उद्यान भारत में लगवाये। वे उद्यान प्रायः ढालू स्थान पर लगाए जाते थे तथा इनमें कृत्रिम नहरों और झरनों द्वारा सिंचाई की व्यवस्था रहती थी। उद्यान के मध्य में चबूतरे तथा फौबारे होते थे। प्रायः बाग वर्गाकार या आयताकार होते थे। बाग में दो या चार प्रवेशद्वार होते थे। प्रथम मुगल उद्यान की स्थापना बाबर ने आगरे में की। यह उद्यान 'इश्तिमश्त' के नाम से पुकारा जाता था। यह यमुना तट पर स्थित है तथा आजकल इसे राजबाग के नाम से पुकारा जाता है। हुमायूँ को भी बागवानी से शौक था। उसने अपने निवास स्थल को फूलों और सुंदर वृक्षों द्वारा सजाया था।

अपने पूर्वजों के समान अकबर ने बागवानी के प्रति विशेष रुचि दिखायी। आगरे के किले, फतेहपुरसीकरी तथा अन्य महलों में उसने अपने बाग लगवाये। परंतु सबसे महत्वपूर्ण उद्यान उसके द्वारा सिकन्दरा में लगवाया गया इस उद्यान के मध्य में ही उसने मकबरे का निर्माण करवाया था। यह उद्यान चार भागों में विभाजित किया गया था तथा चार ही इसके प्रवेशद्वार थे। उद्यान में साईप्रस, पाईन तथा पाम आदि के सुंदर वृक्ष लगाए गए हैं।

उद्यान कला जहाँगीर के काल तक अपनी पूर्णता पर पहुँच गई थी। वह जहाँ-कहीं भी रहा, उसने मनोहर उद्यानों की स्थापना की। काश्मीर का शालीमार बाग उसकी उद्यानप्रियता का एक आदर्श है। इस उद्यान की शोभा हिमाच्छादित पर्वतों तथा डल झील ने और भी बढ़ा दी है। उसने आगरा में इतमादउद्दौला में भी एक सुंदर उद्यान का निर्माण करवाया तथा लाहौर के निकट शाहदरा में भी अपने मकबरे में एक सुंदर उद्यान की स्थापना की। इन दोनों उद्यानों की रूपरेखा बहुत कुछ सिकन्दरा के उद्यान से मिलती जुलती रही है। सुंदर फौबारे, सरोवर तथा आठ खुली छतें इन उद्यानों की विशेषताएँ हैं। शाहजहाँ भी बागवानी में दिलचस्मी लेता था। समस्त उद्यान तीन भागों में विभाजित किए गए हैं। उद्यान में साईप्रस तथा चिनार के पेड़ बहुलता से लगे हैं। विभिन्न प्रकार के फल-फूल भी लगे हैं तथा अनेक फौबारे उद्यान की शोभा को द्विगुणित करते हैं। दिल्ली में भी शाहजहाँ ने अनेक उद्यानों की स्थापना की है। मुगल-शासकों का अनुसरण कर अनेक मुगल सामंतों ने अपने निवास स्थानों पर उद्यानों की स्थापना की। वे उद्यान मुख्यतया दिल्ली, आगरा तथा फतेहपुरसीकरी के निकट ही स्थापित किए गए थे। इन उद्यानों में ईरानी गलीचे के फैशन की फूलों की क्यारियाँ बनायी जाने लगी थीं। शाहजहाँ ने आगरा के किले में अंगूरी बाग तथा दिल्ली में तालकटोरा बाग की स्थापना की थी। अंगूरी बाग अपने समय में अत्यंत कलापूर्ण ढंग से सजा होगा। संभवत: इसमें अंगूर की लताएँ लगी हों।

औरंगजेब जिस प्रकार अन्य कलाओं के प्रति उदासीन था, उसी प्रकार उद्यान-कला से भी उसे कोई विशेष अनुराग नहीं था। उनके शासन काल में किसी भी महत्वपूर्ण उद्यान की स्थापना नहीं हुई।

3.4.5.4 मूर्ति कला

प्राचीन भारत में मूर्ति कला अपने चरम विकास पर थी। गुप्त कालीन मूर्तियाँ इस कथन का ज्वलंत प्रमाण हैं, परंतु छठवीं तथा सातवीं शताब्दी तक इस कला के विकास में अवरुद्धता आ गई थी। मुस्लिम आक्रमण के पश्चात् तो मूर्ति कला प्रायः नष्ट सी हो गई थी। मुसलमानों के अनुसार जीवित प्राणियों की मूर्ति निर्मित करना पाप है। दूसरे, मुस्लिम शासक मूर्तियों को विनिष्ट करना अपना पावन कर्तव्य समझते थे। इन विश्वासों के आधार पर अनेक देवी-देवताओं की कलापूर्ण मूर्तियों को विनिष्ट कर दिया गया। वास्तव में मुगल-काल में जितना आघात मूर्ति कला को लगा, उतना संभवतः किसी और कला को नहीं। मुगल शासकों में अकबर अवश्य ऐसा था जिसने अपनी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय इस क्षेत्र में भी दिया और मूर्ति कला के विकास में किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली। उसने हिं दूमूर्तिकारों को अपने देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की। उसके शासन काल में किसी भी मंदिर की मूर्ति को विनिष्ट नहीं किया गया। उसकी ही आज्ञा से जयमल और कला की हाथी पर सवार मूर्ति निर्मित की गई जो आगरे के किले के मुख्य-द्वार को सुसज्जित करती थी। फतेहपुरसीकरी के महल का हाथीपोल द्वार भी दो विशाल हाथियों द्वारा सजाया गया। ये हाथी लाल पाषाण के हैं। जहाँगीर के काल में भी मूर्तियाँ आगरा के किले में झरोखा दर्शन के ठीक नीचे स्थापित की गईं। मूर्ति कला का विकास शाहजहाँ और औरंगज़ेब के शासन काल में राजकीय उदासीनता के कारण अवरुद्ध हो गया।

3.4.5.5 हाथीदाँत का प्रयोग

मुगलकाल में हाथी दाँत का काम विशेष रूप से प्रगति पर था। मुगल शासकों ने स्वयं इस कला को प्रोत्साहन दिया। जो कारीगर कुशलतापूर्वक हाथीदाँत की वस्तुएँ निर्मित करते थे उन्हें राज्य की ओर से पुरस्कृत किया जाता था। हाथी दाँत की मूर्तियाँ, बटन तथा छोटे-छोटे बक्स और श्रृंगारदान आदि बड़े कलापूर्ण ढंग से बनाए जाते हैं। जयपुर, आगरा तथा फतहपुरसीकरी इस कला के प्रसिद्ध केंद्र थे। मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् भी किसी-न-किसी रूप में यह कला आज भी जीवित है।

3.4.6 सारांश

मुगलकाल में साहित्य का विकास

फारसी साहित्य

बाबर तुर्की तथा फारसी दोनों भाषाओं पर अधिकार रखता था। उसके द्वारा 'तुजके-बाबरी' उसकी विद्वत्ता का प्रमुख कारण है। इस ग्रंथ का फारसी में तीन बार अनुवाद किया गया। यूरोप की विभिन्न भाषाओं में भी इसे अनुवादित किया गया। वास्तव में 'तुजके-बाबरी', बाबर की स्मृतियों का एक दर्पण है।

संस्कृत साहित्य

अकबर प्रथम मुगल शासक था जिसने संस्कृत भाषाको मान्यता दी और उसके विकास में भी राज्य की ओर से योग दिया। अबुलफजल संस्कृत के अनेक विद्वानों की सूची देता है जो अकबर के दरबार में अत्यधिक उच्चता के पद प्राप्त किए हुए थे। दरभंगा के महेश ठाकुर ने अकबर के शासन का इतिहास संस्कृत में लिखा था। जैन विद्वान पद्मसुंदर ने अकबरशाही-श्रृगांर दर्पण नामक ग्रंथ की रचना की। अकबर के शासन काल में ही फारसी और संस्कृत का शब्दकोश ''फारसी प्रकाश' रचा गया। अन्य जैन विद्वान सिद्धचन्द्र उपाध्याय ने 'भानुचन्द्र-चित्रा' नामक ग्रंथ की रचना की।

हिंदी साहित्य

मुगलकालीन साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता कि अकबर के पूर्व बाबर और हुमायूँ हिंदी और संस्कृत भाषा के प्रति उदासीन थे। जिसके कारण हिंदी साहित्य का विकास अत्यंत मंद रहा। हिंदी साहित्य के विकास की अपूर्व प्रगति अकबर के शासन काल से प्रारंभ होती है।

वास्तव में अकबर की धार्मिक सिहण्णुता की नीति ने हिंदी साहित्य के विकास में विशेष योगदान दिया। हिंदी के प्रमुख किव, सूरदास, तुलसीदास, रहीम आदि मुगल-युग की ही देन है। अकबर के दरबारी किवयों में टोडरमल, भगवानदास, मानिसंह और बीरबल, के नाम उल्लेखनीय हैं परंतु इस युग के महान किव तुलसीदास थे। हिंदू जाित में जागृित उत्पन्न करने का प्रमुख श्रेय इनको ही जाता है।

बांग्ला तथा मराठी साहित्य

बांग्ला में वैष्णव साहित्य का विकास हुआ। अनेक गीत तथा भजनों की रचना की गईं। ''चैतन्य-चिरत्र से बंगाल का वातावरण गूँज उठा। 'भगवत' का बांग्ला में अनुवाद किया गया। चण्डीदेवी तथा मनसादेवी की प्रशंसा में अनेक ग्रंथों की रचना की गई। काशीरामदास, मुकन्ददास, चक्रवर्ती तथा धनराय इस युग के प्रसिद्ध बंगाली किवयों में से थे। मुगल-काल में मराठी का भी पर्याप्त विकास हुआ।

गुजराती साहित्य

मुगलकाल में गुजराती-साहित्य की भी पर्याप्त प्रगति हुई। कवि अरवा अकबरकालीन था। 'चित्र-विचार-सँवार', शत-पद, कैवल्य-गीता, तथा पंचदर्शी तात्पर्य उसके द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रंथ थे। दूसरे प्रसिद्ध कवि भट्ट प्रेमानन्द हुए। गुजराती के स्तर को ऊँचा उठाने में प्रेमानन्द का प्रमुख हाथ था। उन्होंने लगभग छत्तीस ग्रंथों की रचना की। सामन ने भी गुजराती साहित्य के विकास में अपना परम योग दिया। उसके द्वारा रचित 'मनमोहना' और 'सामलरत्नमाला' विशेष उल्लेखनीय हैं। बल्भव, मुकन्द, देवीदास, विष्णुदास, विश्वनाथ, विश्वनाथ ज्ञानी, रामेश्वर आदि भी इस युग के गुजराती के प्रसिद्ध कवि थे।

उर्दू साहित्य

मुगलकाल में उर्दू का उल्लेखनीय विकास नहीं हुआ। नूरी आजमपुरी, हजरत कमालुद्दीन, मखदुम, शेख शादी तथा मोहम्मद अफजल आदि अकबरकालीन उर्दू के प्रसिद्ध कवि थे। शाहजहाँ के काल में चन्द्रभान ब्राह्मण और नासिर अफजली इलाहाबादी उर्दू के प्रमुख कवियों में से थे। मुगल शासकों की अपेक्षा दक्षिण में बीजापुर और गोलकुण्डा के शासकों ने उर्दू को अधिक आश्रय दिया।

मुगलकाल में सांस्कृतिक विकास संगीत

हमारे देश में संगीत की परंपरा प्रचीन काल से चली आ रही है। प्रत्येक हिंदू शासक संगीतकारों को अपने यहाँ आश्रय देता था। परंतु कट्टर मुसलमान शासकों ने संगीत को धार्मिक भावनाओं के कारण हेय दृष्टि से देखा। यह सत्य है कि कुरान में संगीत को न तो अच्छा कहा गया है और न बुरा। इस प्रकार की तटस्थता की भावना दिल्ली के अनेक सुल्तानों में रही। कुछ ने अपने दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय दिया तो कुछ ने निषेधाज्ञा निकलवाकर संगीत की पूर्णतया अवहेलना की परंतु हिंदू संस्कृति के संपर्क में आने के कारण मुसलमानों में भी संगीत के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई। उनमें अभिरुचि उत्पन्न करने में दो बाते विशेष रूप से सहायक हुई। सर्वप्रथम, तत्कालीन इस्लाम से सूफी मत के संतों ने श्रद्धा और प्रेम से ओत-प्रोत भजन, गीत और कविताओं के विकास में अपना परम योग दिया। दूसरे, जो हिंदू धर्म परिवर्तन द्वारा मुसलमान बन गए थे तथा वे अपने साथ जो भक्ति गीतों की भावनाओं को लाए, उसे नहीं त्याग सके। इन दो कारणों से ही मुसलमानों में संगीत के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ।

औरंगज़ेब को छोड़कर समस्त मुगल शासक संगीत के आश्रयदाता थे। लेनपूल के मतानुसार गायन बाबर के समय की एक विशिष्ट कला मानी जाती थी। बाबर को स्वयं गाने का शौक था। उसने अपनी आत्मकथा में स्थल-स्थल पर संगीत-गोष्ठियों का उल्लेख किया है। बाबर ने अनेक गीतों की भी रचना की। ''बाबरनामा' में उसने हिरात के प्रसिद्ध गायकों का उल्लेख किया है।

बाबर के समान ही हुमायूँ भी संगीत में अभिरुचि रखता था। उसे निश्चित दिनों में संगीत सुनने का अभ्यास था। प्रायः वह सोमवार तथा बुधवार को संगीत सुनता था। उसे सूफी संतों के गानों में विशेष अभिरुचि थी।

संगीत का वास्ताविक विकास अकबर के युग में होता है। अकबर को संगीत से विशेष प्रेम था। अबुलफजल लिखता है 'सम्राट संगीत पर विशेषरूप से ध्यान देते हैं तथा इस मनोहर कला के कलाकारों के संरक्षक हैं। हिंदू ईरानी, तूरानी, काश्मीरी स्त्री-पुरुष बहुत से दरबारी संगीतज्ञ हैं। दरबारी संगीतज्ञों के सप्ताह में दिन के लिए सात दल हैं।'' अबुलफजल अकबर के संगीत ज्ञान के विषय में लिखता है कि ''अकबर को संगीत-विद्या का इतना अधिक ज्ञान था जितना कुशल गवैये को भी नहीं होगा। वह नक्कारा बजाने में अत्यंत कुशल था। अबुलफजल से ही हमें ज्ञात होता है कि अकबर के दरबार में लगभग 66 कलाकार थे।'' अबुलफजल, अर्ब्युरहीम ''खानखाना', राजा भगवानदास और मानसिंह जैसे राजदरबारी विभिन्न संगीतज्ञों को अपने यहाँ संरक्षण प्रदान करते थे। अकबर के विषय में कहा जाता है कि उसने अनेक रागों की रचना की थी।

अपने पिता के समान जहाँगीर ने भी संगीत को संरक्षण प्रदान किया तथा वह संगीतज्ञों को उत्साहित करता रहा। विलियम फिन्च के मतानुसार, "कई सौ गायक और गायिका दिन-रात हाजिर रहते थे, किंतु उनकी बारी हर सातवें दिन आती थी। ताकि जब बादशाह या उसकी पत्नियाँ अपने महल में नाचने या गाने के लिए बुलाएँ तो वे तैयार रहें और बादशाह उन्हें योग्यता के आधार पर वजीफे देता था।" जहाँगीर

के दरबार में छत्रखाँ, परबीज, एदाद, मखू, खुर्रमदाद, हम्ज, विलासखाँ तथा तानसेन के पुत्र आदि महान संगीतज्ञ थे।

शाहजहाँ संगीत प्रेमी होने के साथ-साथ स्वयं भी संगीत कला में दक्ष था। समय-समय पर वह संगीतज्ञों के साथ-साथ बैठकर अभ्यास करता था। शाहजहाँ के विषय में सर जदुनाथ सरकार लिखते हैं ''शाहजहाँ का स्वर इतना आकर्षक था कि बहुत से संसार में विरक्त पवित्र-हृदय सूफी और संत इन सायंकालीन महिफलों में शाहजहाँ की संगीत स्वर लहरी में अपनी सुध भुला बैठते थे। दीरंगखाँ, लालखाँ, जगन्नाथ, रामदास, महापात्र, सुखसेन आदि उसके युग के महान संगीतज्ञ थे। जगन्नाथ उस काल के महान संगीतज्ञों में से थे। शाहजहाँ उनसे अत्यधिक प्रभावित था। जगन्नाथ संस्कृत के किव और विद्वान थे। 'रामगंगाधर' तथा 'गंगालहरी' उनकी प्रसिद्ध रचना हैं।

औरंगज़ेब के काल में संगीत-कला का विकास अवरुद्ध हो जाता है। धार्मिक कट्टर विचारक होने के कारण उसे संगीत कला से घृणा थी। उसने अपने दरबार के समस्त संगीतज्ञों को अपदस्थ कर दिया। लोग अपने घरों में गा बजा भी नहीं सकते थे। संगीतकारों को पग-पग पर अपमानित किया जाने लगा। इन सब कारणों से तत्कालीन संगीतकारों ने मिलकर एक संगीत का जनाजा निकाला।

बागवानी

समस्त मुगल शासक बागवानी के शौकीन थे। यह सत्य है कि मुगलों के आगमन से पूर्व भी इस देश में उद्यान थे परंतु वे न तो किसी व्यवस्था के आधार पर बनाए गए थे और न उनमें ज्यामिति डिजाइन का प्रयोग किया जाता था। बागवानी को कलात्मक रूप देने का श्रेय मुगल शासकों को ही जाता है। फीरोज-शाह तुगलक ने दिल्ली के आसपास 1200 उद्यान लगवाये थे। बाबर प्रथम मुगल शासक था जिसने फारसी और तुर्की शैली के उद्यान भारत में लगवाये। वे उद्यान प्रायः ढालू स्थान पर लगाए जाते थे तथा इनमें कृत्रिम नहरों और झरनों द्वारा सिंचाई की व्यवस्था रहती थी। उद्यान के मध्य में चबूतरे तथा फौबारे होते थे। प्रायः बाग वर्गाकार या आयताकार होते थे। बाग में दो या चार प्रवेशद्वार होते थे। प्रथम मुगल उद्यान की स्थापना बाबर ने आगरे में की। हुमायूँ को भी बागवानी से शौक था। उसने अपने निवास स्थल को फूलों और सुंदर वृक्षों द्वारा सजाया था। औरंगजेब जिस प्रकार अन्य कलाओं के प्रति उदासीन था, उसी प्रकार उद्यान-कला से भी उसे कोई विशेष अनुराग नहीं था। उनके शासन काल में किसी भी महत्वपूर्ण उद्यान की स्थापना नहीं हुई।

मूर्ति कला

मुगल शासकों में अकबर अवश्य ऐसा था जिसने अपनी धार्मिक सिहष्णुता का परिचय इस क्षेत्र में भी दिया और मूर्ति कला के विकास में किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली। उसने हिंदू-मूर्तिकारों को अपने देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की। उसके शासन काल में किसी भी मंदिर की मूर्ति को विनिष्ट नहीं किया गया। उसकी ही आज्ञा से जयमल और कला की हाथी पर सवार मूर्ति निर्मित की गई जो आगरे के किले के मुख्य-द्वार को सुसज्जित करती थी।

हाथीदाँत का प्रयोग

मुगलकाल में हाथी दाँत का काम विशेष रूप से प्रगति पर था। मुगल शासकों ने स्वयं इस कला को प्रोत्साहन दिया। जो कारीगर कुशलतापूर्वक हाथीदाँत की वस्तुएँ निर्मित करते थे, उन्हें राज्य की ओर से पुरस्कृत किया जाता था। हाथी दाँत की मूर्तियाँ, बटन तथा छोटे-छोटे बक्स और श्रृंगारदान आदि बड़े कलापूर्ण ढंग से बनाए जाते थे। जयपुर, आगरा तथा फतेहपुरसीकरी इस कला के प्रसिद्ध केंद्र थे।

3.4.7 बोध प्रश्र

3.4.7.1 लघु उत्तरीय प्रश्न

- 1. बाबरनामा पर टिप्पणी लिखिए।
- 2. हुमायुँनामा पर टिप्पणी लिखिए।
- 3. अकबरनामा पर टिप्पणी लिखिए।
- 4. तुजुके जहाँगीरी पर टिप्पणी लिखिए।
- 5. बादशाहनामें पर टिप्पणी लिखिए।
- 6. आलमगीरनामा पर टिप्पणी लिखिए।
- 7. मुगलकालीन अनुवाद विभाग के विषय में आप क्या जानते हैं ?
- 8. मुगलकाल में बागवानी के विषय में आप क्या जानते हैं ?
- 9. मुगलकाल में मूर्तिकला के विषय में आप क्या जानते हैं?
- 10. मृगलकाल में हाथीदाँत के प्रयोग पर टिप्पणी लिखिए।

4.7.2 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- 1. बाबरनामा की विवेचना कीजिए।
- 2. हुमायुँनामा की विवेचना कीजिए।
- 3. अकबरनामा की विवेचना कीजिए।
- 4. तुजुके जहाँगीरी की विवेचना कीजिए।
- 5. बादशाहनामें की विवेचना कीजिए।
- 6. आलमगीरनामा की विवेचना कीजिए।
- 7. मुगलकालीन हिंदी साहित्य का वर्णन कीजिए।
- 8. मुगलकालीन फारसी साहित्य का वर्णन कीजिए।
- 9. मुगलकालीन विभिन्न कलाओं पर विस्तार से प्रकाश डालिए।
- 10. अकबर के काल में साहित्य के विकास का वर्णन कीजिए।

3.4.8 संदर्भ ग्रंथ

- 1. ए.एल. वाशम: अद्भुत भारत: शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, आगरा, 1967
- 2. रैप्सन, ई.जे.: कैम्ब्रिज हिस्टरी ऑफ इंडिया, खंड-2
- 3. मजूमदार तथा पुसलकर: दी मुगल एम्पायर, भारतीय विद्या भवन, बम्बई
- 4. नीलकंठ शास्त्री: ए कम्प्रिहैन्सिव हिस्टरी ऑफ इंडिया, खंड-2, ओरियन्ट लांगमैन्स, 1957
- 5. एलन, हेग, डाडवेल: दी कैम्ब्रिज शार्टर हिस्टरी ऑफ इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1934
- 6. मजूमदार तथा पुसलकर: दि डेल्ही सल्तनत, भारतीय विद्या भवन, बंबई, 1953
- 7. भारद्वाज, दिनेश: मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, 1982
- 8. मेहरा, उमाशंकरः मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, आगरा, 1982
- 9. लूनिया, बी.एन.: मुगल साम्राज्य का उत्कर्ष, कमल प्रकाशन, इन्दौर, 1980
- 10. श्रीवास्तव, ए. एल: मुगल कालीन भारत, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1980
- 11. श्रीवास्तव, ए. एल: मध्यकालीन संस्कृति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1980
- 12. सिन्हा, बी. बी: मध्यकालीन भारत, ज्ञानदा प्रकाशन, पटना, 1981
- 13. वेल्च, स्टुअर्ट सी.: द आर्ट ऑफ मुगल इंडिया, न्यूयॉर्क, 1963

14. नाथ, आर.: हिस्ट्री ऑफ मुगल आर्कीटेक्चर, नई दिल्ली, 1994

15. ब्राउन, पर्सी: इंडियन आर्कीटेक्चर (इस्लामिक पीरियड), यू.के., 1942

खंड-4: मराठा साम्राज्य का उदय व विस्तार इकाई-1: मराठा शक्ति का उत्कर्ष

इकाई की रूपरेखा

- 4.1.1. उद्देश्य
- 4.1.2. प्रस्तावना
- 4.1.3. मराठा शक्ति के उत्कर्ष के कारण
 - 4.1.3.1. महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति
 - 4.1.3.2. धार्मिक कीर्ति का अभाव
 - 4.1.3.3. स्थानीय संस्थाएँ
 - 4.1.3.4. मुसलमानों के विरोध की भूमिका
 - 4.1.3.5. दक्षिण के मुसलमानी राज्यों में हिंदु ओं का प्रभाव
 - 4.1.3.6. दक्षिण के राज्यों में हिंदू ओं का महत्व
 - 4.1.3.7. दक्षिणी मुसलमान राज्यों की पतनावस्था
 - 4.1.3.8. धार्मिक पृष्ठभूमि
 - 4.1.3.9. राजनीतिक स्थिति
 - 4.1.3.10. औरंगजेब की धार्मिक नीति
 - 4.1.3.11. मराठी भाषा तथा साहित्य
 - 4.1.3.12. भोंसले परिवार का योगदान
 - 4.1.3.13. शिवाजी का नेतृत्व
- 4.1.4. सारांश
- 4.1.5. बोध प्रश्न
 - 4.1.5.1. लघु उत्तरीय प्रश्न
 - 4.1.5.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
- 4.1.6. संदर्भ-ग्रंथ

4.1.1. उद्देश्य

मुगल साम्राज्य के सबसे बड़े शत्रु मराठे थे, जिन्होंने दो शताब्दी से अधिक भारतीय इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया और मुगल साम्राज्य के पतन में विशेष रूप से सहयोग प्रदान किया। मराठा शक्ति को सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित करने तथा मराठा साम्राज्य का निर्माण करने में शिवाजी अवश्य सफल हुए, किंतु यहाँ यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि यह भारतीय इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों का परिणाम था। इसको एक भिन्न तथा अलग घटना स्वीकार नहीं किया जा सकता है। मराठा शक्ति के उत्थान में विभिन्न कारणों ने योगदान दिया और वह दिन प्रतिदिन अधिक बलवती बनती गई। इस इकाई का उद्देश्य मराठा शक्ति के उत्कर्ष पर प्रकाश डालना है।

4.1.2. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में मराठा शक्ति के उत्कर्ष की विस्तृत विवेचना की जाना प्रस्तावित है।

4.1.3. मराठा शक्ति के उत्कर्ष का कारण

महाराष्ट्र प्रदेश विंध्य तथा सतपुड़ा पर्वतमाला से घिरा हुआ एक दुर्गम प्रदेश था। इन पर्वत श्रेणियों तथा दुर्गम क्षेत्रों ने मराठों को लूटपाट कर कंदराओं में भागकर छिप जाने में सुविधा प्रदान की अतः लूटमार यहाँ के निवासियों के जीवन-निर्वाह का सामान्य साधन बन गया। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण यहाँ दुर्जेय गढ़ों का निर्माण सुगम हुआ, जो मराठों की सुदृढ़ सुरक्षा पंक्ति का काम करते थे।

मराठा लोग दक्षिण से उठे और शिवाजी के नेतृत्व में महान् मुगल साम्राज्य को चुनौती देने की स्थिति में पहुँच गए। अंतिम महान मुगल सम्राट औरंगजेब को अपने जीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा मराठों को कुचलने में खर्च करना पड़ा, फिर भी वह अपनी संपूर्ण शक्ति और सेना के साथ मराठों को नीचा दिखाने में असफल रहा। दिक्षण में शक्तिशाली निजाम और ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ मराठों ने वीतरतापूर्वक युद्ध किए। मराठे लोग कैसे इतने शक्तिशाली बने, मराठा-शक्ति के उदय के लिए उत्तरदायी कौन से कारण थे- यह अध्ययन का एक रोचक विषय है। क्या दिक्षण में मराठा-शक्ति का उदय एक आकस्मिक घटना थी? इतिहासकारों के समक्ष ये एक प्रश्नचिह्न है। महादेव गोविंद रानाडे ने यह प्रश्न प्रस्तुत किया था कि मुसलमानों को उखाड़ फेंकने का जो सफल प्रयास महाराष्ट्र में हुआ उसके पीछे कौन-सी ऐसी परिस्थितियाँ थी जिन्होंने इसमें योगदान दिया। इसका उत्तर कई इतिहासकारों ने देने का प्रयास किया है।

मुगल साम्राज्य के सबसे बड़े शत्रु मराठे थे जिन्होंने दो शताब्दी से अधिक भारतीय इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया और मुगल साम्राज्य के पतन में विशेष रूप से सहयोग प्रदान किया। मराठा शक्ति को सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित करने तथा मराठा साम्राज्य का निर्माण करने में शिवाजी अवश्य सफल हुए किंतु यहाँ यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि यह भारतीय इतिहास विभिन्न परिस्थितियों का परिणाम था। इसको एक भिन्न अलग घटना स्वीकार नहीं किया जा सकता है। मराठा शक्ति के उत्थान में विभिन्न कारणों ने योगदान दिया और वह दिन प्रतिदिन अधिक बलवती बनती गई।

उक्त पंक्तियों में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि मराठों के उत्थान के विभिन्न कारण थे, जिनमें से मुख्य कारणों पर निम्न पंक्तियों में प्रकाश डाला जाएगा-

4.1.3.1. महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति

महाराष्ट्र प्रदेश विंध्य तथा सतपुड़ा पर्वतमाला से घिरा हुआ एक दुर्भेद्य प्रदेश था। प्रारंभ में महाराष्ट्र तीन पृथक भागों में विभक्त था- 1. विदर्भ (बरबर) प्रदेश 2. गोदावरी घाटी क्षेत्र तथा 3. कृष्णा घाटी का कोंकण प्रदेश। इसमें पश्चिमी तटवर्ती कोंकण प्रदेश भी सिम्मिलत था। महाराष्ट्र प्रदेश की सीमा की पृष्टि 534 ई. एहोल लेख से भी होती है। श्री देसाई के शब्दों में, ''इस प्रकार नर्मदा तथा ऊपरी कृष्णा के बीच का प्रदेश मुख्य महाराष्ट्र है, जिसमें मराठी भाषा बोली जाती है तथा जो एक समकोण त्रिभुज के रूप में है, जिसकी एक भुजा दमन से कारबार तक के समुद्र तट से बनती है, दूसरी ताप्ती नदी के तटवर्ती सीधी दमन से नागपुर तक जाती है तथा तीसरी एक रेखा है जो गोंदिया से बेलगाम, शीलापुर तथा बीदर होती हुई कारबार तक जाती है। महाराष्ट्र की सह्याद्रि पर्वत श्रेणी (पश्चिमी घाट) तथा समुद्र के बीच का प्रदेश (कोंकण) ऊबड़-खाबड़ तथा घने जंगलों से आवृत्त है जहाँ आवागमन के लिए केवल संकरी पगडंडियाँ मात्र हैं। इस तरह यह एक दुर्गम प्रदेश है।

पहाड़ी प्रदेश होने के कारण यहाँ दुर्जेय गढ़ी का निर्माण सुगम हुआ, जो मराठों की सुदृढ़ रक्षा पंक्ति का काम करते थे। महाराष्ट्र का कुछ भाग उर्वर तथा जलवायु स्वास्थ्यकर है। जैसा ग्रांट डफ का कथन है, ''महाराष्ट्र की घाटियाँ सिंचाई के साधनों से युक्त हैं, किंतु खेतीबाड़ी, मिट्टी और उपज में यह भारत के अन्य भागों की समता नहीं कर सकता।'' सैनिक दृष्टि से प्रदेश अद्वितीय है।

महाराष्ट्र की इस प्राकृतिक स्थित से यहाँ के निवासियों में विशेष मानव गुणों का प्रादुर्भाव हुआ तथा वे दुर्जेय योद्धाओं के रूप में उजागर हुए। सरदेसाई के कथनानुसार, ''पश्चिमी घाटी की इस दुर्जेय पर्वतमाला ने ही मराठों को इस योग्य बनाया कि वे मुसलमान विजेताओं के विरूद्ध विद्रोह कर सकें, मुगलों की सुसंगठित शक्ति के सामने अपनी राष्ट्रीयता को पुनः प्रदर्शित कर सकें और अपना साम्राज्य स्थापित कर सकें। महाराष्ट्र प्रदेश की प्राकृतिक स्थिति का मराठा स्वभाव पर प्रभाव का विश्लेषण करते हुए डॉ. जदुनाथ सरकार ने लिखा है, ''मराठों की स्वतंत्रता प्रियता तथा पृथकता की मनोवृत्ति को प्रकृति से अत्यधिक सहायता मिली, जिसके द्वारा उनको बने बनाए तथा संरक्षित गढ़ उपलब्ध हुए, जहाँ वे तुरंत भागकर शरण ले सकते थे तथा जहाँ से वे प्रबल प्रतिरोध कर सकते थे। उनके देश की जलवायु ने उनको फुर्तीला प्रतिरोधी, उग्र तथा उत्तम बना दिया। उनमें पर्वतीय जातियों के सभी गुण विद्यमान हैं। घने जंगलों, ढालू पहाड़ियों और दुर्गम गढ़ों ने उनमें वीरता के भाव भरे हैं। वे जन्म -जात घुड़सवार तथा साहसी होते हैं।'' ऐसी स्थिति में यदि उनमें 'स्वराज्य' स्थापित करने का उत्साह जगा और सफलतापूर्वक मुगल शक्ति का प्रतिरोध किया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, अपितु यह एक स्वाभाविक तथा सामयिक घटना समझी जानी चाहिए।

4.1.3.2. धार्मिक कीर्ति का अभाव

समस्त भारत में पंद्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में धार्मिक क्रांति हुई जिसमें महाराष्ट्र भी अछूता नहीं रहा, वरन् यह कह सकते हैं कि महाराष्ट्र की धार्मिक क्रांति का प्रभाव वहाँ के निवासी मराठों पर तीव्र गित से हुआ। इस क्रांति का श्रेय किसी एक वर्ग को प्राप्त नहीं, वरन् इस आंदोलन में साधारण जनता ने बड़ा सहयोग दिया। यह सर्वमान्य है कि राजनीतिक क्रांति के पूर्व धार्मिक तथा सामाजिक क्रांति का भी होना अनिवार्य है; क्योंकि इसके द्वारा समाज तथा धर्म के दोषों तथा उनके बाह्य आडंबरों का विरोध किया जाता है तथा उसके संगठन में इसका बड़ा महत्व रहता है। ज्ञानेश्वर, हेमाद और चक्रधर से लेकर एकनाथ, तुलाराम, रामदास तक समस्त संतों ने जिस भक्ति सिद्धांत पर महत्व दिया तथा जाति पाति के भेद-भाव के अंत करने का प्रचार किया उसके द्वारा समस्त महाराष्ट्र प्रदेश में एकता की भावना जागृत हुई और उनमें राष्ट्रीय चेतना उदय हुई। कुछ संतों ने जातियों की रक्षा के पाठ की शिक्षा भी प्रदान की।

4.1.3.3. स्थानीय संस्थाएँ

महाराष्ट्र की स्थानीय संस्थाओं का भी महाराष्ट्र के उत्थान में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ग्राम संस्थाओं पर विदेशी प्रभाव नहीं पड़ पाया। प्रत्येक गाँव में पंचायतों की व्यवस्था थी जो छोटे छोटे मामलों का निर्णय स्वयं करती थी। इस प्रकार स्वायत्त शासन की प्रथम इकाई इस प्रदेश में विद्यमान रही, जिसके कारण यहाँ के निवासी स्वतंत्रता प्रेमी रहे और उनको स्वतंत्रता बड़ी प्रिय रही।

4.1.3.4. मुसलमानों के विरोध की भूमिका

भारत में मुसलमानों का आगमन एक अभूतपूर्व घटना थी इसलिए नहीं कि एक योद्धा जाति के रूप में उन्होंने भारत में प्रवेश किया और यहाँ राज्य विस्तार किया। इनसे पूर्व भी भारत में अनेक विदेशी जातियाँ आई थी और यहाँ उन्होंने राज्य स्थापित किया था, परंतु मुसलमानों में धर्मांधता थी तथा वे हिंदू व हिंदू धर्म का विरोध कर इसको नष्ट करने पर तुल गए थे। उत्तरी भारत में वे हिंदुओं पर छा गए तथा हिंदू अपनी कमजोरियों के कारण जिनमें भौगोलिक अवरोध का अभाव भी एक कारण था, यह सब कुछ सहते चले गए, किंतु दक्षिण की स्थिति दूसरी थी। यहाँ के निवासियों ने मुसलमानों के इस धार्मिक अभियान और अत्याचारों का डटकर मुकाबला किया। मोहम्मद तुगलक ने प्रभावी ढंग से दक्षिणी प्रदेशों के दमन के उद्देश्य से देविगरी (दौलताबाद) को अपनी राजधानी बनाया, किंतू वह दुईमनीय मराठों को नियंत्रण में न ला सका। लोग प्राण होमते थे, किंतु अत्याचार के सम्मुख आत्मसमर्पण नहीं करते थे सिर टूटते थे किंतु झु कते नहीं थे। विरोध की भावना इतनी उग्र हुई कि साधुसंत भी मैदान में उतर आए। शृंगेरी मठ के तत्कालीन शंकराचार्य स्वामी माधवाचार्य ने सिक्रय भाग लिया तथा हरिहर और बुक्का नाम के दो भाईयों को, जो मोहम्मद तुगलक के आदेश से मुसलमान बन गए थे और जिन्हें हिंदुओं का विद्रोह शांत करने के लिए दक्षिण भेजा गया था, पुनः हिंदू धर्म में दीक्षित कर प्रसिद्ध विजयनगर राज्य की स्थापना कराई, जिसने दक्षिण में मुस्लिम प्रतिरोध का काम दिया। कापालिक, शैव मानभाव आदि धार्मिक संप्रदाय इस्लाम के विरोध में डट गए। मुसलमानों की हिंदू विरोधी नीति तथा अत्याचारों ने मराठों में प्रतिशोध की भावना जागृत की और वे दक्षिण में संगठित होकर शिवाजी के नेतृत्व में 'स्वराज्य' की स्थापना में जुट गए। सरदेसाई का यह मत सही है कि यदि बीजापुर के सुल्तान मोहम्मद आदिलशाह ने अपने पिता की सिहण्णुता की नीति का त्याग कर हिंदू मंदिरों को भ्रष्ट करने तथा धन-अपहरण के पुराने तरीकों को न अपनाया होता, तो संभव था कि शिवाजी स्वतंत्र राष्ट्र की स्थापना का कार्य अपने हाथ में न लेते। औरंगजेब द्वारा अकबर की सिहण्णता की नीति को त्याग कर हिंदुओं के दमन की नीति अपनाए जाने के कारण मराठा आंदोलन की आवश्यकता अनुभव की गई। फाल्टन के बाबा निम्बालकर को बीजापुर द्वारा बलात् मुसलमान बनाए जाने से मराठे भड़क उठे। धार्मिक नेताओं ने घूम-घूम कर हिंदू संगठन का बिगुल बजाया।'

4.1.3.5. दक्षिण के मुसलमानी राज्यों में हिंदुओं का प्रभाव

दिल्ली के सुल्तानों की दमनपूर्ण नीति ने दक्षिण में एक नई स्थिति को जन्म दिया। दक्षिण में विजयनगर के हिंदूराज्य की स्थापना हो चुकी थी। उसकी देखा-देखी महाराष्ट्र प्रदेश में भी प्रतिक्रिया हुई। विद्रोह दबाने के लिए मोहम्मद तुगलक ने जिस मुसलमान अधिकारी को भेजा, उसने स्वयं दिल्ली सल्तनत के विरूद्ध बगावत कर दी और दक्षिण में स्वतंत्र बहमनी राज्य की स्थापना कर दी। कुछ समय बाद वह राज्य पाँच स्वतंत्र राज्यों में विभक्त हो गया - 1. बीजापुर, 2. गोलकुंडा, 3 अहमदनगर, 4. बीदरनगर तथा 5. बरार। इनमें बीजापुर, गोलकुंडा तथा अहमदनगर शक्तिशाली हो गए। इन राज्यों के शासक यद्यपि मुसलमान थे, तथापि वे हिंदुओं के प्रति सिहष्णु थे तथा शासन कार्यों में मराठों का सहयोग लेते थे। श्री महादेव गोविंद रानाडे का कथन है कि शासन के विभागों में मराठा राजनीतिज्ञों तथा सैनिकों का नियंत्रण था तथा मुसलमान शासकों को उन पर निर्भर रहना पड़ता था। वे पर्वतीय दुर्ग मराठा सरदारों के हाथ में ही थे। मुसलमान शासकों का उन पर नाम मात्र का ही प्रभुत्व था। इस स्थिति ने मराठा-शासन के उदय का मार्ग प्रशस्त किया और शिवाजी को 'स्वराज्य' स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई। शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले स्वयं बीजापुर राज्य के एक उच्च पदाधिकारी थे जिससे उसके किलों पर अधिकार करने में शिवाजी का हौसला बढ़ा।

4.1.3.6. दक्षिण राज्यों में हिंदु ओं का महत्व

दिल्ली सल्तनत के कुछ महत्वपूर्ण सुल्तानों ने दक्षिण भारत को अपने प्रभाव में लाने का प्रयत्न किया, किंतु उनकी सफलता स्थायी नहीं हो सकी और कुछ समय के उपरांत उनकी शासन व्यवस्था के शिथिल होने पर दक्षिण में पुनः राजवंशों का उदय हुआ जिन्होंने स्वतंत्र राज्यों की स्थापना की। इस प्रकार दिक्षणी प्रदेशों पर मुसलमानी सभ्यता और संस्कृति का उतना अधिक प्रभाव नहीं हो पाया, जितना कि उत्तरी भारत के प्रदेशों पर हुआ। यद्यपि दिक्षण में मुसलमान बहमनी वंश की स्थापना अवश्य हुई, किंतु उस राज्य पर भी हिंदुओं का विशेष प्रभाव था। उनकी सेना में पर्याप्त हिंदू सिम्मिलत थे और उनको अपनी रक्षा के लिए उन पर निर्भर रहना अवश्यंभावी था। इनकी धार्मिक नीति उदार थी और हिंदुओं के साथ सद्व्यवहार था। दिक्षण के मुसलमान शासकों के हरम में हिंदू स्त्रियाँ थीं, जिनका शासकों पर बड़ा प्रभाव था। उन मुसलमानों का भी इन राज्यों में बड़ा प्रभाव था, जिन्होंने किसी विशेष कारणवश इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। उस समय की राजनीति में मराठों का विशिष्ठ स्थान था और वे उच्च पदों पर आसीन थे। मुरारी राय, मदन पंडित तथा राजराय परिवार के कई सदस्य गोलकुंडा राज्य में दीवान के पद पर आसीन रह चुके थे। मराठे राजनीति तथा कूटनीति में भी दक्ष थे और इसी कारण प्रायः मराठा पंडित ही राजदूतों के पद पर आसीन किए जाते थे।

4.1.3.7. दक्षिणी मुसलमान राज्यों की पतनावस्था

दिल्ली के मुगल सम्राटों की, विशेषकर औरंगजेब की नीति हिंदू विरोधी ही नहीं थी, वरन् दक्षिण की मुसलमान रियासतों की विरोधी भी थी। औरंगजेब इन रियासतों को पद्दलित करने के लिए हर संभव उपाय का सहारा ले रहा था। अहमदनगर की शक्ति को नष्ट कर वह बीजापुर और गोलकुंडा को विजित करने के लिए अग्रसर हुआ। इससे इन रियासतों की स्थिति दुर्बल होती गई तथा इनका पतन समीप आता दिखाई दिया। मराठों ने इस स्थिति से लाभ उठाया और अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया। इन राज्यों ने परस्पर संघर्षों में अपनी शक्ति को नष्ट किया। मराठे कभी किसी राज्य की तथा कभी किसी राज्य की सहायता करते थे। मुगलों ने अपनी कूटनीति से इन राज्यों को समय-समय पर आपस में भिड़ाया और अपना उल्लू सीधा किया। इन राज्यों की शक्ति क्षीण होती गई। मराठों ने ऐसी स्थिति में बहुत से दुर्ग अपने अधिकार में कर लिए और एक स्वतंत्र मराठा राज्य का स्वप्न साकार किया।

4.1.3.8. धार्मिक पृष्ठभूमि

मराठों के उत्थान में महाराष्ट्र के साधु संतों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मुसलमानों के दक्षिण की ओर पदार्पण के साथ ही महाराष्ट्र में हलचल मच गई तथा संतों ने जन-जागरण का बीड़ा उठाया। उन्होंने महाराष्ट्र के उत्थान के लिए आध्यात्मिक पृष्ठभूमि तैयार की। तेरहवीं शताब्दी में संत ज्ञानेश्वर ने अप्रत्यक्ष रूप से जन-मानस में उत्साह का संचार किया। इसी समय 'मानभाव' आंदोलन शुरू हुआ जिसने धर्म, समाज और राजनीति के क्षेत्र में क्रांति उत्पन्न कर दी। 'मानभाव' के मंच से स्वतंत्र विचारों को प्रोत्साहन दिया गया। इस आंदोलन का प्रधान नेता 'चक्रधर' था। उसने संपूर्ण महाराष्ट्र का भ्रमण किया तथा व्यवहार व आदर्श के बीच की असंगति को दूर किया। अनुशासन पर उसने विशेष बल दिया। शीघ्र ही उसके अनुयायियों की संख्या बढ़ गई। तब उसने महाराष्ट्र की सीमा लांघकर उत्तर में सिंधु नदी के क्षेत्र तक अपने आंदोलन का विस्तार किया। 'मानभाव' आंदोलन द्वारा अंधविश्वास, जात-पात व ऊँच-नीच की भावना तथा अस्पृश्यता का खुलकर विरोध किया गया। इस आंदोलन में स्त्रियों को भी धर्म प्रचार के लिए शामिल किया गया। मानभाव आंदोलन ने सामाजिक समानता पर बल दिया। 15वीं व 16वीं शताब्दी में भी धार्मिक आंदोलनों द्वारा समाज-सुधार की परंपरा चालू रही। संत तुकाराम रामदास, ब्रह्मेन्द्र स्वामी, वामन पंडित आदि ने अपने उपदेशों द्वारा महाराष्ट्र में प्राण फूँक दिए तथा महाराष्ट्र का कोना-कोना इस धार्मिक शंखनाद से गूँज उठा। जैसा कि रानाडे का विचार है, यह आंदोलन यूरोप के प्रोटेस्टेंट आंदोलन के समान था, जिसके द्वारा धार्मिक, सामाजिक तथा साहित्यक पुनर्जागरण हुआ तथा

सुधार की लहर दौड़ पड़ी। इस आंदोलन द्वारा सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध विद्रोह के साथ ही हृदय की पिवत्रता तथा पारस्परिक स्नेह का प्रचार भी किया गया। श्री रानाडे के कथनानुसार ''यह धार्मिक पुनर्जागरण किसी वर्ग विशेष का न होकर जन-आंदोलन था। इसके पीछे संत और मनीषी किव तथा दार्शिनिक थे जो मुख्यतः समाज के निम्न वर्ग से थे। तुकाराम, रामदास, वामन पंडित मराठा जनमानस पर छा गए।'' हिंदू एकता की भावना स्थापित करने के लिए स्थान-स्थान पर मेले लगने लगे। पंढारपुर धार्मिक क्रांति का केंद्र बन गया तथा विठोबा के लिए महाराष्ट्र की जनता को एकता के सूत्र में पिरोया गया। इससे मराठों के राजनीतिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त हुआ, क्योंकि इससे मराठों में राष्ट्रीय एकता का संचार हुआ।

4.1.3.9. राजनीतिक स्थिति

दक्षिण की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति ने भी मराठों के उत्थान में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। अहमदनगर पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। बीजापुर राज्य पर मुगलों के आक्रमण निरंतर हो रहे थे और इन आक्रमणों के कारण उसकी दशा बड़ी शोचनीय हो रही थी। बीदर तथा बरार के राज्यों का पहले से ही अंत हो चुका था। गोलकुंडा ने अतुल धन देकर कुछ समय तक अपनी रक्षा की, किंतु औरंगजेब की साम्राज्यवादी नीति के कारण वह भी अपनी अंतिम साँस लेने लगा था। पुर्तगालियों की दशा शोचनीय थी। उनके पास अपनी रक्षा के लिए पर्याप्त साधनों का अभाव था। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी का शैशव काल था और उनमें अधिक शक्ति नहीं थी। इस प्रकार यह कहना सत्य है कि मराठों को उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ और अब दक्षिण में उनकी शक्ति का उत्थान रोकना असंभव था।

4.1.3.10. औरंगजेब की धार्मिक नीति

औरंगजेब की धार्मिक नीति के कारण मराठों को अपना संगठन बनाने का अवसर प्राप्त हुआ तथा वे अपने प्रदेश की रक्षा के लिए संगठित रूप से खड़े हुए। औरंगजेब की नीति ने मुसलमानी राज्यों का अंत कर डाला और दक्षिण में मराठों का सामना करने के लिए कोई भी शक्ति शेष नहीं रही।

4.1.3.11. मराठी भाषा तथा साहित्य

जिस प्रकार भारत के अन्य भागों में प्रादेशिक भाषाओं का प्रादुर्भाव हुआ, उसी प्रकार महाराष्ट्र में भी यह भाषा 'मराठी' कहलाई। ''इसका क्षेत्र एक समय उत्तर में मालवा तथा राजस्थान की सीमाओं से लेकर दक्षिण में कृष्णा व तुंगभद्रा तक विस्तृत था।'' मराठी भाषा तथा साहित्य ने महाराष्ट्र के लोगों को एकता के सूत्र में बाँधने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तुकाराम, रामदास, वामन पंडित आदि के भिक्त गीत तथा नीति वचन मराठी भाषा-भाषियों के प्रत्येक घर में गाए जाते थे। श्रीधर की पोथी का पाठ गाँव-गाँव में होता था और धार्मिक वृत्ति का मराठा बड़ी तन्मयता के साथ भाव-विभोर होकर इसको सुनता था। प्रारंभिक मराठा समाज की सादगी तथा एकरूपता मराठी भाषा में भी प्रतिबिंबित हुई। मराठी गीतों ने जनमानस को निकटता से स्पर्श किया। गोंधाली गायक समूचे महाराष्ट्र के गाँव-गाँव में भ्रमण कर जनता को गाथाएँ सुना-सुनाकर मंत्रमुग्ध करते थे तथा अपनी जाति के गौरव से अद्भूत करते थे। इसका हवाला देते हुए सरदेसाई कहते हैं कि ''संपूर्ण देश में एक नवीन राष्ट्रीय जीवन की धारा प्रवाहित होने लगी।' जदुनाथ सरकार के शब्दों में - ''शिवाजी द्वारा राजनीतिक एकता स्थापित होने से पूर्व ही महाराष्ट्र में 17 वीं शताब्दी में भाषा, नस्ल और जीवन में एकता स्थापित हो गई थी जो कुछ थोड़ी बहुत कमी थी, वह शिवाजी द्वारा पूरी कर दी गई।''

4.1.3.12. भोंसले परिवार का योगदान

शिवाजी के पिता का नाम शाहजी भोंसले था। वे अपने को मेवाड़ के सिसोदिया वंश का मानते थे। इनका जन्म 15 मार्च, सन् 1594 ई. में हुआ था। सन् 1605 ई. में इनका विवाह जीजाबाई के साथ संपन्न हुआ। अपने पिता की मृत्यु के उपरांत सन्1620 ई. में शाहजी ने निजामशाही वंश की सेवा करना आरंभ कर दिया और कुछ ही समय बाद अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के कारण उनके मान तथा प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हुई और ये मलिक अंबर के दाहिने हाथ समझे जाने लगे। कुछ विशेष कारणों से मलिक अंबर से इनकी अनबन हो गई और इनको बाध्य होकर आदिलशाह वंश की सेवा करनी पड़ी, किंतु मलिक अंबर की मृत्यु के उपरांत ये पुनः निजामशाही वंश की सेवा में आ गये। जब निजामशाह ने मराठों के साथ विश्वासघात करना आरंभ कर दिया तो मराठो में उसके विरूद्ध असंतोष की अग्नि प्रज्वलित हुई और शाहजी ने उसके विरुद्ध मुगलों का समर्थन करना आरंभ कर दिया, किंतु यह अवस्था अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकी। महावत खां के आक्रमण के समय शाहजी ने फिर निजामशाही वंश की सेवा करना आरंभ कर दिया और अहमदनगर की रक्षा के लिए उसने गोलकुंडा और बीजापूर के शासकों का सहयोग प्राप्त किया। जिस समय शाहजहाँ ने अहमदनगर का अंत करने के लिए तीन ओर से आक्रमण किया और बीजापुर एवं गोलकुंडा को अपनी ओर मिला लिया तो शाहजी को बड़ी भीषण आपत्ति का सामना करना पड़ा। अहमदनगर के पतन के उपरांत शाहजी ने सन् 1636 ई. में आदिलशाही वंश की सेवा करना आरंभ किया। उन्होंने कर्नाटक की विजय में आदिलशाह वंश को बड़ा सहयोग किया। वे बैंगलोर में निवास करने लगे। इधर उनके योग्य तथा कर्मठ पुत्र शिवाजी ने बीजापुर के कुछ दुर्गों को अपने अधिकार में करने का कार्य आरंभ किया, जिसके कारण बीजापुर का सुल्तान उनको तथा उनके पुत्र को संदेहात्मक दृष्टि से देखने लगा। सन् 1648 ई. में शाहजी बंदी बना लिए गए, किंतु आठ मास के उपरांत वे बंदीगृह से मुक्त कर दिए गए। सन् 1664 ई. में घोड़े से गिरकर उनकी मृत्यु हुई। उनकी सेवाएँ दक्षिण के लिए बड़ी महत्वपूर्ण थी। उनको जीवन भर मुगलों का सामना करना पड़ा। उन्होने मराठा संस्कृति के प्रचार में बड़ा सक्रिय भाग लिया। दक्षिण की राजनीति में उनका प्रमुख हाथ था।

4.1.3.13. शिवाजी का नेतृत्व

शिवाजी स्वयं प्रेरणा का स्रोत थे। उनकी वंश तथा राजत्व की परंपरा ने मराठा शक्ति के उदय में गित तथा सुविधा प्रदान की। शिवाजी की माता जीजाबाई जाधवों के उच्च कुल से थी तथा उन्होंने अपने पिता का राजकीय वैभव देखा था। उनमें राजकीय गौरव विद्यमान था। शिवाजी के पिता शाहजी का जीवन विजय नगर राज्य की भूमिका से अनुप्राणित था। विजयनगर राज्य का प्रभा व महाराष्ट्र पर भी पड़ा। विजय नगर के शासकों के साम्राज्य विस्तार की कहानियों ने मराठों में भी हिंदू राज्य स्थापित करने की भावना जागृत की। शिवाजी के पिता शाहजी ने अपने जीवन भर विजय नगर साम्राज्य के क्षेत्र में ही कार्य किया था। शिवाजी के गुरू कोण्डदेव तथा रामदास ने उनमें वीरता, निर्भीकता तथा स्वाधीनता की भावना कूट-कूट कर भर दी थी।

उपर्युक्त सभी परिस्थितियों ने शिवाजी के नेतृत्व में मराठा शक्ति के उदय में सहायता की।

4.1.4. सारांश

मराठा शक्ति का उत्कर्ष के कारण

- (1) महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति
- (3) स्थानीय संस्थाएँ

- (2) धार्मिक कीर्ति का अभाव
- (4) मुसलमानों के विरोध की भूमिका

- (5) दक्षिण के मुसलमानी राज्यों में हिंदू प्रभाव
- (7) दक्षिणी मुसलमान राज्यों की पतनावस्था
- (9) राजनीतिक स्थिति
- (11) मराठी भाषा तथा साहित्य
- (13) शिवाजी का नेतृत्व

- (6) दक्षिण राज्यों में हिंदुओं का महत्व
- (8) धार्मिक पृष्ठभूमि
- (10) औरंगजेब की धार्मिक नीति
- (12) भोंसले परिवार का योगदान

4.1.5. बोध प्रश्न

4.1.5.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

- 1. मराठा से आप क्या समझते हैं?
- 2. महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
- 3. महाराष्ट्र की धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
- 4. 17 वीं सदी में महाराष्ट्र की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
- 5. भोंसले परिवार के विषय में आप क्या जानते हैं?

4.1.5.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- 1. मराठों के उत्कर्ष के कारणों का वर्णन कीजिए।
- 2. 17वीं सदी में दक्षिण भारत में मुस्लिमों की स्थिति की विवेचना कीजिए।
- 3. मराठी भाषा और साहित्य का मराठों के उत्थान में योगदान का वर्णन कीजिए।
- 4. मराठों के उत्थान में शिवाजी के योगदान का वर्णन कीजिए।
- 5. 17वीं सदी में महाराष्ट्र की स्थानीय संस्थाओं का वर्णन कीजिए।

4.1.6. संदर्भ-ग्रंथ

- 1. म. गो. रानाडे: मराठा शक्ति का उदय
- 2. सरदेसाई: मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, 2 एवं 3
- 3. ग्रांट डफ: मराठों का नवीन इतिहास
- 4. जदुनाथ सरकार : शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स

खंड-4 : मराठा साम्राज्य का उदय व विस्तार इकाई-2 : शिवाजी

इकाई की रूपरेखा

- 4.2.1. उद्देश्य
- 4.2.2. प्रस्तावना
- 4.2.3. शिवाजी का प्रथम काल (1627 ई. से 1665 ई. तक)
 - 4.2.3.1. जन्म तथा बाल्यकाल
 - 4.2.3.2. शिक्षा
 - 4.2.3.3. धार्मिक गुरुओं का प्रभाव
 - 4.2.3.4. शिवाजी की प्रारंभिक विजय यात्रा
- 4.2.4. शिवाजी का द्वितीय काल (1665 ई. से 1674 ई. तक)
 - 4.2.4.1. शिवाजी और शाइस्ता खाँ
 - 4.2.4.2. सूरत की प्रथम लूट
 - 4.2.4.3. शिवाजी और जयसिंह
 - 4.2.4.4. पुरंदर की संधि
 - 4.2.4.5. शिवाजी की आगरा यात्रा
 - 4.2.4.6. शिवाजी की मुक्ति
 - 4.2.4.7. मुगलों के साथ पुनः संघर्ष
- 4.2.5. शिवाजी का तृतीय काल (1674 ई. से 1680 ई. तक)
 - 4.2.5.1. शिवाजी का राज्याभिषेक
 - 4.2.5.2. शिवाजी की विजय यात्रा
 - 4.2.5.3. जंजीरा का सिद्दियों से संघर्ष
 - 4.2.5.4. कर्नाटक की विजय
 - 4.2.5.5. शिवाजी के अंतिम दिवस और मृत्यु
- 4.2.6. शिवाजी की शासन व्यवस्था
 - 4.2.6.1. केंद्रीय शासन
 - 4.2.6.2. प्रांतीय शासन
 - 4.2.6.3. स्थानीय शासन
 - 4.2.6.4. सैनिक व्यवस्था
 - 4.2.6.5. आर्थिक प्रबंध तथा राजस्व
 - 4.2.6.6. चैथ और सरदेशमुखी
- 4.2.7. सारांश
- 4.2.8. बोध प्रश्न
 - 4.2.8.1. लघु उत्तरीय प्रश्न
 - 4.2.8.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
- 4.2.9. संदर्भग्रंथसूची

4.2.1. उद्देश्य

मध्यकालीन भारत में शिवाजी का प्रमुख स्थान है। वे एक राष्ट्र निर्माता तथा स्वराज्य संस्थापक थे। उन्होंने इन दोनों कार्यों के लिए जीवन पर्यंत घोर परिश्रम किया और अनेक आपत्तियों तथा विपत्तियों का सामना अदम्य उत्साह और साहस के साथ किया। उनकी सेवाएँ दक्षिण के लिए बड़ी महत्वपूर्ण थीं। उनको जीवन भर मुगलों का सामना करना पड़ा। उन्होंने मराठा संस्कृति के प्रचार में बड़ा सिक्रय भाग लिया। दिक्षण की राजनीति में उनका प्रमुख हाथ था। इस इकाई का उद्देश्य शिवाजी की राजनीतिक एवं अन्य उपलिब्धयों पर प्रकाश डालना है।

4.2.2. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में शिवाजी की राजनीतिक एवं अन्य उपलिब्धियों की विस्तृत विवेचना की जाना प्रस्तावित है।

भोंसले परिवार का परिचय

शिवाजी के पिता का नाम शाहजी भोंसले था। वे अपने को मेवाड़ के सिसोदिया वंश का मानते थे। इनका जन्म 15 मार्च, सन् 1594 ई. में हुआ था। सन् 1605 ई. में इनका विवाह जीजाबाई के साथ संपन्न हुआ। अपने पिता की मृत्यु के उपरांत सन्1620 ई. में शाहजी ने निजामशाही वंश की सेवा करना आरंभ कर दिया और कुछ ही समय बाद अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के कारण उनके मान तथा प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हुई और ये मिलक अंबर के दाहिने हाथ समझे जाने लगे। कुछ विशेष कारणों से मिलक अंबर से इनकी अनबन हो गई और इनको बाध्य होकर आदिलशाही वंश की सेवा करनी पड़ी, किंतु मिलक अंबर की मृत्यु के उपरांत ये पुनः निजामशाही वंश की सेवा में आ गए। इधर उनके योग्य तथा कर्मठ पुत्र शिवाजी ने बीजापुर के कुछ दुर्गों को अपने अधिकार में करने का कार्य आरंभ किया, जिसके कारण बीजापुर का सुल्तान उनको तथा उनके पुत्र को संदेहात्मक दृष्टि से देखने लगा। सन् 1648 ई. में शाहजी बंदी बना लिए गए, किंतु आठ मास के उपरांत वे बंदीगृह से मुक्त कर दिए गए। सन्1668 ई. में घोड़े से गिरकर उनकी मृत्यु हुई।

4.2.3. शिवाजी का प्रथम काल (1627 ई. से 1665 ई. तक)

4.2.3.1. जन्म तथा बाल्यकाल

शिवाजी की जन्मतिथि के संबंध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वानों ने इनकी जन्म-तिथि 20 अप्रैल, 1627 बतलाई है और कुछ के अनुसार 9 मार्च, 1630 ई. है। उनका जन्म शिवनेर के पहाड़ी दुर्ग में हुआ। उनके पिता का नाम शाहजी भोंसले था और माता का नाम जीजाबाई था, जो लखोजी जाधव राव की पुत्री थी। शाहजी अपनी नई पत्नी के साथ अपनी नई जागीर में चले गए और वे अपने पुत्र तथा प्रथम पत्नी जीजाबाई को ब्राह्मण दादाजी कोणदेव के संरक्षण में पूना छोड़ गए। इस प्रकार शेरशाह के समान शिवाजी भी पर्याप्त समय तक अपने जन्म के उपरांत अपने पिता से अनिभन्न रहे। इस प्रकार शिवाजी पर उनकी माता तथा गुरु दादाजी कोणदेव का बड़ा प्रभाव पड़ा। उनकी माताजी ने उनको रामायण तथा महाभारत के नायकों के कार्यों का वर्णन कहाँनियों के रूप में सुनाया जिनका शिवाजी पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और उन्होंने भी उनके समान ही अपना जीवन व्यतीत करने का संकल्प किया। उनके हृदय में हिंदू धर्म तथा गौ, ब्राह्मण आदि के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। अतः यह मानवीय है कि जैसे

अन्य व्यक्तियों के संबंध में वैसे ही शिवाजी में विशिष्टगुणों का समावेश करने का श्रेय उसकी माता जीजाबाई को प्राप्त था।

4.2.3.2. शिक्षा

शिवाजी को साहित्यिक शिक्षा उसी प्रकार प्राप्त नहीं हुई जिस प्रकार हैदरअली अथवा रणजीत सिंह को प्राप्त नहीं हो पाई थी। उनके गुरू दादाजी कोणदेव ने उनको घुड़सवारी शस्त्रविद्या तथा आखेट करना सिखलाया। इसके अतिरिक्त शासन-प्रबंध को सुचारू रूप से चलाने की शिक्षा भी उनको प्राप्त हुई। दादाजी की गणना उच्च-कोटि के प्रबंध-कर्ताओं में की जाती है। इस प्रकार माता जीजाबाई तथा दादा कोणदेव के प्रभाव के कारण उनमें वे समस्त गुण विद्यमान हुए जिनसे वे राष्ट्र का निर्माण कर सके और स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर हिंदूधर्म, गौ, ब्राह्मण, आदि की रक्षा करने में सफल हो सके।

4.2.3.3. धार्मिक गुरुओं का प्रभाव

शिवाजी पर धार्मिक गुरुओं का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। वे संत तुकाराम तथा संत रामदास से बहुत अधिक प्रभावित हुए और उनको अपना वास्तिवक धार्मिक गुरू मानते थे। रामदास की शिक्षाओं द्वारा ही उनमें जाति तथा धर्म-प्रेम की भावना का उदय विशिष्ट रूप से हुआ और अपना जीवन इसके लिए उत्सर्ग कर दिया।

4.2.3.4. शिवाजी की प्रारंभिक विजय यात्रा

शिवाजी को जनता से संबंध स्थापित करने का अवसर सन् 1640 ई. के उपरांत प्राप्त हुआ जब वे बंगलौर की यात्रा कर महाराष्ट्र वापस आए। इससे पूर्व भी वे दादा कोणदेव के साथ सार्वजिनक कार्यों में भाग लेते रहते थे। उन्होंने मवाल नवयुवकों से घिनष्ठ संबंध की स्थापना की जिन्होंने शिवाजी के साथ अनेक साहसपूर्ण कार्य किए। प्रारंभ में उन्होंने अपनी जागीर की उचित व्यवस्था की जहाँ अराजकता का साम्राज्य था। उन्होंने दुष्ट व्यक्तियों को कठोर दंड दिया और अपनी समस्त जागीर में शांति की स्थापना की। उन्होंने कृषि को प्रोत्साहन दिया। इसके पश्चात् उन्होंने आस-पास के दुर्गों पर अधिकार करना भी आरंभ किया।

- (1) मवालों की आठ घाटियाँ- सर्वप्रथम शिवाजी ने मवालों की आठ घाटियों को अधिकार में किया।
- (2) सिंहगढ़ का अधिकार- सन् 1644 ई. में सिंहगढ़ के प्रसिद्ध दुर्ग पर शिवाजी का अधिकार हो गया और उन्होंने बीजापुर के विरुद्ध युद्ध करनाआरंभ किया।
- (3) **रोहिंदा पर अधिकार** इसी वर्ष उन्होंने रोहिंदा के दुर्ग पर अधिकार स्थापित किया और रायगढ़ के दुर्ग का निर्माण करवाया।
- (4) चकन पर अधिकार- उन्होंने शीघ्र ही चकन के दुर्ग को अपने अधिकार में किया।
- (5) तोरण पर अधिकार- सन् 1646 ई. में शिवाजी तोरण के दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित किया। यहाँ से शिवाजी को बहुत अधिक धन प्राप्त हुआ।
- (6) पुरंदर पर अधिकार- इन विजयों के कारण शिवाजी का उत्साह बहुत अधिक बढ़ गया और उन्होंने पुरंदर के प्रसिद्ध दुर्ग को अपने अधिकार में करने की योजना बनाई। इस दुर्ग पर बीजापुर का अधि कार था और इसका अधिकारी मरहठा सरदार मेंनीलो नीलकंड था। सन् 1658 ई. में शिवाजी ने बड़ी योग्यता तथा चालाकी से दुर्ग पर अधिकार किया। इस दुर्ग पर अधिकार स्थापित होने से शिवाजी का महत्व बहुत बढ़ गया और बीजापुर राज्य में खलबली मच गई। बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी के पिता शाहजी को बंदी कर लिया। शिवाजी ने जब मुगलों की सहायता बीजापुर के विरुद्ध करने की घोषणा की तो बाध्य होकर शाहजी को मुक्त कर दिया गया।

- (7) सूपा पर अधिकार- कुछ समय तक शिवाजी शांत रहे, किंतु फिर उन्होंने अपना कार्य आरंभ कर दिया और सूपा के दुर्ग पर अधिकार किया। इस प्रकार लगभग दस वर्षों के अंतर्गत शिवाजी का अधिकार अपनी जागीर के आस-पास के प्रदेशों के दुर्गों पर हो गया। शिवाजी ने इन समस्त प्रदेशों की उचित व्यवस्था की ओर ध्यान दिया।
- (8) जावली-विजय- कुछ समय तक शांत रहने के उपरांत में उनका ध्यम जावली की ओर आकर्षित हुआ, जो सतारा जिले की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर स्थित था। इस पर मरहठा सरदार चन्द्रराव का आधिपत्य था, जो शिवाजी के प्रभाव के विस्तार को रोकने का प्रयत्न कर रहा था। शिवाजी ने उससे 'मुक्ति, पाने के अभिप्राय से एक षड़यंत्र रचा। उसका वध कराया गया और शीघ्र ही शिवाजी ने आक्रमण कर खुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित किया। कुछ समय उपरांत उनका बरी पर अधिकार हो गया और इस प्रकार समस्त जावली प्रदेश उनके हाथ में आ गया। जावली-विजय के संबंध में यदुनाथ सरकार का कथन है कि 'शिवाजी की जावली-विजय जान-बूझकर की गई हत्या एवं संगठित छल-कपट का परिणाम था। उस समय उनकी शक्ति अल्प थी और वह अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए विवेकपूर्ण साधनों को नहीं अपना सके। उनके जीवन की इस घटना में प्रकाश की केवल एक ही किरण है कि उन्होंने जो अपराध किया वह पाखंड या लोक दिखावे के लिए नहीं किया। उन्होंने इस बात की डींग नहीं मारी कि तीन मोरे सदस्यों की हत्या हिंदू 'स्वराज्य' की भावना से की अथवा उस विश्वासघाती शत्रु को अपने मार्ग से हटाने के लिए की गई थी, जिसने उनकी उदार सरलता का अनेक बार दुरुपयोग किया था।"

जावली विजय का महत्व

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के शब्दों में, ''जावली की विजय शिवाजी के जीवन में एक उल्लेखनीय घटना थी, क्योंकि इस विजय के बाद उनके राज्य के दक्षिण-पश्चिम में विस्तार के लिए द्वार खुल गए थे। दूसरे इस विजय से इनकी सैनिक-शक्ति बहुत बढ़ गई, क्योंकि सेना के कई हजार पैदल मावले सिपाही अब उनकी सेना में भर्ती हो गए। जावली के मिल जाने से शिवाजी मालवा-प्रदेश के स्वामी बन गए। यह प्रदेश सेना में भर्ती के लिए बहुत ही उपयुक्त स्थान था। तीसरे, शिवाजी के हाथ वह खजाना लग गया, जो मोरो ने कई पीढ़ी से जमा कर रखा था।"

- (9) मुगलों के साथ प्रथम संघर्ष- मुगलों से शिवाजी का प्रथम संघर्ष सन् 1657 ई. में हुआ, जब मुगल-साम्राज्य के दक्षिणी वायसराय औरंगजेब ने बीजापुर राज्य पर आक्रमण किया। शिवाजी ने इस अवसर का लाभ उठाना चाहा और कुछ शर्तों पर उन्होंने अपनी सेवाएँ मुगलों को समर्पित करनी चाहीं, किंतु जब मुगलों ने उनकी शर्त मानने से इन्कार कर दिया तो उन्होंने चुनार और अहमदनगर के मुगल जिलों को लूटना आरंभ कर दिया। बाद में यहाँ से शिवाजी को पर्याप्त धन प्राप्त हुआ। औरंगेजब नेमरहठों को इन प्रदेशों से निकाल दिया। कुछ समय पश्चात बीजापुर के सुल्तान ने मुगलों की अधीनता स्वीकार की तो शिवाजी को भी अपने कार्य स्थिगत करने पड़े। उन्होंने भी मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली, किंतु इससे औरंगजेब को संतोष नहीं हुआ। वह शिवाजी की शक्ति का अंत करने के लिए सिक्रय कदम उठाना चाहता था, किंतु शाहजहाँ की बीमारी का समाचार प्राप्त होने के कारण उसको उत्तरी भारत को पलायन करना अनिवार्य हो गया और दक्षिण की स्थिति पूर्ववत् हो गई।
- (10) कोंकण की विजय- उत्तरी भारत में शाहजहाँ के पुत्रों के मध्य उत्तराधिकार युद्ध होने के कारण शिवाजी को अपने राज्य का विस्तार करने का उपर्युक्त अवसर प्राप्त हुआ। उसने शीघ्र ही जंजीरा के सिद्दियों पर आक्रमण किया, जहाँ उनको सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् 1647 ई. के अंत में उन्होंने कोंकण

पर आक्रमण कर कल्याण तथा भिवन्दी के दुर्गों को अपने अधिकार में किया और शीघ्र ही उन्होंने दक्षिण कोंकण पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार संपूर्ण कोंकण पर उसका अधिकार हो गया।

(11) मराठे और बीजापुर

- (i) अफजल खाँ की मृत्यु- शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर बीजापुर राज्य भयभीत हो गया। मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु होने पर उसका अल्पव्यस्क पुत्र अली आदिलशाह बीजापुर के राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। राज्य का समस्त कार्य उसकी माता करती थी। उसने शिवाजी के पिता शाहजी को लिखा कि वह अपने पुत्र पर नियंत्रण रखे, किंतु उसने स्पष्ट कह दिया कि उसके ऊपर उनका कोई नियंत्रण नहीं है। इस परिस्थिति के उत्पन्न होने पर बीजापुर की ओर से शिवाजी के दमन कार्य पर विचार होने लगा। अफजल खाँ ने यह कार्य अपने ऊपर लिया और यह घोषणा की कि वह शिवाजी को बिना अपने घोडे से उतरे ही बंदी बनाकर राजदरबार में उपस्थित करेगा। अफजल खाँ एक विशाल सेना को लेकर 'जिसमें 12,000 सैनिक थे', शिवाजी का दमन करने के अभिप्राय से चल पड़ा। शिवाजी को भयभीत करने के उद्देश्य से वह मार्ग में दुर्गों तथा मंदिरों को नष्ट-भ्रष्ट करता हुआ मरहठा प्रदेश में घुस गया। जब उसको यह समाचार प्राप्त हुआ कि शिवाजी जावली के जंगलो में प्रतापगढ़ में हैं तो अफजल खाँ शिवाजी के विरुद्ध सीधी कार्यवाही अपने हित में नहीं समझी तो उसने छल से शिवाजी पर अधिकार करने का निश्चय किया। उसने शिवाजी के पास कृष्णजी भास्कर को अपना दूत बनाकर भेजा और उसको बुला कर लाने की प्रार्थना की। इस पर शिवाजी ने अपना दूत पंतजी गोपीनाथ को अफजल खाँ के विचार जानने के लिए भेजा। उसको अफजल खाँ के उद्देश्य का पता लग गया। अंत में दोनों में मुलाकात होनी निश्चय हुई। एक पंडाल में दोनों की मुलाकात हुई। दोनों के साथ केवल दो-दो शस्त्राधारी सैनिक थे। शिवाजी ने पंडाल में पहुँचकर सलाम किया और अफजल खाँ ने उसको गले लगाया। उसने शिवाजी का गला दबाया और खंजर से उनके प्राण लेने का प्रयत्न किया, किंतु लोहे के कवच के कारण जिसको शिवाजी ने पहन रखा था उनके प्राण बच गए। शिवाजी ने शीघ्र ही बाघनख से अफजल खाँ पर आक्रमण कर उसकी आतें निकाल लीं और बिछवे को अफजल खाँ की कोख में घुसेड़ दिया। अफजल खाँ घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और कुछ समय के उपरांत उसकी मृत्यु हो गई
- (ii) पन्हाला तक शिवाजी की धाक- ऐसा होने पर चारों ओर भगदड़ मच गई और अफजल खाँ की सेना में खलबली मच गई। शिवाजी की सेना ने अफजल खाँ की छिपी हुई सेना पर आक्रमण किया और उनको बुरी तरह परास्त किया। बीजापुर के सरदार तथा अफजल खाँ के पुत्रों को अपनी जान बचाकर भागना पड़ा। इस विजय से शिवाजी का उत्साह बहुत बढ़ गया और उसने पन्हाला तक के दक्षिण के प्रदेश को अपने अधिकार में किया।
- (iii) बीजापुर से युद्ध तथा अपनी रक्षा- बीजापुर का सुल्तान अपनी पराजय का समाचार सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ। उसने शिवाजी को उनके कार्यों का दंड देने के लिए एक और सेना भेजी। शिवाजी ने इस सेना को भी परास्त किया और शीघ्र ही वह बीजापुर की ओर बढ़ गए। उनका सामना करने के उद्देश्य से बीजापुर की तीसरी सेना जुलाई 1680 ई. सिद्दि में जौहर के नेतृत्व में आई। उसने पन्हाला का घेरा डाला जहाँ शिवाजी अपनी सेना के साथ पड़ाव डाले था। "इस आपित्त के समय शिवाजी के सेनापित बाजी प्रभु ने अपनी अपूर्व स्वामी-भित्त का परिचय दिया। वह एक सहस्त्र मावली सैनिकों के साथ एक संकीर्ण मार्ग पर जिसे मरहठा इतिहास का थरमापोली कह सकते हैं नौ घंटे तक शत्रु सेना के साथ संर्घ्न करता रहा और उसकी गित को अवरुद्ध किए रहा। इस बीच में अवसर पाकर शिवाजी पन्हाला से रधना की ओर चले गए।"

- (iv) बीजापुर में संधि बीजापुर का सुल्तान बड़ा क्रोधित हुआ और उसने स्वयं शिवाजी का दमन करने का निश्चय किया। वह स्वयं सेना लेकर शिवाजी का दमन करने के लिए चल पड़ा, किंतु उसको अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त नहीं हुई। अंत में शिवाजी के पिता शाहजी ने मध्यस्थ बनकर दोनों के बीच एक संधि करवाई, जिसमें यह निश्चय हुआ, कि वे समस्त प्रदेश शिवाजी के अधिकार में रहें जिनको उसने विजय द्वारा लिया है और अब वह बीजापुर के अन्य प्रदेशों को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न नहीं करेगें और न बीजापुर के राज्य पर आक्रमण करेगें।
- (v) बीजापुर से युद्ध तथा संधि जब शिवाजी का संघर्ष मुगलों से होना आरंभ हुआ तो बीजापुर के सुल्तान ने संधि की शर्तों की अवहेलना कर डाली। इस पर शिवाजी ने बीजापुर की सेना को बुरी तरह परास्त किया। बाद में जब मुगलों ने बीजापुर का घेरा डाला तो बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी से सहायता माँगी। शिवाजी उसकी सहायता करने को तैयार हो गए और उन्होंने मुगलों को पीछे से तंग करना आरंभ कर दिया। मुगलों को बीजापुर का घेरा उठाना पड़ा।
- (vi) क्या शिवाजी ने अफजल खाँ को धोखे से मारा?- यह प्रश्न बड़ा ही विवादाग्रस्त है। समस्त फारस के इतिहासकारों ने जिनमें खफी खाँ विशेष उल्लेखनीय हैं शिवाजी पर अफजल खाँ के साथ छल और कपट करने का आरोप लगाया है। ग्रांटडफ और अन्य यूरोपियन इतिहासकार भी इसी मत का समर्थन करते हैं और शिवाजी को ही दोषी बतलाते हैं, परंतु मरहठा इतिहासकार तथा आधुनिक इतिहासकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि शिवाजी ने अफजल खाँ के साथ विश्वासघात नहीं किया और न उन्होंने उसको धोखे से मारा। इस विषय में सर यदुनाथ सरकार का कथन है कि "प्राचीन मरहठा लेखक इस बात का अनुमोदन करते हैं कि प्रथम प्रहार अफजल खाँ ने किया था।" इस संबंध मेंडाॅ. ईश्वरी प्रसाद का मत है कि "शिवाजी ने अपनी रक्षा 'प्रथम' वाली नीति का पालन किया और शत्रु की सारी आयोजना को उसकी हत्या कर विफल कर डाला।" आर. सी. मजूमदार आदि विद्धान लेखकों की यह धारणा है कि "उसने यह कार्य आत्म-रक्षा के लिए किया था।" अंग्रेज कोटियों के लेखों से भी यही तथ्य सिद्ध होता है।

4.2.4. शिवाजी का द्वितीय काल (1665 ई. से 1674 ई. तक)

अफजल खाँ की मृत्यु के उपरांत शिवाजी के जीवन का द्वितीय काल आरंभ होता है, जो सन् 1665 से 1674 ई. तक का काल है, जिसमें उनका मुगलों के साथ विशेष रूप से संघर्ष हुआ।

शिवाजी का मुगलों से संघर्ष

अफजल खाँ के वध के कारण बीजापुर में ही नहीं, समस्त भारत में खलबली मच गई। शिवाजी की इस विजय ने उनके साहस तथा उत्साह में अभूतपूर्व वृद्धि की और उनका ध्यान मुगल प्रदेशों पर लूट - मार तथा छापे मारने की ओर आकर्षित हुआ। जब औरंगजेब को यह सूचना हुई तो उसने उनका दमन करने का निश्चय किया।

4.2.4.1. शिवाजी और शाइस्ता खाँ

उत्तराधिकारी युद्ध से निवृत्त होने के उपरांत औरंगजेब ने मरहठों की नवस्थापित शक्ति का अंत करने का आदेश अपने मामा शाइस्ता खाँ को दे दिया जो उस समय दक्षिण का वायसराय था। उसने बीजापुर को अपनी ओर कर महाराष्ट्र प्रदेश पर दो ओर से आक्रमण करने का आयोजन किया। वह स्वयं अहमदनगर से मुगल सेना सिहत सन् 1660 ई. में चल पड़ा मार्ग के दुर्गों पर अपना अधिकार करता हुआ वह 19 मई को पूना पहुँच गया। विभिन्न दुर्गों के हाथ से निकल जाने के कारण शिवाजी की शक्ति को बड़ा आघात पहुँचा। उन्होंने अपने आप को मुगलों से खुलकर तथा डटकर सामना करने में असमर्थ पाया। शाइस्ता खाँ ने वर्षा ऋतु पूना में ही व्यतीत करने का ही निश्चय किया। इस बीच आसपास के प्रदेशों पर मुगलों ने अपना अधिकार कर लिया। शिवाजी बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने मुगलों को तितर-बितर करने का एक अन्य उपाय सोचा। शाइस्ता खाँ उसी महल में ठहरा जिसमें शिवाजी ने बचपन में निवास किया था। 15 अप्रैल, 1663 ई. की रात्रि के समय वेश बदल कर चुने हुए मरहठे सैनिकों के साथ महल पर आक्रमण किया। शिवाजी उसके सोने के कमरे में शीघ्र ही पहुँच गए। मरहठों के आक्रमण का समाचार सुनकर वह भागने लगा और उसका अँगूठा कट गया। मुगलों के बहुत से व्यक्ति मारे गए, और उनकी सेना में खलबली मच गई। शिवाजी शीघ्र ही अपने सैनिकों को लेकर सिंहगढ़ भाग गए। इस कार्य से उनकी धाक जम गई और उनके मान प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गए औरंगजेब शाइस्ता खाँ से अप्रसन्न हो गया और उसने उसको बंगाल का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

4.2.4.2. सूरत की प्रथम लूट

इस विजय के कारण शिवाजी का उत्साह बहुत बढ़ गया और उन्होंने साम्राज्य के सबसे शक्तिशाली व्यापारिक नगर सूरत को लूटने का निश्चय किया। उन्होंने अपनी इस योजना को पूर्णतया गुप्त रखा। 10 जनवरी, 1634 ई. को उन्होंने सूरत पर आक्रमण किया। वहाँ के गवर्नर ने शिवाजी से संधि करने की वार्ता चलाई, किंतु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। 16 जनवरी से 20 जनवरी तक मरहठों ने सूरत नगर को खूब लूटा और लूट का माल लेकर मरहठे अपने प्रदेश वापस चले गए। इस अभियान से मराठों को अतुल धन (लगभग 10 करोड़ रुपये) हाथ लगा।

4.2.4.3. शिवाजी और जयसिंह

शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति के कारण औरंगजेब बहुत अधिक भयभीत हुआ। उसने आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया और उसको शिवाजी को कुचलने का आदेश दिया। मिर्जा राजा जयसिंह अपने समय के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों, कूटनीतिज्ञों तथा सेनापतियों में से एक था। वह अपने उत्साह तथा साहस का परिचय भारत और मध्य एशिया के युद्धों में दे चुका था। उसने सन् 1655 ई. में पूना पहुँच कर मारवाड़ के राजा जसवंत सिंह से कार्यभार संभाल कर शिवाजी के दमन करने की योजना का निर्माण किया। उसने आसपास के सरदारों को मिलाकर एक संघ बनाया और शिवाजी के राज्य के पूर्वी भाग में सेना लेकर पड़ा रहा, जिससे बीजापुर राज्य से उसको कोई सहायता प्राप्त नहीं हो सके। उसने शीघ्र ही शिवाजी के राज्य पर आक्रमण करना आरंभ किया। उसने तुरंत ही पुरंदर तथा रायगढ़ के दुर्गों को घेर लिया। शिवाजी में इतनी विशाल सेना तथा योग्य सेनानायक मिर्जा राजा जयसिंह का सामना करने की क्षमता नहीं थी। अतः संधि की वार्ता आरंभ हो गई। दोनों अर्ध-रात्रि तक संधि की शर्तों के विषय में विचार करते रहे और अंत में इस निर्णय पर पहुँचे। यह संधि 1665 ई. में हुई, जो पुरंदर के नाम से विख्यात है।

4.2.4.4. पुरंदर की संधि

इस संधि में निम्न बातें तय की गई- (i) शिवाजी ने 23 किले और उनसे लगे हुए प्रदेशों को मुगलों को समर्पण कर दिया। इनकी आय लगभग 5 लाख हून थी। ये प्रदेश मुगल साम्राज्य में सिम्मिलित कर दिए गए। (ii) रायगढ़ तथा उसके समीप के 12 दुर्गों पर शिवाजी का अधिकार स्वीकार कर लिया गया। ये उस समय तक उसके अधिकार में रहेंगे जब तक कि वह मुगलों के प्रति राजभिक्त प्रदर्शित करता है। (iii) शिवाजी को मुगल दरबार की उपस्थिति से शम्भु जी को 5,000 घोड़ों के दल के साथ मुगल सम्राट की सेवा में रहना होगा और इस सेवा के उपलक्ष्य में उसको सम्राट की ओर से एक जागीर प्रदान

की जाएगी। (iv) शिवाजी को अपनी हानि की पूर्ति के लिए चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने के लिए बीजापुर राज्य के कुछ जिले तथा प्रदेश मिले।

संधि में नई शर्त- उक्त शर्तों के साथ बाद में इस संधि में यह धारा भी जोड़ दी गई कि "यदि कोंकण के निचले भागों की भूमि, जिसकी आय 4 लाख हूण वार्षिक है और ऊपरी भागों के प्रदेश (बीजापुर, बालाघाट) जिसकी आय 5 लाख हूण हैं, मुझे (शिवाजी) सम्राट की ओर से दिए जाए और मुझे इस बात का विश्वास दिलाया जाए कि मुगलों द्वारा बीजापुर की प्रत्याशित विजय के उपरांत एक शाही फरमान द्वारा इन प्रदेशों पर मेरा अधिकार स्वीकार कर लिया जाएगा, तो मैं सम्राट को 40 लाख हूण 13 वार्षिक किश्तों में देने को तैयार हूँ। औरंगजेब ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। इस संबंध में जयसिंह ने सम्राट को लिखा कि इस नीति से तीन लाभ होंगे- (1) हमको 40 लाख हूण या दो करोड़ रुपया मिलेगा, (2) शिवाजी की बीजापुर से शत्रुता हो जाएगी और (3) शाही सेना को इन ऊबड़खावड़ प्रदेशों में सैनिक कार्यवाही नहीं करनी होगी। इसके संबंध में सर यदुनाथ सरकार का कथन है कि "यहाँ हमें जयसिंह की नीति की चतुराई स्पष्ट दिखलाई देती है। उसने शिवाजी तथा बीजापुर के बीच झगड़े के बीज बो दिए। इस शर्त के स्वीकार हो जाने पर शिवाजी ने बीजापुर के आक्रमण में मुगलों को अपने पुत्र शंभा जी के नेतृत्व में 2,000 घुड़सवारों से और स्वयं अपने नेतृत्व में 7,000 कुशल पैदलों से सहायता करने का वचन दिया।

इस संधि के परिणामस्वरूप शिवाजी ने मुगलों की सहायता उस अभियान में की जो जयसिंह ने बीजापुर से विद्रोह किया था, किंतु उसको सफलता प्राप्त नहीं हुई। शिवाजी ने पन्हाला पर आक्रमण किया, किंतु उसको भी सफलता प्राप्त नहीं हुई।

4.2.4.5. शिवाजी की आगरा यात्रा

जयसिंह यह चाहता था कि पुरंदर की संधि स्थायी रहे। वह चाहता था कि शिवाजी और औरंगजेब की भेंट हो जाए। उसने शिवाजी को आगरा जाने के लिए तैयार किया और उनकी सुरक्षा का भार अपने ऊपर लिया। शिवाजी ने बड़े संकोच के साथ आगरा जाना स्वीकार किया। अपने राज्य की सुव्यवस्था करने के उपरांत शिवाजी स्वयं अपने पुत्र शंभा जी को साथ लेकर आगरा की ओर चल पड़े। आगरा जाने की परिस्थितियाँ-

- (i) जयसिंह का स्वार्थ- प्रथम के संबंध में ऐसा ज्ञात होता है कि जयसिंह शिवाजी को दक्षिण के प्रदेश से हटाना चाहते थे, क्योंकि दक्षिण में इस समय बड़ी सरगर्मी थी और यहाँ आपित का समय था। वह पुरंदर की संधि को स्थायी रूप प्रदान करना तथा प्रतिद्वंद्वियों में युद्ध की अवस्था प्रदान करना चाहता था।
- (ii) शिवाजी का स्वार्थ- ऐसा ज्ञात होता है कि शिवाजी उत्तर की राजनीति का अध्ययन तथा मुगल-साम्राज्य की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना चाहते थे, जिसके ज्ञान से वह अपना भावी कार्यक्रम निश्चत करें। मई सन् 1666 ई. शिवाजी ने आगरा पहुँचकर औरंगजेब से भेंट की। शिवाजी ने दरबार में जो व्यवहार देखा उससे उनको बड़ा क्रोध आया। औरंगजेब ने उनसे बातचीत न कर उनका बड़ा अपमान किया और उनको पंच हजारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा कर दिया। शिवाजी इस अपमान को सहन नहीं कर सके और वे पंक्ति से निकलकर एक ओर खड़े हो गए। औरंगजेब ने शिवाजी और उसके पुत्र को बंदीगृह में डाल दिया और फिर औरंगजेब ने उनको मरवाने का निश्चय किया। शिवाजी बड़े संकट में पड़ गए और अपनी मुक्ति पर विचार करने लगे। अंत में उनको एक बहाना मिल गया। उन्होंने घोषणा की कि वे बीमार हो गए हैं और मिठाई की टोकरियाँ ब्राह्मणों तथा साधु-संतों के यहाँ भिजवाना आरंभ किया।

4.2.4.6. शिवाजी की मुक्ति

जब मिठाइयों की टोकरियाँ इस प्रकार जाने लगी तो 16 अगस्त को शिवाजी और उसका पुत्र शंभा जी दो टोकरियों में बैठकर बाहर निकल गए और उनके स्थान पर हीरोजी फरजंद जो उनकी आकृति से मिलता जुलता था। लिटा दिया गया। वे सुनसान स्थान में पहुँच गए। वहाँ उनके लिए घोड़े तैयार थे। उन्होंने संन्यासियों का भेष धारण कर मथुरा की ओर प्रस्थान किया। शंभा जी को मथुरा छोड़ शिवाजी ने इलाहाबाद की ओर प्रस्थान किया। गोंडवाना तथा गोलकुंडा होते हुए शिवाजी 22 सितंबर, 1666 ई. को रायगढ़ पहुँच गए। शिवाजी का स्वास्थ्य खराब हो गया और वे लंबे विश्राम के लिए विवश हुए। दक्षिण का सूबेदार जयसिंह के स्थान पर जसवंत सिंह नियुक्त हुए। वे दक्षिण में व्यर्थ का युद्ध नहीं करना चाहते थे, अत: मराठों तथा मुगलों में संधि हो गई और शिवाजी को राजा की उपाधि प्राप्त हुई।

4.2.4.7. मुगलों के साथ पुनः संघर्ष

यह संधि भी स्थायी नहीं रह सकी, क्योंकि औरंगजेब का हृदय शिवाजी के प्रति साफ नहीं था और शिवाजी भी इस निष्कर्ष पर पहुँच गए थे कि महाराष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए उनको मुगलों से अवश्य युद्ध करना होगा। उन्होंने दुर्गों पर पुनः अधिकार करना आरंभ किया, जो पुरंदर की संधि के कारण उस समय मुगलों को दे दिए गए थे। उन्होंने सिंहगढ़, पुरंदर, कल्याण, भिवंड़ी, माहुली आदि दुर्गों पर अधिकार किया और मुगल प्रदेशों को लूटना आरंभ किया। शिवाजी ने 13 अक्टूबर, 1680 ई. को सूरत को दूसरी बार लूटा और शिवाजी के हाथ बहुत अधिक धन लगा। इस संबंध में सर यदुनाथ का कथन है कि 'सूरत की वास्तविक क्षति का अनुमान इस संपत्ति से नहीं लगाया जा सकता, जिसको मराठे लूट कर ले गए थे। भारत के सबसे समृद्ध बंदरगाह का व्यापार पूर्णतया नष्ट हो गया। सूरत का व्यवसाय पूर्णतया चौपट हो गया और देश के आतंरिक भागों के उत्पादक अपना माल पश्चिमी भारत के इस महानतम व्यापार केंद्र को भेजने में हिचकने लगे। इसके उपरांत शिवाजी ने बरार, बंगलौर और खान देश पर आक्रमण किया और विभिन्न प्रदेशों से चौथ वसूल की। उन्होंने सलहेर पर अधिकार करने के उपरांत उत्तरी कोंकड पर आक्रमण किया। उनके अधिकार में जवाहर और रामनगर आए। बीजापुर ने मराठों के विरुद्ध दो बार सेना भेजी, किंतु उसको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। शिवाजी का अधिकार सतारा और पन्हाला दुर्गों पर स्थापित हुआ। बाद में दोनों में संधि हो गई। इस प्रकार शिवाजी ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

4.2.5. शिवाजी का तृतीय काल (1674 ई. से 1680 ई.)

4.2.5.1. शिवाजी का राज्याभिषेक

शिवाजी ने एक राज्य का निर्माण किया और उनके अधिकार में पर्याप्त प्रदेश आ गए थे। अतः उनके हृदय में राज्याभिषेक करने की इच्छा बलवती हुई। सन् 1674 ई. में उन्होंने अपना राज्याभिषेक बड़े ठाट-बाट से किया, किंतु शोक की बात यह है कि इस अपूर्व समारोह के बारह दिन उपरांत ही उनकी माता जीजाबाई का स्वर्गवास हो गया। शिवाजी के राजा बनने से हिंदुओं में एक नई स्फूर्ति तथा आशा का संचार हुआ और उनके मन में यह भावना हिलोरे लेने लगी कि शीघ्र ही भारत में समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का शासन पुनः आएगा। उधर औरंगजेब भी समझ गया कि मराठों का दमन करना सरल कार्य नहीं है।

शिवाजी के राज्याभिषेक का महत्व

सन् 1674 ई. में शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक बड़े ठाट-बाट तथा शान-शौकत से किया। इसके द्वारा वे एक जागीरदार के पुत्र से छत्रपति बन गए, जिसने उनके मान और प्रतिष्ठा में बड़ा सहयोग प्रदान किया। इसके द्वारा उनको नैतिक बल प्राप्त हुआ। उनके राज्याभिषेक के महत्व के संबंध में इतिहासकारों की अगल-अलग धारणाएँ हैं- (1) यद्यपि यह सत्य है कि शिवाजी ने बहुत बड़े प्रदेश पर विजय प्राप्त कर ली थी और बहुत-सा धन एकत्रित कर लिया था, उनके पास भू-तथा नौ-सैना थी और एक स्वतंत्र शासक की भाँति उन्हें लोगों के जीवन-मरण का अधिकार था, परंतु सिद्धांतः उनका स्थान एक प्रजा का था। मुगल सम्राट की दृष्टि में वह एक जागीरदार था और आदिलशाह की दृष्टि में वह एक अधीनस्थ जागीरदार के एक विद्रोही पुत्र थे। अतएव वह राजनीतिक दृष्टिकोण से किसी भी सम्राट की समानता नहीं कर सकता था। (2) यद्यपि वस्तुतः शिवाजी के हाथ में एक स्वतंत्र सम्राट की सभी शक्तियाँ तथा अधिकार आ गए थे, परंतु बिना राज्याभिषेक के वह उन लोगों की राजभक्ति तथा श्रद्धा के पात्र नैतिक दृष्टिकोण से नहीं समझे जा सकते थे, जिनके ऊपर वह शासन करते थे। (3) बिना राज्याभिषेक के उनके वायदों तथा संधियों में वह पवित्रता तथा स्थायित्व नहीं आ पाता था, जो एक राज्य के समझौतों में पाया जाता है। वैधानिक दृष्टिकोण से उनके द्वारा की हुई संधियों तथा उनके द्वारा दी गई भूमि का अनुमोदन नहीं हो सकता था। (4) राज्याभिषेक के बिना उनके द्वारा जीती हुई भूमि वैधानिक दृष्टिकोण से उनकी संपत्ति नहीं समझी जा सकती थी चाहे जितनी शांतिपूर्वक वह अपने अधिकार में रक्खे होते। (5) बिना राज्याभिषेक के वह लोग जो शिवाजी की सेवा में थे अपने पुराने शासक के आधिपत्य को अस्वीकार नहीं कर सकते थे और यह भी संभव था कि शिवाजी की आज्ञा के पालन करने के अपराध में उस पर राजद्रोह लगाया जा सकता था। (6) जो साम्राज्य शिवाजी ने स्थापित किया था उसे स्थापित्व प्रदान करने के लिए यह आवश्यक था कि उसे एक स्वतंत्र सम्राट की कृति बना दी जाए। (7) बहत से मराठा सरदार भोंसले वंश से इर्घ्या रखते थे और उसके उत्थान को सहन नहीं कर पाते थे। ये लोग मुगल-सम्राट अथवा आदिलशाह सुल्तान को ही अपना शासक मानते और शिवाजी को केवल लुटेरा तथा डाकू समझते थे। राज्याभिषेक द्वारा शिवाजी को सम्राट प्रदर्शित किया जा सकता था और उनकी दृष्टि में ऊँचा उठाया जा सकता था। (8) महाराष्ट्र में उत्कृष्ट मस्तिष्क वाले भी शिवाजी को हिंदू धर्म का रक्षक मानने लगे थे और उनकी यह आकांक्षा थी कि हिंदू समुदाय की पूर्ण राजनीतिक उन्नति हो। वे हिंदू स्वराज्य चाहते थे और हिंदू स्वराज्य का तात्पर्य यह था कि उनका नेता छत्रपति हो। शिवाजी का लक्ष्य केवल सैनिक विजय तथा लूट-मार करना ही नहीं था और न शिवाजी का लक्ष्य केवल महाराष्ट्र को बीजापुर तथा दिल्ली के मुसलमान शासकों के आधिपत्य से मुक्त करना था, वरन् वह हिंदवी स्वराज्य के आदर्श से प्रेरित हए थे।

4.2.5.2. शिवाजी की विजय यात्रा

राज्याभिषेक में बहुत अधिक धन व्यय किया गया था। शिवाजी आर्थिक कठिनाइयों का अनुभव करने लगे थे। अतः उन्होंने धन प्राप्त करने के लिए मुगलों के विरुद्ध युद्ध करना और प्रदेशों पर अधिकार करना आरंभ कर दिया। शिवाजी ने मुगल सेनापित बहादुर खाँ के शिविर पर आक्रमण किया जहाँ उनको लगभग एक करोड़ रुपया प्राप्त हुआ और बहुत से उच्च कोटि के घोड़े भी उनके हाथ लगे। इसके पश्चात् उन्होंने बीजापुर राज्य के कोली प्रदेश पर आक्रमण किया। फिर बगलाना और खानदेश पर आक्रमण कर कई नगरों को लूटा। उन्होंने कोल्हापुर पर भी आक्रमण किया जहाँ से उनको पर्याप्त धन प्राप्त हुआ। इसके बाद उन्होंने बीजापुर, गोलकुंडा के कुछ प्रदेशों पर तथा हैदराबाद नगर पर आक्रमण किया जहाँ से उनको पर्याप्त धन मिला। उधर मुगलों ने सन् 1676 ई. में कल्याण पर आक्रमण किया, किंतु मुगलों को मुँह की खानी पड़ी तथा अपमानित होकर वापस लौटना पड़ा। शिवाजी ने बीजापुर से संधि की। शिवाजी को तीन लाख रुपये मिले, किंतु यह संधि अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकी।

4.2.5.3. जंजीरा का सिहियों से संघर्ष

शिवाजी अपने राज्य का पश्चिम की ओर विस्तार कर समुद्र तट पर अधिकार करना चाहते थे। कुछ प्रदेशों पर वे पूर्ववत् अधिकार कर चुके थे। सिद्दियों का जंजीरा पर अधिकार था, जिसको अपने अधिकार में करना शिवाजी आवश्यक समझते थे, क्योंकि इस पर अधिकार किए बिना उनका कोंकण का प्रदेश सुरक्षित नहीं रह सकता था। सिद्दी भी अपने प्रदेश का त्याग करना नहीं चाहते थे, क्योंकि वह उनके जीवन-मरण का प्रश्न था, क्योंकि यह भूमि उनके भोजन और आय का साधन थी। शिवाजी ने जिंजी पर आक्रमण किया, जिससे सिद्दियों का उत्साह मंद पड़ गया। उनके सरदार ने संधि करने का निश्चय किया, किंतु अन्य सरदारों के विरोध के कारण वह ऐसा नहीं कर सका। शिवाजी की मृत्यु (1680) तक मराठों और सिद्दियों में संघर्ष चलता रहा, किंतु कोई भी परिणाम नहीं निकला।

4.2.5.4. कर्नाटक की विजय

सन् 1677 ई. में शिवाजी ने कर्नाटक को अपने अधिकार में करने के लिए आक्रमण किया। आक्रमण से पूर्व उसने गोलकुंडा के सुल्तान से एक संधि की। उसने कर्नाटक में लूटमार करनी आरंभ की और वहाँ के प्रमुख नगरों पर अधिकार किया। इसके उपरांत उन्होंने तंजोर पर आक्रमण किया और वह विजयी हुए। इस प्रकार समस्त कर्नाटक पर शिवाजी का अधिकार हो गया और वह स्वदेश वापस आया। इन विजयों से उनका मान तथा प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई।

4.2.5.5. शिवाजी के अंतिम दिवस और मृत्यु

अपने पुत्र शंभा जी के चिरत्र, व्यवहार तथा आचरण के कारण शिवाजी के अंतिम दिवस कष्टमय व्यतीत हुए। उनके अवगुणों के कारण उनको नजरबंद किया गया, किंतु वह वहाँ से निकल कर मुगलों से मिल गया। इस कारण शिवाजी बड़े दुःखी रहने लगे और वह अपनी विजय तथा पिरश्रम का पिरणाम शांतिपूर्वक नहीं भोग सके। इसके अतिरिक्त उनके मंत्रियों में भी मत-भेद हो गया था और दरबारी कुचक्र चलने लगे थे। वे 02 अप्रैल, 1680 ई. को बीमार पड़ गए और 03 अप्रैल को उनका देहांत हो गया।

शिवाजी का साम्राज्य- शिवाजी की मृत्यु के समय उनका राज्य विशाल दक्षिण में मालवार तक तथा पूर्तगाली और सिद्दियों के प्रदेश को छोड़कर उत्तर में राजनगर से विस्तृत था तथा पूर्व में बलगान, पूना, सितारा, कोल्हापुर का बहुत-सा भाग था। इन प्रदेशों पर तो उनका प्रत्यक्ष अधिकार था, किंतु इनके अतिरिक्त कर्नाटक का भी पर्याप्त भाग इनके हाथ में था। कुछ प्रदेशों से ये चैथ वसूल किया करते थे। यद्यपि इन पर मुगलों का अधिकार था।

4.2.6. शिवाजी की शासन व्यवस्था

शिवाजी न केवल एक उच्च कोटि के सेनानायक तथा विजेता ही थे, वरन् वह एक उच्च-कोटि का प्रबंधक भी थे। उनमें वे समस्त गुण विद्यमान थे जो एक योग्य और कुशल शासक में होने चाहिए। उनकी तुलना सूर वंश के संस्थापक शेरशाह तथा नेपोलियन से की जा सकती है जिसने अपनी योग्यता का परिचय उच्चकोटि की शासन व्यवस्था में दिया। शासन पर शिवाजी का एकाधिकार था और समस्त शक्ति उसमें केंद्रीभूत थी, किंतु उनके शासन को निरंकुश शासन या पूर्णतया सैनिक शासन कहना उनके साथ अन्याय करना होगा। यह सत्य है कि उसके शासन का आधार सेना थी, किंतु उनके राज्य में सामाजिक संस्थाओं का अभाव नहीं था।

4.2.6.1. केंद्रीय शासन

शिवाजी ने दृढ़ केंद्रीय शासन की स्थापना की और उस समय की परिस्थितियों में ऐसा करना नितांत आवश्यक था अथवा राज्य में शांति और सुव्यवस्था की स्थापना करना असंभव था। शासन पर उनका संपूर्ण अधिकार था। उन्होंने शासन कार्य में परामर्श और सहायता देने के लिए एक समिति का निर्माण किया, जो अष्ठ-प्रधान के नाम से विख्यात थी, क्योंकि उसके सदस्यों की संख्या आठ थी और सदस्य एक विभाग का प्रधान था। मंत्री उनके पूर्णतया अधीन थे। उनके लिए आदेशों का पालन करना अनिवार्य था। वे केवल उनके प्रति उत्तरदायी थे। वह अपनी इच्छा से किसी भी समय उनको पदच्युत कर सकता था। प्रत्येक मंत्री अपने विभाग की सुव्यवस्था तथा सुसंचालन के लिए उत्तरदायी था। अष्ट प्रधान में पेशवा (प्रधान मंत्री) का पद विशिष्ट महत्वपूर्ण था, किंतु अन्य मंत्री उसके अधीन नहीं थे। उनका स्थान वास्तव में समानों में प्रथम था। उनकी नियुक्ति जीवन पर्यंत के लिए की जाती थी, किंतु वह पद पैतुक नहीं था। रानाडे ने अष्ट-प्रधान की तुलना भारत के वायसराय की कार्यकारिणी से की, किंतु वास्तव में वह समानता केवल बाह्य थी। वास्तव में शिवाजी फ्रांस के लुई चतुदर्श के समान स्वयं अपना प्रधानमंत्री था और मंत्री केवल सचिव के समान थे जिसका मुख्य कर्तव्य यह था कि वे उसको उस समय परामर्श दें जब उनसे माँगा जाए अन्यथा वे उसके आदेशों का अक्षरतः पालन करें। अष्ट प्रधान के आठ मंत्री थे- (1) पेशवा- इसका मुख्य कार्य समस्त शासन की देख-भाल करना तथा राज्य की सुव्यवस्था और जनता की शांति व सुख की व्यवस्था करना था। राजा की अनुपस्थिति में शासन का समस्त उत्तरदायित्व उस पर रहता था। (2) अमात्य- इसका मुख्य कार्य राज्य के हिसाब की जाँच पड़ताल करना तथा राज्य की आय-व्यय का लेखा रखना था। (3) मंत्री- इसका कार्य राजा के दैनिक कार्य और दरबारों की कार्यवाही का विवरण रखना था। (4) सचिव- वह राजा के पत्र-व्यवहार की देख-भाल करता था। मसविदा बनाना तथा उनकी प्रतिलिपि करवाना उसका कार्य था। (5) सामंत- वह राजा को विदेशी राज्यों के विषय में संबंध स्थापित किए जाने की सलाह तथा परामर्श देता था। वह विदेशी राज्यों से अपने राज्य का गौरव बनाए रखता था। (vi) सेनापति- उसका प्रमुख कार्य सेना की उचित व्यवस्था करना था। वह सेना का प्रधान होता था। (vii) पंडितराव और दानाध्यक्ष- उसका प्रमुख कार्य धार्मिक कृत्यों को उचित रूप से करवाना था तथा धार्मिक संस्थाओं को दान आदि देना था। उसका कार्य धार्मिक नियमों की व्याख्या करना तथा जनता का नैतिक स्तर उन्नत करना था। (viii) न्यायाधीश- वह न्याय-विभाग का उच्चतम पदाधिकारी था। यहाँ यह बात ज्ञातव्य है कि सेनापित के अतिरिक्त सभी मंत्री ब्राह्मण होते थे और पंडितराव और दानाध्यक्ष तथा न्यायाधीश के अतिरिक्त समस्त मंत्रियों को आवश्यकता अनुसार युद्ध में सेना का नेतृत्व करता अनिवार्य था। इस प्रकार मंत्रियों को नए कार्यों के साथ-साथ सैनिक कार्यों को संपन्न करना पड़ता है। उनको प्रतिमास वेतन मिलता था। राज्य उनको जागीर प्रदान नहीं करता था। सबका वेतन निश्चित था। पेशवा को 15,000, अमात्य को 12,000 तथा अन्य मंत्रियों को 10,000 हुण वेतन के रूप में मिलते थे।

4.2.6.2. प्रांतीय शासन

शिवाजी के अधिकार में पर्याप्त साम्राज्य था जिसको उन्होंने शासन की सुविधा का ध्यान रख चार भागों में विभक्त किया। ये भाग प्रांत कहलाते थे। वह प्रदेश जो सीधे शिवाजी के नियंत्रण में था 'स्वराज्य' के नाम से संबोधित किया जाता था। अन्य तीन प्रांतों में एक सूबेदार होता था, जिसकी नियुक्ति वह स्वयं करते थे और वे अपने पद पर उनकी इच्छा-पर्यंत कार्य कर सकते थे। अतः उनकी नियुक्ति तथा निवृत्ति का अधिकार राजा के हाथ था। उसकी सहायता के लिए आठ मंत्री होते थे।

4.2.6.3. स्थानीय शासन

समस्त प्रांतों में ग्रामीण समुदाय थे, जो पूर्णरूपेण स्वतंत्र थे। शिवाजी ने इस व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किया और वह पूर्ववत् चलती रही। आरंभ में इन स्वतंत्र ग्रामों के समूहों पर देशमुखों तथा देशपांडों की नियुक्ति की गई। इसका मुख्य कार्य लगान वसूल करना था। कुछ समय उपरांत इनका पद पैतृक हो गया और ये सर्वोच्च सत्ता का प्रयोग करने लगे। शिवाजी इस प्रकार की व्यवस्था से संतुष्ट नहीं हुए, क्योंकि इसके द्वारा सामंतशाही को प्रोत्साहन प्राप्त होता था, जो संगठित राजतंत्र की विरोधी भावना थी। लगान वसूल करने के लिए उन्होंने अपने ही कर्मचारियों की नियुक्ति की और उनकी देखरेख तथा देशपांडों को शक्तिहीन करना आरंभ कर दिया।

4.2.6.4. सैनिक व्यवस्था

शिवाजी ने सैनिक बल पर ही एक विशाल साम्राज्य की स्थापना बड़ी भीषण परिस्थितियों में की। इस राज्य को स्थायी रूप देने के लिए यह नितांत आवश्यक था कि सेना की व्यवस्था उच्च कोटि की हो तथा उसका संगठन दृढ़ हो। शिवाजी ने इस ओर विशेष ध्यान दिया और वे अपनी सेना को जितनी भी अधिक उन्नत तथा सुसंगठित कर सकते थे, उन्होंने उसको करने का भरपूर प्रयत्न किया और उनको इस दशा में पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई। इसके द्वारा वे बीजापुर, गोलकुंडा तथा मुगल-साम्राज्य की विशाल सेनाओं के मध्य तथा विरोध में राज्य की स्थापना कर सके।

- (i) शिवाजी के सैनिक सुधार- शिवाजी प्राचीन सैनिक व्यवस्था से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने उसमें कुछ आवश्यक सुधार किए। शिवाजी ने स्थायी सेना की व्यवस्था की जिसमें सैनिकों को बारह माह कार्य करना पड़ता था। इससे पूर्व सैनिक छह महीने सेना में और छह महीने अपने खेतों में काम करते थे। उन्होंने इस व्यवस्था का अंत कर दिया। उन्होंने मराठा जाति में देश-भक्ति तथा राष्ट्रीय भावना जागृत की जिसमें उन्होंने बड़े साहस और अदम्य उत्साह का परिचय दिया और भीषण कार्य करने के लिए वे सदा तत्पर रहे। उन्होंने जागीर प्रथा का उन्मूलन कर सैनिकों को वेतन देने की व्यवस्था की, घोड़ों पर दाग लगाने की व्यवस्था की गई और सैनिकों का हुलिया रजिस्टर में लिखा जाने लगा तािक किसी प्रकार का गोलमोल घोड़ों अथवा सैनिकों के संबंध में संभव नहीं हो सके। सेना में भर्ती योग्यता के अनुसार होती थी। सैनिक पद पैतृक नहीं थे। उन्होंने सेना को पूर्ण अनुशासन में रखा। अनुशासन भंग करने वाले को कठोर दंड दिया जाता था। उसकी सेना में हिंदू और मुसलमान दोनों जाितयों के सैनिक थे।
- (ii) दुर्गों की व्यवस्था- शिवाजी ने दुर्गों की व्यवस्था की और उनकी सुरक्षा का विशेष ध्यान दिया, क्योंकि वे उनको संपूर्ण राज्य के केंद्र समझते थे। शिवाजी ने पुराने दुर्गों की मरम्मत कराई और नए दुर्गों का निमार्ण करवाया। जिलों का शासन इन्हीं दुर्गों से होता था। दुर्गों में अधिक सेना नहीं रखी जाती थी। प्रत्येक दुर्ग की व्यवस्था के लिए तीन कर्मचारी होते थे जिनका सामूहिक उत्तरदायित्व था। इसका लाभ यह था कि कोई भी कर्मचारी विश्वासघात नहीं करने पाए। तीन कर्मचारियों का स्तर समान था। हवलदार के अधिकार में दुर्ग की कुंजियाँ रहती थीं और उसको राजकीय पत्र व्यवहार करना पड़ता था। सरेनोबत पुलिस, चौकीदार तथा निकटवर्ती स्थानों का निरीक्षण करने का कार्य करता था। सबनिस इन दोनों के मध्य था और वह सैनिकों की उपस्थित आदि का कार्य करता था।
- (iii) स्थायी सेना- शिवाजी की सेना उनकी मृत्यु के समय दक्षिण में सबसे अधिक शक्तिशाली थी। उनकी सेना में 40,000 घुड़सवार, एक लाख पैदल सिपाही, 1,260 हाथी और 3,009 ऊँट थे। शिवाजी की सेना का प्रधान अंग घुड़सवार सेना थी जिसकी व्यवस्था की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। इसमें दो प्रकार के सैनिक थे। एक तो वे जिनको राज्य की ओर से हथियार, घोड़े तथा निश्चित वेतन मिलता था जो

बर्गीस कहलाते थे। दूसरे वे जो घोड़े और हथियार अपने पास से क्रय करते थे। उनको युद्ध में भाग लेने के लिए निश्चित धन-राशि मिलती थी। प्रत्येक दस सिपाही के ऊपर एक नायक और प्रत्येक 25 नायकों के ऊपर एक हवलदार, पाँच हवलदारों के ऊपर जुमलादार तथा दस जुमलादारों के ऊपर एक हजारी होता था। पैदल सेना भी कई विभागों में विभक्त थी। शिवाजी के पास पर्याप्त बंदू कें और तोपखाना भी था। उनके पास दो सौ के लगभग जहाज थे।

(iv) रणनीति- शिवाजी की रणनीति मुगलों की रणनीति के बिल्कुल विपरीत थी। उन्होंने गुरिल्ला नीति (छापामार नीति) को अपनाया। वे आमने-सामने युद्ध करने के स्थान पर साहस पर अधिक विश्वास करते थे। शत्रु की सेना पर छिपकर आक्रमण करते थे और लूट मार मचाकर पहाड़ियों में छिप जाते थे। इसके लिए यह आवश्यक था कि सेना के पास कम सामान हो और घोड़े द्वुतगति के हों। देश की प्राकृतिक दशा ने भी उनकी इस नीति को सफल बनाने में विशेष सहयोग प्रदान किया। इस नीति के कारण मुगल उन पर अधिकार करने में सफल नहीं हो सके।

4.2.6.5. आर्थिक प्रबंध तथा राजस्व

शिवाजी ने आर्थिक प्रबंध तथा राजस्व की ओर भी विशेष ध्यान दिया, क्योंकि उनको जनता के हितों का भी ध्यान था। राज्य की ओर से समस्त भूमि पैमाइश (नाप तौल) छड़ों द्वारा करवाई। 20 वर्ग छड़ों का एक बीघा और 120 बीघे का एक चावर था। भूमि की औसत उपज 2/5 भाग लगान के रूप में राज्य लेता था। किसानों को सुविधा प्राप्त थी कि वह लगान अनाज के रूप में दे सकता था। राज्य की ओर से किसानों को बीज, पशु और धन दिया जाता था जिसकी अदायगी वे किस्तों द्वारा करते। लगान किसानों से लिया जाता था। जमींदारी प्रथा का पूर्णतया उन्मूलन कर दिया गया था। इस प्रकार उसके राज्य में रैयतवाड़ी व्यवस्था विद्यमान थी।

4.2.6.6. चौथ और सरदेशमुखी

लगान तथा अन्य करों द्वारा राज्य को इतनी आय नहीं हो पाती थी कि उनका समस्त व्यय चल सके। इस कमी की पूर्ति करने के उद्देश्य से उन्होंने चैथ और सरदेशमुखी को अपनाया जो पडोसी राज्यों के प्रदेशों से वसूल किए जाते थे। उनको अपनी आर्थिक आय के लिए सेना पर अधिक निर्भर रहना पड़ता था। ये कर प्रायः स्थायी रूप से वसूल किए जाते थे। चैथ निर्बलों द्वारा भेंट की थी और उसके देने पर उनको अन्य शक्ति के आक्रमण से रक्षा की अनुमित प्राप्त हो जाती थी। वह सैनिक कर था जो लगान का 1/4 भाग होता था। सरदेशमुखी 10 वाँ भाग था। शिवाजी अपने आपको संपूर्ण महाराष्ट्र का पैत्रिक सरदेशमुखी समझते थे और वे वहाँ से दसवाँ भाग वसूल करते थे। रानाड़े के अनुसार यह सैनिक चंदा नहीं था, वरन् तीसरी शक्ति के विरुद्ध रक्षा के बदले एक प्रकार का कर था। सर यदुनाथ सरकार की चैथ के संबंध में यह धारणा है कि ''चैथ की अदायगी का अभिप्राय यह है कि उन प्रदेशों के बाह्य या आतंरिक आक्रमणों को रोकने का उत्तरदायित्व नहीं था। मराठा लोग अपने हितों का ध्यान करते थे, वे अन्य लोगों के हितों का ध्यान नहीं रखते थे। चैथ द्वारा एक डाकू खरीदा जाता था न कि समस्त शत्रुओं से रक्षा का आश्वासन दिया जाता था। इस प्रकार चैथ देने वाले प्रदेश मराठों के अधिकार क्षेत्र में सम्मिलित नहीं समझे जा सकते। सिद्धान्त में यह कुछ भी हो, परंतु व्यवहार में यह सैनिक कर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था।"

निष्कर्षतः इतिहासकारों ने शिवाजी की शासन-व्यवस्था की बहुत अधिक प्रशंसा की है। ग्राँट डफ के अनुसार ''शिवाजी के राज्य में सुख और सुव्यवस्था थी। आर्थिक क्षेत्र में राज्य की आय लगान अथवा चुंगी से इतनी नहीं थी जितनी कि चैथ और सरदेशमुखी से थी।'

4.2.7. सारांश

शिवाजी का प्रारंभिक जीवन- (1) शाहजी भोंसले का पुत्र, (2) माता जीजाबाई तथा दादा कोंडदेव से शिक्षा पाई। शिवाजी की प्रारंभिक विजय - (1) मवालों की आठ घाटियों की विजय, (2) जावली विजय, (3) चुनार तथा अहमदनगर की लूट तथा मुगलों से संघर्ष, (4) कोंकण विजय, (5) बीजापुर से युद्ध तथा अफजल खाँ का वध, (6) बीजापुर से संधि तथा पुनः युद्ध।

शिवाजी व मुगलों का संघर्ष - (1) शाइस्ता खाँ का वध, (2) जसवंत सिंह को अपनी ओर मिलाना, (3) सूरत की प्रथम लूट, (4) जयसिंह के साथ संघर्ष (5) पुरंदर की संधि, (6) आगरा यात्रा तथा जेल जाना, (7) जेल मुक्ति, (8) मुगलों से पुनः संघर्ष करके साम्राज्य-विस्तार।

शिवाजी द्वारा साम्राज्य विस्तार - (1) शिवाजी का सन् 1664 ई. में राज्याभिषेक, (2) मुगल सेनापित 'बहादुर खाँ ' के शिविर पर विजय, (3) बगलाना व खानदेश की लूट, (4) कोल्हापुर पर आक्रमण, (5) बीजापुर, गोलकुंडा के प्रदेशों की लूट, (6) जंजीरा के सिद्दियों में संघर्ष, (7) कर्नाटक विजय, (8) सन् 1680 ई. में मृत्यु।

शिवाजी की शासन व्यवस्था - (क) केंद्रीय शासन - (1) शासन का सैनिक आधार, (2) मंत्रि-परिषद् की व्यवस्था, (3) पेशवा, अमात्य, मंत्रि, सचिव सामंत, सेनापित पण्डितराव, दानाअध्यक्ष तथा न्यायाधीश आदि आठ मंत्री। (ख) प्रांतीय शासन - प्रांतों को स्वराज्य के नाम से पुकारा जाता था, सीधे शिवाजी के नियंत्रण में। (ग) स्थानीय शासन - ग्राम शासन की प्राथमिक इकाई थी। (घ) सैनिक शासन - (1) स्थायी सेना की व्यवस्था, (2) जागीरदार प्रथा का अंत (3) दुर्गों की व्यवस्था, (4) गुरिल्ला युद्ध नीति का आरंभ, (इ) आर्थिक व्यवस्था भूमि की पेमाइश, (2) करों की वसूली, (3) चैथ तथा सारदेशमुखी की व्यवस्था तथा वसूली।

4.2.8. बोध प्रश्न

4.2.8.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

- 1. भोंसले परिवार का परिचय दीजिए।
- 2. शिवाजी के बाल्यकाल एवं शिक्षा पर प्रकाश डालिए।
- 3. शिवाजी की जावली विजय का उल्लेख कीजिए।
- 4. पुरंदर की संधि पर एक नोट लिखिए।
- 5. शिवाजी के राज्याभिषेक का महत्व बताइए।

4.2.8.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- 1. शिवाजी के प्रथम कार्यकाल (1627 ई. से 1665 ई.) की विवेचना कीजिए।
- 2. शिवाजी के द्वितीय कार्यकाल (1665 ई. से 1674 ई.) की विवेचना कीजिए।
- 3. शिवाजी के तृतीय कार्यकाल (1674 ई. से 1680 ई.) की विवेचना कीजिए।
- 4. शिवाजी और मुगलों के मध्य संघर्ष का वर्णन कीजिए।
- 5. शिवाजी के शासन प्रबंध का वर्णन कीजिए।

4.2.9. संदर्भ-ग्रंथ

- 1. म. गो. रानाडे : मराठा शक्ति का उदय
- 2. ग्रांट डफ: मराठों का नवीन इतिहास

3. सरदेसाई : मराठों का नवीन इतिहास भाग 1, 2 एवं 3

4. जदुनाथ सरकार : शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स

5. सतीश चन्द्र : मध्ययुगीन भारत

खंड-4: मराठा साम्राज्य का उदय व विस्तार इकाई-3: मुगलों के साथ मराठों का संबंध

इकाई की रूपरेखा

- 4.3.1. उद्देश्य
- 4.3.2. प्रस्तावना
- 4.3.3. मुगल-मराठा संबंध (प्रथम चरण)
 - 4.3.3.1. दक्षिण में मराठों द्वारा मुगलों का विरोध
 - 4.3.3.2. औरंगजेब के प्रति शिवाजी की नीति
 - 4.3.3.3. शिवाजी की कूटनीति एवं औरंगजेब की अधीनता
 - 4.3.3.4. शिवाजी की शक्ति में वृद्धि
 - 4.3.3.5. शिवाजी और शाइस्ता खाँ
 - 4.3.3.6. सूरत की प्रथम लूट
- 4.3.4. मुगल-मराठा संबंध (द्वितीय चरण)
 - 4.3.4.1. मिर्जा राजा जयसिंह से शिवाजी का संघर्ष
 - 4.3.4.2. पुरंदर की संधि(जून 1665 ई.)
 - 4.3.4.3. शिवाजी के प्रति औरंगजेब की नीति
 - 4.3.4.4. शिवाजी की आगरा यात्रा
 - 4.3.4.5. शिवाजी एवं औरंगजेब के मध्य समझौता(1667 ई.)
 - 4.3.4.6. शिवाजी-मुगल युद्ध
 - 4.3.4.7. सूरत की द्वितीय लूट और मुगलों की पराजय(अक्टूबर 1670 ई.)
 - 4.3.4.8. खानदेश व बरार पर शिवाजी के आक्रमण
- 4.3.5. मुगल-मराठा संबंध (तृतीय चरण)
 - 4.3.5.1. महाबत खाँ और बहादु र खाँ से शिवाजी का संघर्ष
 - 4.3.5.2. शिवाजी के युद्धों के परिणाम
 - 4.3.5.3. बहादुर खाँ से समझौते की चर्चा
 - 4.3.5.4. नेताजी पालकर और शिवाजी का मिलन
 - 4.3.5.5. शिवाजी का बहादुर खाँ से समझौता
 - 4.3.5.6. शिवाजी द्वारा मुगलों के विरुद्ध बीजापुर की सहायता
 - 4.3.5.7. संभाजी का मुगल-पक्ष में जाना
- 4.3.6. शिवाजी-औरंगजेब की परस्पर नीतियों का मूल्यांकन
 - 4.3.6.1. शिवाजी की सामरिक निपुणता
 - 4.3.6.2. शिवाजी के प्रति मुगल नीति
- 4.3.7. मुगलों की असफलता और मराठों की सफलता के कारण
 - 4.3.7.1. महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति और वातावरण
 - 4.3.7.2. मराठों का छापामार रणकौशल
 - 4.3.7.3. मराठों में एकता और राष्ट्रीय भावना

4.3.7.4. मराठों का कुशल नेतृत्व और संचालन

4.3.7.5. मराठों का अदम्य साहस और दृढ़ संकल्प

4.3.7.6. औरंगजेब का स्वभाव और दूषित नीतियाँ

4.3.8. सारांश

4.3.9. बोध प्रश्न

4.3.9.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

4.3.9.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

4.3.10. संदर्भग्रंथ सूची

4.3.1. उद्देश्य

मध्यकालीन भारत में मुगल-मराठा संबंधों का प्रमुख स्थान है। मराठा एक राष्ट्र निर्माता तथा स्वराज्य संस्थापक थे। मराठा शक्ति के संस्थापक वीर शिवाजी ने जीवन पर्यंत औरंगजेब का दृढ़ता से सामना किया और दक्षिण से मुगलों के वर्चस्व को समाप्त कर दिया। उन्होंने इन कार्यों के लिए जीवन पर्यंत घोर परिश्रम किया और अनेक आपित्तयों तथा विपत्तियों का सामना अदम्य उत्साह और साहस के साथ किया। उनकी सेवाएँ दक्षिण के लिए बड़ी महत्वपूर्ण थीं। उनको जीवन भर मुगलों का सामना करना पड़ा। उन्होंने मराठा संस्कृति के प्रचार में बड़ा सिक्रय भाग लिया। दिक्षण की राजनीति में उनका प्रमुख योगदान है। इस इकाई का उद्देश्य मुगल-मराठा संबंधों एवं मराठों की उपलिब्धयों पर प्रकाश डालना है।

4.3.2. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में मुगल-मराठा संबंधों के विभिन्न चरणों की एवं मराठों की सफलता एवं मुगलों की असफलता के कारणों की कालक्रमानुसार विस्तृत विवेचना की जाना प्रस्तावित है।

4.3.3. मुगल-मराठा संबंध (प्रथम चरण)

4.3.3.1. दक्षिण में मराठों द्वारा मुगलों का विरोध

मुगल सम्राट, जहाँगीर और शाहजहाँ ने दक्षिण में अपने साम्राज्य के विस्तार की नीति अपनाई। इसके परिणामस्वरूप अहमद नगर का निजामशाही राज्य मुगल सम्राटों ने जीतकर अपने साम्राज्य में विलीन कर लिया और इस राज्य के कुछ प्रदेश बीजापुर सुल्तान को सन् 1635 में दे दिए।

अहमदनगर का मुगल साम्राज्य में विलय के बाद मुगल साम्राज्य का दक्षिण में अधिक प्रसार होने का मार्ग प्रशस्त हो गया। पर अहमदनगर के सुल्तानों के शासनकाल में अनेक मराठों, सेनानायकों और सरदारों ने मुगलों के विरुद्ध युद्ध करके अपना सैनिक अनुभव, रण-कुशलता और शक्ति बढ़ा ली थी। दिक्षण भारत में मुगल साम्राज्य के प्रसार के साथ-साथ मोहिते, घोरपडे, महाडिक, शिर्के, घाटगे, माने, खोपडे, पलसकर, निम्बालकर आदि मराठा सरदारों की सैनिक और राजनीतिक शक्ति भी व्यापक, सुदृढ़ और प्रबल हो गई थी। इनकी अपनी विशाल जागीरें थीं और इनको व्यापक राजनीतिक और सैनिक अधिकार प्राप्त थे। जब औरंगजेब ने बीजापुर और गोलकुंडा के राज्यों को नष्ट कर समस्त दिक्षण भारत को अपने अधीन करना चाहा तो इन मराठा सरदारों और सेनानायकों को यह भय हो गया कि औरंगजेब दिक्षण में विजयी और प्रभुत्व-संपन्न होने पर उनके वतन और जागीरें छीन लेगा और उनके स्थान पर मुसलमान जागीरदार और अधिकारी नियुक्त करेगा। फलतः मराठा सरदारों और अधिकारियों ने अपने राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए मुगलों का विरोध किया; उनसे संघर्ष किया और बाद में वे एक

राष्ट्रीय सेना के रूप में संगठित हो गए। मुगलों से ऐसे विरोध और संघर्ष के उभरते हुए वातावरण में शिवाजी का अभ्युदय हुआ। गोलकुंडा व बीजापुर के सुल्तान भी नहीं चाहते थे कि औरंगजेब अपने साम्राज्य का विस्तार दक्षिण में करे।

4.3.3.2. औरंगजेब के प्रति शिवाजी की नीति

यद्यपि मुगल-विरोधी वातावरण में शिवाजी के जीवन का प्रारंभ हुआ था, परंतु शिवाजी मुगल सत्ता को भड़काए बिना ही अपने राज्य का इस प्रकार विस्तार करते रहे और अपनी शक्ति को इस प्रकार संगठित करते रहे कि उनको औरंगजेब से संघर्ष और युद्ध नहीं करना पड़े। सन्। 656 तक औरंगजेब और शिवाजी में किसी प्रकार की शत्रुता नहीं थी।

4.3.3.3. शिवाजी की कूटनीति और औरंगजेब की अधीनता

सन् 1657 में बीजापुर और मुगल सम्राट के बीच जो संधि हुई थी उसके अनुसार शिवाजी का निवास-नगर पूना और कल्याण-भिवंडी प्रदेश बीजापुर ने मुगलों को दे दिए। इससे शिवाजी की पैतृक जागीर मुगल सम्राट के अधीन हो गई और अब शिवाजी मुगल सरदार बन गए। ऐसी दशा में शिवाजी को औरंगजेब के साथ अपने संबंधों को निश्चितकरना पड़ा और यह उन्होंने बड़ी कूटनीतिक दक्षता से किया। इस समय तक शिवाजी ने जावली, रायरी और बीजापुर राज्य के कोंकण के कुछ भाग पर अधिकार लिया था। इसे वे स्थायी करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने औरंगजेब से पत्र-व्यवहार कर इस क्षेत्रों पर अपने आधिपत्य की मान्यता प्राप्त कर ली और इसके बदले में मुगलों की बीजापुर के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया। इस प्रकार शिवाजी ने मुगल सम्राट को दक्षिण का अधिपति मान लिया और उसके अधीनस्थ इलाके के आश्रित राजा के रूप में औरंगजेब से सन् 1657 में मान्यता प्राप्त कर ली।

अब शिवाजी ने बीजापुर के करद अधीनस्थ सामंत के रूप में मुगल प्रदेश के जुनार व अहमदनगर पर आक्रमण कर उसे लूटा, कल्याण, भिवंडी, माहुली और कोलाबा पर भी आक्रमण किया और इनको तथा अन्य छोटे दुर्गों को सन् 1657 में अपने अधिकार में कर लिया। इससे उत्तर कोंकण का समस्त प्रदेश उनके अधिकार में आ गया और उनका राज्य विस्तार में दूना हो गया। औरंगजेब ने जो इस समय दक्षिण में मुगल प्रदेश का सूबेदार था, शिवाजी के इस बढ़ते हुए खतरे को देखकर शिवाजी के विरुद्ध सेना भेजी और उनके प्रदेश को लूटने और वहाँ आगजनी करने के आदेश दिए। शिवाजी ने अनुभव कर लिया कि अब मुगलों से उनका कड़ा संघर्ष हो सकता है। वे इसे टालना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अपने दूत औरंगजेब के पास भेजकर सम्राट के प्रति स्वामिभक्ति प्रगट करते हुए शाही सेवा करने की और औरंगजेब की सहायता करने की प्रार्थना की। इसके बदले में कोंकण प्रदेश पर शिवाजी का अधिकार व प्रशासन मान लिया जाय। औरंगजेब ने इसे मान लिया क्योंकि वह शाहजहाँ की रूग्णता व उत्तराधिकार के युद्ध के लिए दक्षिण से उत्तर भारत जाने की शीघ्रता में था। 5 फरवरी, 1658 ई. को औरंगजेब ने दक्षिण से प्रस्थान कर दिया।

4.3.3.4. शिवाजी की शक्ति में वृद्धि

जब उत्तर में औरंगजेब उत्तराधिकार के युद्ध में और अपनी प्रारंभिक समस्याओं में व्यस्त रहा, तब दक्षिण के मुगल अधिकारी अकर्मण्य और उदासीन हो गए। बीजापुर की स्थिति भी दरबार की दलबंदी के कारण खराब हो गई थी। शिवाजी ने इस स्थिति का लाभ उठाया। समुद्री तट पर दुर्गों की किलेबंदी की, जलपोतों का निर्माण किया, अपनी नाविक शक्ति दृढ़ की, सेना में भी वृद्धि की; उसे अधिक व्यवस्थित व अनुशासित किया तथा बीजापुर के जेधे, बांदल, सिलिमकर, मरणे, मराल, पासलकर आदि जागीरदारों को अपने अधीन कर लिया। शिवाजी की इस बढ़ती हुई शक्ति का अंत करने

के लिए बीजापुर दरबार ने अफजल खाँ को सेना सिहत भेजा, पर शिवाजी ने उसका वध ही नहीं किया, अपितु उसके साथ जो बीजापुर सेना थी, उसे भी परास्त कर दिया। इसके साथ-साथ उन्होंने पन्हाला व विशालगढ़ तथा समुद्रतट के दक्षिण कोंकण पर अधिकार कर लिया।

4.3.3.5. शिवाजी और शाइस्ता खाँ

शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति का दमन करने के लिए, उनके प्रदेश को लूट व आगजनी से नष्ट करने के लिए औरंगजेब ने शाइस्ता खाँ को दक्षिण का मुगल सूबेदार बनाकर भेजा। शाइस्ता खाँ सन् 1660 में पूना पहुँच गया। उस पर अधिकार करके उसने चाकण दुर्ग को जीत लिया। शिवाजी के अधीनस्थ प्रदेशों में मुगल सैनिक टुकड़ियाँ आग लगाने व लूटपाट करने के लिए फैल गई। पर इससे शाइस्ता खाँ की सेना की कठिनाइयाँ और समस्याएँ बढ़ गई। शिवाजी के छोटे सीमित राज्य में सघन वन, पहाड़ियाँ, और दुर्गम घाटियाँ थीं। उनकी सेना ने छापामार रणनीति अपनाई। मुगल सेना के शिविर व रसद लूटी जाती रहीं। मुगल सेना परेशान हो गई। इसी बीच शिवाजी बीजापुर राज्य के दक्षिण कोंकण में लूटपाट कर रहे थे। मुगल सेना ने बीजापुर राज्य में शिवाजी का पीछा करना उचित नहीं समझा, क्योंकि बीजापुर से उनके मैत्री संबंध थे। शिवाजी भी खुले मैदान में आमने-सामने मुगल सेना से युद्ध करने में असमर्थ थे। विषम परिस्थिति के कारण शाइस्ता खाँ भी शिवाजी के विरुद्ध बड़े पैमाने पर कोई ठोस सक्रिय सैनिक कार्यवाही नहीं कर सका। पर उसने शिवाजी के अधिकारियों और अनुचरों को धन व पद का प्रलोभन देकर अपनी ओर मिलाना प्रारंभ कर दिया। अप्रैल सन् 1663 में तो शिवाजी के सिंहगढ़ दुर्ग के सैनिक और तोपखाना मुगलों के पक्ष में जा रहा था। शिवाजी शाइस्ता खाँ की इन गतिविधियों से चौकन्ने हो गए और उन्होंने शाइस्ता खाँ को कूटनीति ढंग से और व्यक्तिगत रूप से परास्त करने की विलक्षण योजना बनाई। 5 अप्रैल, 1663 को पूना में रात्रि में महल में बड़े साहस व वीरता से शाइस्ता खाँ पर आक्रमण कर उसे वहाँ से भगा दिया। इससे शिवाजी के यश-गौरव में वृद्धि हुई। शिवाजी के इस भीषण प्रहार, उसके कार्यान्वयन की सफाई और सफलता की पूर्णता ने मुगल दरबार और सैनिक शिविरों में उनकी शक्ति और सामर्थ्य का आतंक फैला दिया। औरंगजेब ने शाइस्ता खाँ को दक्षिण से बंगाल स्थानां तरित कर दिया। यदि औरंगजेब ऐसा नहीं करता तो संभव था कि शाइस्ता खाँ क्रोध और प्रतिहिंसा की भावना से शिवाजी के दमन और नाश का पूर्ण प्रयास करता।

4.3.3.6. सूरत की प्रथम लूट

शाइस्ता खाँ पर भीषण और आकस्मिक आक्रमण के बाद शिवाजी ने मुगलों के प्रसिद्ध संपन्न बंदरगाह और व्यापारिक केंद्र सूरत को लूट कर सम्राट औरंगजेब के आधिपत्य को खुली चुनौती दी। इस लूट में शिवाजी को लगभग एक करोड़ का सोना, चाँदी, हीरे-जवाहरात व अन्य माल-असबाब प्राप्त हुआ। शिवाजी के राज्य में मुगल सेनाओं ने जो विनाश लीला की थी, उसका बदला शिवाजी ने सूरत लूट कर लिया।

4.3.4. मुगल-मराठा संबंध (द्वितीय चरण)

4.3.4.1. मिर्जा राजा जयसिंह से शिवाजी का संघर्ष

अब औरंगजेब ने अपने सबसे अधिक निपुण, अनुभवी, रणकुशल सेनानायक और अपनी दूरदर्शिता व राजनियक चतुराई के लिए प्रसिद्ध मिर्जा राजा जयसिंह को दिलेर खाँ के साथ विशाल सेना सिंहत शिवाजी के विरुद्ध भेजा। 10 फरवरी, 1665 ई. को जयसिंह औरंगाबाद पहुँच गया और वहाँ से3 मार्च, 1665 ई. को पूना पहुँच गया। जयसिंह ने शिवाजी को उनके पडोसी राज्यों-बीजापुर के सुल्तान,

जंजीरा के सिद्दियों, पुर्तगालियों, कर्नाटक तथा पश्चिमी तट के राजाओं आदि की सहायता से वंचित कर दिया और उन पर दबाव डाला कि वे शिवाजी के विरुद्ध मुगलों की सहायता करें। जयिसंह ने शिवाजी के विरोधी और प्रतिद्वंद्वी मराठा सरदारों को तथा अधिकारियों को धन व पद का प्रलोभन देकर मुगलों के पक्ष में कर लिया। सभी महत्वशाली और प्रमुख मार्गों पर मुगल सैनिक टुकड़ियाँ बिठा कर शिवाजी के विरुद्ध नाकेबंदी कर दी। शिवाजी के राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में गाँवों व कस्बों की लूट-पाट व आगजनी के लिए अलग-अलग सैनिक टुकड़ियाँ भेजीं। इससे शिवाजी के अनेक इलाके वीरान हो गए, अनेक व्यक्तियों का कत्ल कर दिया गया और कई बंदी बना लिए गए। इसी बीच जयिसंह ने रूद्रमाल का किला जीतकर पुरंदर किले का घेरा तीव्र कर दिया। अब अधिक संघर्ष और युद्ध निरर्थक समझकर शिवाजी ने जयिसंह से पुरंदर की संधि कर ली। इस संधि में परिस्थिति से विवश होकर शिवाजी ने जो संपूर्ण समर्पण मुगल सम्राट को किया, वैसा फिर कभी नहीं किया।

4.3.4.2. पुरंदर की संधि(जून 1665 ई.)

इस संधि के अनुसार(1) शिवाजी ने अपने 35 दुर्गों में से चार लाख हूण की आय वाले 23 दुर्ग मुगल सम्राट को दे दिए। (2) एक लाख हूण की वार्षिक आय वाले 12 दुर्ग शिवाजी के पास छोड़ दिए गए। ये किले भी मुगलों के अन्य किलों से घिरे हुए थे। (3) शिवाजी को यह स्वीकृति देना पड़ी कि उनका पुत्र संभाजी पाँच हजार का मनसबदार बनकर मुगल सेवा में रहेगा। (4) शिवाजी मुगलों के पक्ष में बीजापुर के विरुद्ध युद्ध करेंगे। (5) बीजापुर राज्य का तल कोंकण और बालाघाट का प्रदेश यदि शिवाजी जीत लेंगे तो वह उनके पास रहेगा और इसके बदले में वे 13 किश्तों में चार लाख हूण मुगल सम्राट को देंगे। कुछ विद्वानों का मत है कि शिवाजी के लिए पुरंदर की संधि अपमानजनक समझौता था, मुगल सम्राट को पूर्ण आत्म-समर्पण था। पर वास्तव में शिवाजी ने अपनी विषम और निराशाजनक स्थिति में दूरदर्शिता और कूटनीति से काम लेकर औरंगजेब से अस्थायी समझौता करके अपने राज्य को विनष्ट होने से बचा लिया। यदि शिवाजी मुगलों से दीर्घकालीन कड़ा संघर्ष व युद्ध ही करते रहते तो जो कुछ भी उनके पास था वह प्रदेश भी शिवाजी खो देते और मुगल उस पर अधिकार कर लेते।

4.3.4.3. शिवाजी के प्रति औरंगजेब की नीति

जयसिंह और औरंगजेब ने इस समय शिवाजी के प्रति उदार नीति अपनाई। उन्होंने शिवाजी को घायल तो किया परंतु उनका जखम इतना भीषण और सांघातिक नहीं था कि वे सदा के लिए समाप्त हो जाते। ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब शिवाजी के वास्तविक खतरे को समझ ही नहीं पाया था। उसका उद्देश्य था कि शिवाजी के प्रति उदार नीति अपनाकर वह बीजापुर के विरुद्ध युद्ध में शिवाजी की सहायता प्राप्त कर ले और बीजापुर का अंत कर दें। औरंगजेब को यह भी भय था कि यदि मुगल निरंतर शिवाजी का दमन करते रहे तो शिवाजी निराशाजनक संकटापन्न स्थिति में बीजापुर की सहायता प्राप्त करें। और तब औरंगजेब को शिवाजी और बीजापुर दोनों की संयुक्त शक्ति व सत्ता से युद्ध करना पड़ेगाऔर ऐसी दशा में सफलता की आशा क्षीण हो जाएगी। औरंगजेब ने बीजापुर सत्ता को ही वास्तविक खतरा समझा यह उसकी राजनीतिक भूल थी। वास्तविक बीजापुर की सिक्रय सहायता लेकर शिवाजी से युद्ध करता तो शिवाजी का दमन व पतन निश्चित था।

यदि औरंगजेब पुरंदर की संधि में शिवाजी का संपूर्ण राज्य व दुर्गों को छीनकर उनको अधीनस्थ सरदार मानकर, उनको उनके वतन से दूर बरार या खानदेश में अथवा दक्षिण में धारवार में जागीर दे देता तो निश्चित ही शिवाजी को पुनः शक्ति संचय में दीर्घ समय लगता, संभव है तब मराठा इतिहास का स्वरूप दूसरा होता।

4.3.4.4. शिवाजी की आगरा यात्रा

जयसिंह की धारणा थी कि यदि औरंगजेब और शिवाजी मैत्री के वातावरण में मिल लें और समझौता कर लें तो दक्षिण में स्थायी शांति स्थापित हो सकती है। इसलिए जयसिंह ने बड़े आग्रह और अनुनय से शिवाजी को आगरा भेजा और औरंगजेब ने भी इसके लिए स्वीकृति दे दी और शिवाजी को आगरा शासकीय व्यय पर बुलाया। शिवाजी भी आगरा जाकर मुगल साम्राज्य की आतंरिक शक्ति की वास्तविकता को जानना चाहते थे तथा मुगल सम्राट से दक्षिण में चैथ व सरदेशमुखी के अधिकारों को प्राप्त करना चाहते थे। दो माह की यात्रा के बाद शिवाजी आगरा पहुँचे और 12 मई, सन् 1666 को उन्होंने औरंगजेब से दीवान-ए-खास में भेंट की। उस दिन औरंगजेब का जन्म-दिन था और दरबार में शाहजादों, राजाओं और सरदारों को खिलअत बाँटी जा रही थी. पर शिवाजी को नहीं दी गई। दरबार में भी उनके पद व सम्मान के अनुसार उनको ऊँचा स्थान न देकर, उनको केवल पाँच-हजारी मनसबदारों में पीछे की पंक्ति में खड़ा किया गया। जब शिवाजी ने औरंगजेब को भेंट और निछावर अर्पित की तब औरंगजेब ने शिवाजी के स्वागत में और उनकी भेंट के विषय में एक भी शब्द नहीं कहा। इन सब बातों को शिवाजी ने अपना अपमान समझा। वे कुपित और उद्वेलित हो गए। इस पर औरंगजेब ने शिवाजी को नजरबंद कर दिया और उन पर अत्यंत ही कड़ा पहरा बिठा दिया। आगरा में शिवाजी के प्राण खतरे में थे, उनका वध किए जाने की योजना थी। उन्होंने मीरबख्शी तथा अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों के द्वारा धन देकर अपनी मुक्ति के विभिन्न प्रयास किए, पर वे असफल रहे। अंत में 18 अगस्त, 1666 ई. को शिवाजी बड़े साहसी और नाटकीय ढंग से अपनी व्यावहारिक बुद्धि विवेक से आगरा से पलायन कर गए और कुछ महीनों बाद साधु वेश में अपनी राजधानी रायगढ़ पहुँच गए। इससे शिवाजी के यश-गौरव और प्रसिद्धि में अत्यधिक वृद्धि हुई। इसके साथ ही शिवाजी की आगरा यात्रा, औरंगजेब से भेंट, शिवाजी की कैद और उनके दुस्साहसिक पलायन ने मराठों में क्रांति उत्पन्न कर दी। मुगल-मराठा संबंधों में यह निश्चत महत्वशाली मोड़ था। पुरंदर संधि समाप्त हो गई और मुगलों व मराठों में एक गहरी खाई हो गई। यदि आगरा में औरंगजेब शिवाजी से समझौता कर लेता तो वह शिवाजी की सहायता व सहयोग से दक्षिण में मुगल साम्राज्य की सत्ता, शक्ति और सीमा का अधिकतम विस्तार कर सकता था, परंतु औरंगजेब ने ऐसा न करके अपनी दृषित नीति से शिवाजी को साम्राज्य का घोर शत्रु बना दिया।

4.3.4.5. शिवाजी एवं औरंगजेब के मध्य समझौता(1667 ई.)

आगरा से लौटने पर शिवाजी ने लगभग तीन वर्ष तक मुगलों से किसी प्रकार की छेड़-छाड़ न करने की नीति अपनाई। अपने सीमित राज्य और घटे हुए साधनों से शिवाजी मुगलों से युद्ध करने में असमर्थ थे। मुगलों से पुनः संघर्ष करने के लिए शिवाजी को कुछ अविध चाहिए थी जिससे कि वे अपने साधनों व सैन्यशक्ति में वृद्धि कर लें। उधर औरंगजेब भी सीमांत क्षेत्र के कबीलों के उपद्रवों के दमन में व्यस्त था। वह भी दक्षिण की ओर कम ध्यान दे सका था। दोनों पक्ष समझौता चाहते थे। इसलिए सन् 1667 में दक्षिण के तत्कालीन मुगल सूबेदार शाहजादा मुअज्जम के मारफत औरंगजेब और शिवाजी में समझौता हो गया। इसके अनुसार शिवाजी ने मुगल सेवा स्वीकार कर ली, उनको औरंगजेब ने 'राजा' की उपाधि दी और उनके पुत्र संभाजी को मुगल मनसबदार बनाकर मुअज्जम की सेवा में रखा गया। पर यह समझौता लगभग तीन वर्ष तक ही रहा।

4.3.4.6. शिवाजी-मुगल युद्ध

अपनी समुचित शक्ति का संचय करने के बाद शिवाजी ने पुनः मुगल अधिकृत प्रदेशों पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने पूना जिले की सुरक्षा का केंद्र सिंहगढ़ और बाद में पुरंदर, चांदवड़, कल्याण, भिवंडी लोहगढ़, रोहिड़ा आदि को जीतकर उत्तर कोंकण का समस्त प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया और बरार को लूटकर वहाँ के शाही कोष से 20 लाख रुपये प्राप्त किए। मुअज्जम और दिलेर खाँ में परस्पर अधिक ईर्ष्या-द्रेष व मत-विभिन्नता होने के कारण, मुगल सेना शिवाजी के विरुद्ध निश्चयात्मक ढंग से युद्ध नहीं कर सकी।

4.3.4.7. सूरत की द्वितीय लूट और मुगलों की पराजय(अक्टूबर 1670 ई.)

औरंगजेब पर नवीन प्रहार करने के लिए शिवाजी ने दूसरी बार सूरत लूटा इस लूट में लगभग 66 लाख रूपयों का माल शिवाजी के हाथ लगा जिसमें औरंगजेब को भेंट की जाने वाली सोने की एक पालकी भी थी। इस लूट के बाद शिवाजी को रोकने के लिए जो मुगल सेना भेजी गई थी, उसे शिवाजी ने वाणी-डिंडोरी के युद्ध में 17 अक्टूबर, 1670 को बुरी तरह परास्त कर दिया। इस विजय के बाद शिवाजी ने नासिक के पास त्रयंबक दुर्ग तथा औध, पट्टा, रावला, जावला आदि जीत लिए।

4.3.4.8. खानदेश व बरार पर शिवाजी के आक्रमण

अब एक ओर मराठा सेनाएँ नासिक बलगाना क्षेत्र में मुगल किलों को अपने अधिकार में कर रही थीं तो दूसरी ओर मराठा सेनाएँ खानदेश व बरार पर आक्रमण कर उसे लूट रही थीं और लाखों रुपये प्राप्त कर रहीं थीं। अब शिवाजी के धावे और लूट पूर्व में मुगल प्रदेश में बरार में उमरखेड़ा व करंजा से लेकर पश्चिम में खानदेश में नं दूवार तक फैल गए थे। इस क्षेत्र में शिवाजी चैथ भी वसूल करते जाते थे। इन आक्रमणों के समय मराठे सैनिकों ने अनेक मुगल अधिकारियों की जागीरें भी लूटकर तहस -नहस कर वीं।

4.3.5. मुगल-मराठा संबंध (तृतीय चरण)

4.3.5.1. महाबत खाँ और बहादुर खाँ से शिवाजी का संघर्ष

शिवाजी के व्यापक हमलों, लूट्रपाट और मुगल ढुगों व क्षेत्रों में उनके बढ़ते हुए आधिपत्य को रोकने के लिए औरंगजेब ने मुअज्जम के स्थान पर महाबत खाँ को दक्षिण का मुगल सूबेदार नियुक्त किया और उसकी सहायता के लिए बाहदुखाँ को भी भेजा। अब दक्षिण में मराठों से लड़ने के लिए चोटी के चार सेनापित अपनी-अपनी सेनाओं सिहत एकत्रित हो गए। दाऊद खाँ और दिलेर खाँ तो पिहले से ही थे, अब महाबत खाँ और बाद में बहादुर खाँ उनमें सिम्मिलत हो गए। यद्यिप प्रारंभ में महाबत खाँ ने अहिवंत, मारकंड, जावला और अचलिंगरी दुर्ग जीत लिए, पर शिवाजी के विरुद्ध कड़ा अभियान चलाने में उसने कोई उत्साह नहीं दिखाया। वह नृत्य, संगीत व दावतों में ही व्यस्त रहता था और उसके शिविर में लगभग चार-सौ नृत्याँगनाएँ थीं। इसलिए औरंगजेब ने महाबत खाँ को वापस बुलाकर उसके स्थान पर बहादुर खाँ को नियुक्त किया, परंतु शिवाजी ने दिलेर खाँ के नेतृत्व में मुगल सेना को साल्हेर के युद्ध में जनवरी 1672 ई. में बुरी तरह परास्त कर दिया। सन् 1672 में मरहठों, हों और मुगलों के छोटे-छोटे युद्ध चलते रहे। इसी बीच मुगलों ने सिद्दियों की सहायता से तथा अपने जहाजों से शिवाजी से समुद्री युद्ध किया। इसमें शिवाजी के बंदरगाहों व समुद्रीन्तट के नगरों को नष्ट कर शिवाजी के पचास जहाजों को क्षति पहुँचाई। सन् 1673-74 में मुगलों और मराठा सेनाओं में मुठभेड़ें होती रहीं। सन् 1674 के प्रारंभ में शिवाजी ने मुगल सेनानायक दिलेर खाँ को परास्त कर दिया। इस समय पठानों के विद्रोह के कारण औरंगजेब उत्तरी-पश्चिमी

सीमांत क्षेत्र में अधिक व्यस्त था। मुगल सेना भी इस विद्रोह के दमन के लिए दक्षिण से बुला ली गई। फलतः सन् 1674 में बहादुः खाँ शिवाजी के विरुद्ध निष्क्रिय हो गया।

4.3.5.2. शिवाजी के युद्धों के परिणाम

शिवाजी ने पुरंदर की संधि से जो कुछ भी खोया था, आगरा से लौटने के बाद उन्होंने अपने सैनिक आक्रमणों और विजय से उससे कहीं अधिक प्राप्त कर लिया था। पुरंदर की संधि से जो दुर्ग उन्होंने मुगलों को दिए थे, उन पर उन्होंने पुनः अधिकार कर लिया। दक्षिण कोंकण में उन्होंने रत्नागिरी जिले को जीत लिया, समद्री तट पर व हुबली के ऊपरी क्षेत्र पर आक्रमण कर वहाँ अपनी धाक जमा दी। उत्तरी कोंकण में रामनगर तक के क्षेत्र को और नासिक क्षेत्र में बलगाना तक के प्रदेश को अपने प्रभुत्व में ले लिया। इस प्रकार सन् 1674 में शिवाजी के अधीन एक विस्तृत अखंड प्रदेश आ गया था।

4.3.5.3. बहादुर खाँ से समझौते की चर्चा

जब शिवाजी बीजापुर राज्य के कारवार में अपने सैनिक अभियान में संलग्न थे, तब वे मुगल सूबेदार बहादुर खाँ से समझौते की चर्चा कर उसे भुलावे में रखना चाहते थे। इसलिए शिवाजी ने बहादुर खाँ के पास समझौते का एक प्रस्ताव भेजा, जिसके अनुसार शिवाजी सम्राट औरंगजेब को 17 दुर्ग देने को तैयार हो गए। औरंगजेब ने भी नई शर्तों को मान लिया। पर जैसे ही शिवाजी का सैनिक अभियान समाप्त हुआ और उन्होंने पौंडा और कोल्हापुर के दुर्गों पर तथा उसके आसपास के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया, उन्होंने समझौते की शर्तें निश्चित करने आये हुए मुगल प्रतिनिधि मंडल को लौटा दिया। इससे बहादुर खाँ की दशा अपमान और लज्जा से खराब हो गई।

4.3.5.4. नेताजी पालकर और शिवाजी का मिलन

जब बहादुर खाँ दक्षिण में मुगल हितों की रक्षा करने में असमर्थ रहा तब औरंगजेब ने नेताजी पालकर को, जो मुसलमान बन गया था और उत्तर में सम्राट की सेवा में था, शिवाजी के विरुद्ध दक्षिण में भेजा, क्योंकि वह दक्षिण की भौगोलिक परिस्थितियों से और वहाँ के प्रमुख अधिकारियों व राजाओं से पूर्ण परिचित था। पर सन् 1676 में नेताजी पालकर ने दक्षिण पहुँचने पर मुगल सेना का साथ छोड़ दिया और शिवाजी से जाकर मिल गया और मुगलों के सैनिक अभियानों का सारा भेद उनको बता दिया।

4.3.5.5. शिवाजी का बहादु र खाँ से समझौता

जब सन् 1676 में शिवाजी ने दक्षिण में सैनिक अभियान की योजना बनाई तब वे नहीं चाहते थे कि उनकी अनुपस्थिति में मुगल सेना उनके प्रदेश पर आक्रमण करे। इसलिए उन्होंने मुगल सेनापित बहादुर खाँ से समझौता किया कि जब शिवाजी दक्षिण में कर्नाटक में होंगे, तब वह उनके राज्य को कोई क्षति नहीं पहुँचाएगा। इसके बदले में शिवाजी मुगलों के विरुद्ध युद्ध में बीजापुर की सहायता नहीं करेंगे।

4.3.5.6. शिवाजी द्वारा मुगलों के विरुद्ध बीजापुर की सहायता

दरबार में विभिन्न दलों की तीव्र ईर्ष्या और प्रतिद्वंद्विता से तथा कुछ सरदारों का मुगलों के पक्ष में हो जाने से व बीजापुर सुल्तान के अवयस्क होने से बीजापुर की शक्ति क्षीण हो गई थी। ऐसे पतनोन्मुखी बीजापुर को जीतने के लिए जब मुगल सेना ने दिलेर खाँ के नेतृत्व में आक्रमण किया और बीजापुर का घेरा डाल दिया, तब बीजापुर के वजीर सिद्दी मसूद ने शिवाजी से सहायता की याचना की शिवाजी जानते थे कि यदि बीजापुर पर मुगलों का अधिकार हो जाएगा तो मुगल और बीजापुर संयुक्त रूप से उनके दमन व नाश के लिए पूर्ण प्रयास करेंगे। इसलिए शिवाजी बीजापुर की सहायता के लिए तैयार हो गए और उन्होंने दस सहस्र अश्वारोही सेना तथा दस सहस्र बैलों पर लदा खाद्यान्न बीजापुर भेजा। इसके साथ-साथ मुगल सेना का ध्यान बीजापुर से हटाने के लिए शिवाजी ने नवंबर 1679 में मुगल प्रदेशों पर आक्रमण

कर उनको लूटा, विशेष कर औरंगाबाद के पास जालना और खानदेश के क्षेत्र को। शिवाजी की इस सामयिक सहायता से मुगलों ने बीजापुर का घेरा उठा लिया।

4.3.5.7. संभाजी का मुगल-पक्ष में जाना

संभाजी की कुवृत्तियाँ, अनैतिकता और अवांछनीय व्यवहार से शिवाजी ने उसे नजरबंद कर दिया था। इससे कुपित होकर संभाजी रात्रि को पलायन कर दिलेर खाँ के पास मुगल शिविर में चला गया। इस पर औरंगजेब ने संभाजी को सात हजार का मनसबदार नियुक्त किया और उसे ''राजा'' को उपाधि दी। संभाजी के इस विद्रोह से शिवाजी को अत्यंत दुःख और मार्मिक वेदना हुई। अब दिलेर खाँ ने संभाजी को लेकर शिवाजी के अधीनस्थ दुर्गों और प्रदेशों पर आक्रमण किया, विशेषकर भूपालगढ़ तिकोटा, अठनी आदि पर। मार्ग में और इन नगरों में मुगल सेनाओं ने अमानुषिक अत्याचार किए, नगरों कस्बों, व गाँवों में आगजनी और लूट्रपाट की और अनेक निरपराधों को मौत के घाट उतार दिया। इसी बीच तीव्र संदेहशील वृत्ति के औरंगजेब को यह भय हो गया कि संभाजी का मुगल शिविर में दिलेर खाँ के साथ होने में भी शिवाजी की कोई गंभीर व गुप्त चाल हो सकती है। इसलिए उसने संभाजी को बंदी बनाकर दिल्ली भेज देने के आदेश दिए। जब संभाजी को इसकी सूचना मिली तब वह चुपचाप 20 नवंबर, 1679 को मुगल शिविर से पलायन करके पन्हाला दुर्ग में आ गया। बाद में यहाँ शिवाजी ने उससे भेंट की और उसे समझाया-बुझाया।

4.3.6. शिवाजी-औरंगजेब की परस्पर नीतियों का मूल्यां कन

4.3.6.1. शिवाजी की सामरिक निपुणता

शिवाजी में विलक्षण सैनिक प्रतिभा तथा वीर योद्धा व कुशल सेनापित के गुण थे। वे दूरदर्शी राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ ही नहीं थे, अपितु वे सामिरक नीति में भी निपुण थे। वे शत्रु की दुर्बलताओं, अभावों और समस्याओं को भलीभाँति समझ कर उनका लाभ उठाकर, विलक्षण तीव्रता और दुस्साहस से शत्रु पर आक्रमण कर सफलता प्राप्त कर लेते थे। मुगल सम्राट और उसके सेनापतियों के विरुद्ध शिवाजी ने यही नीति अपनाई। जब औरंगजेब उत्तरी-पश्चिमी सीमांत क्षेत्र में अफगानों के विद्रोह के दमन में अधिक व्यस्त था और दक्षिण में मुगल सेनाएँ उत्तरी-पश्चिमी सीमांत क्षेत्र में भेज दी गई थीं, तब शिवाजी ने इसका लाभ उठकर दक्षिण के मुगल प्रदेशों पर आक्रमण किए और विजयश्री प्राप्त की। दक्षिण के मुगल सूबेदारों और सेनापतियों की दुर्बलताओं और अकर्मण्यता, उनकी विलासिता और पारस्परिक ईर्ष्या-द्रेष का भी लाभ उठाकर शिवाजी ने मुगल प्रदेशों पर आक्रमण कर सफलता प्राप्त की। शाहजादे मुअज्जम, शाइस्ता खाँ, दिलेर खाँ, बहादुर खाँ, महाबत खाँ आदि की कमजोरियों और पारस्परिक फूट का लाभ शिवाजी ने उठाया। शिवाजी के विरुद्ध भेजे गए इन सेनापतियों में सैनिक अभियान की निश्चितता और दृढता का अभाव था। वे निष्क्रिय और निकम्मे थे। शाइस्त खाँ सुस्त, आलसी, और असावधान सेनापति था। मुअज्जम कमजोर और मृदुल स्वभाव का था। उसमें सेनापति की दृढ़ता का अभाव था। मुअज्जम और दिलेर खाँ में पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, वैमनस्य, फूट और मतविभिन्नता इतनी अधिक बढ़ गई कि दिलेर खाँ को अपनी स्वयं की सुरक्षा के लिए दक्षिण से गुजरात भागना पड़ा। महाबत खाँ इतना अकर्मण्य और विलासी था कि उसके सैनिक शिविर में आमोद-प्रमोद का बाहुल्य था। वहाँ काबुल की चार सौ नृत्याँगनाएँ, उसकी रिसकता और इंद्रियलोल्पता को तुष्ट करती थीं। बहादुर खाँ सेनापित और सूबेदार के रूप में अयोग्य, अकर्मण्य और भ्रष्ट था। उसमें किंचित भी राजनीतिज्ञता व

दूरदर्शिता नहीं थी। इसलिए शिवाजी ने इसका लाभ उठाकर उससे समझौते करने का दो बार बहाना किया और अपने हितों की वृद्धि की।

4.3.6.2. शिवाजी के प्रति मुगल नीति

शिवाजी के प्रति मुगल नीति में न तो कोई दुढ़ता व निश्चितता थी, और न उसका एक स्वरूप ही। समयानुसार वह नीति ढुल-मुल होती रही। कभी शिवाजी को मुगल सम्राट के अधीन सेवानिष्ट करद जागीरदार मानकर उनको 'राजा' की उपाधि और भेंट दी जाती और उनके पुत्र संभाजी को मुगल मनसबदार नियुक्त किया जाता, तो कभी शिवाजी के विरुद्ध कड़ा सैनिक अभियान छेड़कर उन पर तीव्रगति से विशाल पैमाने पर आक्रमण किया जाता। यह ढुल-मुल और अनिश्चित नीति मुगल सेनापतियों की मत-विभिन्नता, फूट, ईर्ष्या-द्रेष से भी अधिक प्रभावित होती रही। शाइस्ता खाँ और जसवंत सिंह की पारस्परिक शत्रुता ने पूना में शिवाजी के आक्रमण का मार्ग प्रशस्त किया। शाहजादे मुअज्जम और दिलेर खाँ की पारस्परिक कटता और प्रतिहिंसा के कारण शिवाजी मुगल प्रदेशों पर सरलता से आक्रमण कर सके। शिवाजी के विरुद्ध अभियान में बहादुर खाँ और दाऊद खान न तो कभी मित्र हो सके और न उनमें मतैक्य रहा। कुछ मुगल सेनानायक तो शिवाजी की वीरता और दुस्साहस के कार्यों और विजय से इतने अधिक प्रभावित थे कि जब मुगलों ने पुरंदर दुर्ग का घेरा डाल रखा था, तब दुर्ग में घिरे सैनिकों के लिए खाद्यान्न और कुमुक मराठों की ओर से भेजी जाती थी। मुगल सेनानायक शुभकरण बुन्देला ने इसमें न तो कोई व्यवधान उत्पन्न किया और न उनको रोककर छीना ही। उसने तो मराठों की कुमुक के प्रति उपेक्षा की। जब जालना में शिवाजी पर मुगल आक्रमण होने वाला था, तब मुगल सेनानायक केशरसिंह राठौड़ ने शिवाजी को इसकी पूर्व सूचना दे दी थी। जब संभाजी विद्रोह कर मुगल शिविर में आ गया और औरंगजेब ने उसे बंदी बनाकर दिल्ली भेजने के आदेश दिया, तब मुगल सेनानायक ने ही इसकी पूर्व सूचना संभाजी को दे दी और वह मुगल शिविर से सफलतापूर्वक पलायन कर गया। जयसिंह जैसा कर्तव्यनिष्ठ व स्वामिभक्त सेनापित भी शिवाजी के प्रति उदार व सहिष्णु रहा। उसने शिवाजी के अस्तित्व का पूर्णरूपेण उन्मूलन नहीं किया, अपितु उनसे कुछ दुर्ग लेकर बीजापुर राज्य के कोंकण व बालाघाट प्रदेश में उनको आक्रमण कर विजय करने की छूट दे दी। जयसिंह के पुत्र रामसिंह ने भी आगरा में शिवाजी की खुब सहायता की और औरंगजेब की यह दुढ़ धारणा थी कि आगरा से शिवाजी के पलायन में रामसिंह का हाथ था।

दक्षिण में निरंतर युद्धों व पराजय से मुगल सैनिक और सेनानायक निराश व हतोत्साहित हो गए थे। युद्धजनित संकटों ने उनके धैर्य व साहस को शिथिल कर दिया। युद्धों और आक्रमणों के प्रति उनकी रुचि और उत्साह मंद हो गया। अनेक सैनिक और मनसबदार युद्ध के जीवन से इतने अधिक ऊब गए थे कि वे दक्षिण से उत्तर अपने घरों को लौट आने के लिए अधिक उत्सुक और उतावले थे। इन सैनिक परिस्थितियों से भी मुगल नीति प्रभावित रही। फलतः शिवाजी के प्रति मुगल नीति अस्पष्ट, निश्चित और दुल-मुल रही। उसका स्वरूप भी एकसा नहीं था। समय के अनुसार वह परिवर्तित भी होती रही।

4.3.7. मुगलों की असफलता और मराठों की सफलता के कारण

औरंगजेब अपने जीवन के अंतिम वर्षों में अत्यंत विशाल साम्राज्य का स्वामी बन गया था। जीवन के इन्हीं अंतिम वर्षों में उसने मराठों से सर्वाधिक कड़ा और कठोर संघर्ष किया। उसके पास सैनिक आक्रमणों और युद्ध के साधन मराठों की अपेक्षा कहीं अधिक थे, परंतु जीवन के अंतिम वर्षों में निरंतर घोर संघर्ष और भीषण युद्ध करने के बाद भी औरंगजेब मराठों के विरुद्ध सफलता प्राप्त नहीं कर सका। उसकी एकांगी और संकुचित भावना कट्टर नीतियों, असहिष्णुता के कार्यों, निरंतर सैनिक आक्रमणों

और भीषण युद्धों के परिणाम स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगे थे। उसके शासन के अंतिम चरण में जनता जीवन की आवश्यक वस्तुओं और सुरक्षा से वंचित हो गई थी। समस्त साम्राज्य में व्याप्त अराजकता और अव्यवस्था फैल गई थी। साम्राज्य के स्थायित्व और शक्ति की जड़ें हिल गई थीं, समृद्धि खोखली हो गई थी, साम्राज्य की सैन्य-शक्ति क्षीण और कुंठित हो गई थी और निराशा एवं विफलता स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगी थी। दक्षिण में औरंगजेब ने अपने इस्लामी राज्य तथा इस्लाम-धर्म के विकास और प्रसार के लिए खूब कार्य किए। उसने कुछ विशिष्ट मराठा परिवारों और उनके सदस्यों को मुसलमान बना लिया। इस्लाम के दृष्टिकोण से औरंगजेब सफल सम्राट माना जा सकता है। रूढ़िवादी मुसलमान उसकी उपलब्धियों और सफलताओं की प्रशंसा करते रहे। परंतु धार्मिक मतभेदों और सांप्रदायिक तत्वों को उभारकर संकीर्ण असहिष्णु धार्मिक नीति के आधार पर एक संयुक्तगौरवशाली एवं बलशाली भारत का निर्माण नहीं किया जा सका। इस दृष्टि से औरंगजेब की धार्मिक निष्ठा, धार्मिक उमंग और उत्साह, उसके जीवन में अभिशाप प्रमाणित हुए। उसके गुण उसके दोषों की क्रूरता से और विफलता से ढक गए। वह अपने जीवन के अंतिम दिनों में अपनी असफलताओं को स्पष्ट रूप से देखता रहा और निराशा एवं निरूत्साह, अभिशाप एवं पश्चाताप की गहरी कालिमा से उसका हृदय भर गया। औरंगजेब असफलताओं का प्रतीक बन गया। दिक्षण में मराठों के संघर्ष ने तो साम्राज्य और सम्राट दोनों को ही क्षत-विक्षत कर समाप्त कर दिया।

निःसंदेह अपनी इस असफलता का कारण स्वयं औरंगजेब तो था ही, पर कुछ विशिष्ट परिस्थितियाँ भी थी। स्वयं औरंगजेब को उसकी दुर्बलता और दोषों के कारण इस असफलता के लिए उत्तरदायी ठहराना न्यायसंगत नहीं होगा। कुछ ऐसी भी परिस्थितियाँ थीं, जिनकों मराठों ने निर्मित किया था और उन पर नियंत्रण पा जाना औरंगजेब की शक्ति और साधनों के बाहर की बात थी। इन परिस्थितियों ने औरंगजेब की पराजय में बड़ा योगदान दिया। यह कहानी भी कि मराठे अपने ही बलबूते पर, अपनी ही शक्ति और साधनों से, अपने ही सामरिक गुणों और रणकौशल से औरंगजेब के विरुद्ध विजयी हुए, न्यायसंगत नहीं होगा। औरंगजेब की कुछ दूषित संकीर्ण नीतियों के कुछ ऐसे परिणाम भी हुए जो मराठों के लिए वरदान प्रमाणित हुए, जिन्होंने मराठों की विजय और उपलब्धियों का मार्ग प्रशस्त किया। औरंगजेब की विफलता और मराठों की सफलता के कारण और परिस्थितियाँ परस्पर एक दूसरे से संबंधितहैं। इनका विश्लेषण अधोलिखित है -

4.3.7.1. महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति और वातावरण

महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक परिवेश और वातावरण मराठों की सफलता के लिए विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुए। महाराष्ट्र उत्तरी भारत से दूर दक्षिण में था। उस समय आवागमन और यातायात के दुर्तगामी साधन और राजमार्ग भी समुचित रूप से विकसित नहीं हुए थे। ऐसी दशा में उत्तरी भारत से निरंतर मुगल सेनाएँ महाराष्ट्र के ऊबड़-खाबड़ पर्वतीय क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार शीघ्र भेजते रहना कुकर कार्य था। महाराष्ट्र प्रदेश सुरक्षा के प्राकृतिक साधनों से संपन्न था। वहाँ की पर्वतीय शृंखलाओं में अनेक पर्वतीय द्वां थे, जहाँ से मराठों सफलता से आक्रमणकारियों का विरोध कर उन्हें पीछे ढकेल दे सकते थे। मराठों के द्वां इतनी कठिन और द्वांम पर्वत -श्रेणियों पर बने हुए थे कि मुगल सेनाओं को वहाँ तक पहुँचने और युद्ध करने में अत्यधिक कठिनाई होती थी। मुगल सेनापितयों को महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति और मराठों के सुरक्षा स्थानों का कोई ज्ञान नहीं था। इसलिए वे मराठों पर विजय प्राप्त करने की कोई निश्चित योजना नहीं बना सकते थे। इसके विपरीत मराठे अपने पर्वतीय क्षेत्रों से भलीभाँति अवगत होने से वे मुगलों के विरुद्ध संगठित रूप से योजनाबद्ध ढंग से युद्ध कर सकते थे।

महाराष्ट्र का पठारी प्रदेश, ऊबड़-खाबड़ पर्वतीय क्षेत्र और अभेद्य दुर्गों की शृंखलाएँ मराठों की सुरक्षा और उनकी गुरिल्ला पद्धति के लिए सबसे अधिक उपयुक्त थे।

4.3.7.2. मराठों का छापामार रण-कौशल

महाराष्ट्र के अधिकांश क्षेत्रों में अत्यंत ऊबड़-खाबड़ तथा ऊँची-नीची जमीन रही है। मुगल सेना केवल मैदानी युद्ध करने की अभ्यस्त थी। उसके लिए महाराष्ट्र जैसे अपिरचित खुंम पर्वतीय प्रदेशों में युद्ध करने का अभ्यस्त थी। उसके विपरीत मराठे खुंम पर्वतीय प्रदेशों में युद्ध करने में पूर्णतया अभ्यस्त थी। मराठे छापामार रण-प्रणाली का उपयोग करते थे जो उनके भौगोलिक वातावरण और पिरिस्थितियों के पूर्णतया अनुकूल थीं। मराठे सैनिक गिरोह बनाकर शत्रु की टोह में इधर-उधर घूमा करते थे और अवसर आने पर गुरिल्ला युद्ध प्रणाली से मुगल शिविरों पर सहसा आक्रमण करते और उनकी युद्ध-सामग्री तथा खाद्यान्न लूटकर भाग जाते थे। वे मुगलों के अधिकृत पर निर्वल और असुरक्षित स्थानों पर आक्रमण करते थे और सामिरक तथा रणोपयोगी स्थानों पर वे अधिकार कर लेते थे। मुगल सेना के रसद के काफिलों पर वे बिजली की तीव्रगित से टूट पड़ते थे और उनको लूट लेते थे। औरंगजेब के लिए मराठों से युद्ध करना ऐसा ही था जैसे हवा से लड़ना, या पानी पर तलवार चलाना। क्योंकि मराठे हवा और पानी की लहरों की भाँति बिखर जाते थे, पर जैसे ही औरंगजेब का दबाव कम होता था, पुनः वे एकजुट व संगठित हो जाते थे। वायु के समान वे सर्वव्यापक प्रतीत होते थे। वे युद्ध का तो केवल दिखावा करते थे, पर वे अचानक हमला करते, लूटते और अपने पहाड़ी सुरक्षित स्थानों में भाग जाते थे। इससे मुगल सेना पंगु हो गई थी। ऐसी दशा में मुगल सैनिकों के लिए मराठा सैनिकों का सामना करना कुकर ही नहीं था, अपितु उनके सामर्थ्य के बाहर की बात थी।

4.3.7.3. मराठों में एकता और राष्ट्रीय भावना

दक्षिण में मरहठों के विरुद्ध औरंगजेब का युद्ध करने का लक्ष्य साम्राज्यवादी और सांप्रदायिक था। वह निरंतर इस बात का प्रयास करता रहा कि दक्षिण में हिंदू राज्य और हिंदुत्व के अवशेष समाप्त कर दिए जाएँ और वहाँ इस्लामी राज्य व धर्म का अधिकाधिक प्रसार हो। अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए औरंगजेब ने केवल अपार धन और विपुल सैन्य-शक्ति का उपयोग ही नहीं किया, शत्रु के व्यक्तियों को धन व पद के प्रलोभन नहीं दिए, अपित नैतिक बल और न्याय की भी घोर उपेक्षा की। इसके विपरीत शिवाजी और उनके उत्तराधिकारी राजाराम और ताराबाई ने तथा उनके मन्त्रियों और सेनानायकों ने औरंगजेब के साथ हए संघर्ष में स्वतंत्र हिंदू राज्य स्थापित करने का हिंदू धर्म और संस्कृति की रक्षा करने का, महाराष्ट्र की एकता और संगठन बनाए रखने का एवं नवीन स्फूर्ति वाला राष्ट्र निर्माण करने का श्रेष्ठ आदर्श और उच्च लक्ष्य रखा। राजाराम और ताराबाई ने औरंगजेब के विरुद्ध स्वतंत्रता संघर्ष करने का धर्म-युद्ध करने का नारा बुलंद किया उन्होंने धर्म, स्वतंत्रता और राष्ट्रीय भावना को प्रेरणा दी। मराठों में नवीन प्राण फूँक दिए। इससे मराठे मुगल अत्याचारों से, विधर्मी शासन से, अपनी जाति, धर्म और देश को मुक्त करने के लिए कृत-संकल्प हो गए। वे मुगलों के विरुद्ध युद्ध करने में अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए उद्यत हो गए थे। मराठे जो युद्ध कर रहे थे, वह राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता की भावना से ओतप्रोत हो गया। उनके युद्ध ने राष्ट्रीय संग्राम या लोकयुद्ध का रूप ले लिया। वह जनता का संघर्ष बन गया जिसके पीछे राष्ट्र की समस्त शक्ति थी। कोई भी सम्राट या सेना चाहे वह कितनी ही शक्तिशाली, अपार साधन-संपन्न और दृद्ध-संकल्पी क्यों न हो, कड़े स्वतंत्रता संघर्ष और कठोर युद्ध के लिए तुली हुई वीर जाति को जीत नहीं सकती। औरंगजेब के लिए ऐसी वीर और कृत-संकल्प जाति और उसके स्वतंत्रता युद्ध को समाप्त कर सफलता प्राप्त करना असंभव था।

4.3.7.4. मराठों का कुशल नेतृत्व और संचालन

मराठों में शिवाजी ने ही नहीं, अपितु राजाराम और ताराबाई ने भी यह दृढ़-आत्मविश्वास उत्पन्न कर दिया कि वे विदेशियों, विधर्मियों से अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र कराने की अटूट क्षमता रखते हैं। ताराबाई ने तो मराठों में औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध जारी रखने के लिए नवीन उत्साह और एकता का संचार किया। उसने मराठों को बड़ी कुशलता और दृढ़ता से संगठित किया और उसने जनता में भी साहस, धैर्य और नवीन जीवन फूँका। मराठों को एक निर्दिष्ट योजना के अनुसार अनुशासनबद्ध रहकर औरंगजेब के विरुद्ध राष्ट्रीय युद्ध करने के लिए ताराबाई प्रेरित करती रहीं। उसने अपूर्व साहस और अदम्य उत्साह कि साथ, विलक्षण संगठनात्मक शक्ति और अनूठे रणकौशल से मराठों के स्वतंत्रता संग्राम का सफलतापूर्वक संचालन किया। ताराबाई मराठों के संघर्ष की आत्मा बन गई। उसके सेनानायक और सामंत संताजीघोरपड़े और सेनापित धन्नाजी जाधव ने जो स्वतंत्रता संग्राम के लिए जोश व ओज से भरे हुए थे, और जिन्हें छापामार युद्ध प्रणाली का श्रेष्ठतम अनुभव था अपनी रणनीति और विजयों से मराठों की सफलता का मार्ग प्रशस्त किया। इन सबके विलक्षण और साहसी प्रयासों और युद्धों ने अल्प अविध में ही एक नवीन महत्तर महाराष्ट्र को पुनर्जीवित कर दिया। औरंगजेब अपनी विघटित और क्षीण होती हुई शक्ति से इसको समाप्त नहीं कर सका।

4.3.7.5. मराठों का अदम्य साहस और दृढ़-संकल्प

ताराबाई और उनके सेनानायकों के विलक्षण संगठन, अनूठे कृत्य और स्वाधीनता के लक्ष्य ने मराठों को अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए, सर्वस्व त्यागने हेतु दृद्ध-संकल्पी कर दिया। उनमें अपने जीवन को निछावर करने की तथा त्याग व बलिदान करने की तीव्र लालसा उत्पन्न हो गई। उनके शौर्य, दृद्ध-संकल्प, आत्मविश्वास और अंतर्निहित सामरिक संचेतना ने मुगलों की शक्ति छिन्न-भिन्न कर दी।

4.3.7.6. औरंगजेब का स्वभाव और दृषित नीतियाँ

औरंगजेब का दूटता हुआ व्यक्तित्व, उसका संदेहशील स्वभाव, उसकी धार्मिक संकीर्णता और कहरता तथा दूषित नीतियाँ औरंगजेब की विफलता के लिए उत्तरदायी हैं। निःसंदेह कुछ परिस्थितियाँ ऐसी थीं जिन पर औरंगजेब का नियंत्रण नहीं था, पर इन्होंने उसकी विफलता में बडा योगदान दिया। फिर भी अपनी विफलता के लिए औरंगजेब स्वयं और उसकी नीतियाँ भी उत्तरदायी हैं। उसके स्वभाव और दूषित नीतियों ने भी मराठों की विजय का मार्ग प्रशस्त किया। इनका विश्लेषण अधोलिखित है -

(अ) औरंगजेब का टूटता हुआ व्यक्तित्व

औरंगजेब मराठों से पच्चीस वर्ष तक संघर्ष करता रहा। इस दीर्घकालीन युद्ध से सैनिक शिविर के कष्टप्रद और क्लांत जीवन से औरंगजेब का शरीर जर्जर हो गया था। वह प्रतिदिन वृद्ध होता गया और उसमें वह ओज और शक्ति नहीं रह गई थी जो उसमें पहले थी। उसकी महत्वाकांक्षाएँ विफल हो चुकी थीं, उसकी आशाएँ छिन्न-भिन्न हो गई थीं। अत्यधिक लंबे संघर्ष में औरंगजेब पराजित व्यक्ति बन गया और उसका फौलादी व्यक्तित्व गहरी चिंता, भारी थकावट, बढ़ते हुए मानसिक तनाव और जीवन स्रोत को शुष्क करने वाली बीमारी की चोट से टूटने लगा था। वह समस्त दुश्चिताओं और मनोव्यथाओं से क्षत-विक्षत हो गया था। ऐसी निरंतर बिगड़ती हुई प्राणघातक शारीरिक और मानसिक दशा में मराठों के विरुद्ध फैलते हुए युद्धों में विजय प्राप्त करना औरंगजेब के लिए असंभव हो गया था।

(ब) औरंगजेब की संदेहशील प्रवृत्ति

औरंगजेब अपने सभी पुत्रों के प्रति संदेहशील था और उनकी गतिविधियों से अवगत होने और उनको नियंत्रित करने के लिए औरंगजेब ने उनके चारों ओर गुप्तचर लगा रखे थे। उनको प्रशासनसंचालन और युद्धों के लिए समुचित रूप से शिक्षित नहीं किया गया था। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि वे औरंगजेब को सहायता देने की अपेक्षा और उत्तरदायी कार्यों के भार को संभालने की अपेक्षा, उसकी आज्ञा का विरोध करते थे और वे उसकी स्पष्ट घोषित नीति के विरुद्ध कार्य करते थे औरंगजेब की धारणा थी कि वे उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचने के इच्छुक रहते थे। शाहजादा अकबर और कामबख्श इसके उदाहरण हैं। इस संदेहशील प्रवृत्ति के शिकार औरंगजेब के सेनापित भी होते थे। औरंगजेब ने दक्षिण विजय का उत्तरदायित्व किसी एक सेनापित को नहीं सौपा। वह अपने सेनापितयों को प्रायः स्थानांतरित करता रहता था। फलतः मुगल नीति और युद्ध की योजनाओं में एकरूपता और स्थिरता नहीं रह पाती थी। इसका दूषित परिणाम यह होता था कि मुगल सेनापित औरंगजेब के आदेशों की उपेक्षा करते थे और शत्रु से भी अपने स्वार्थ-हित में मिल जाते थे। जिंजी के घेरे के समय प्रसिद्ध मुगल सेनापित जुल्फिकार खाँ ने ऐसा ही किया।

(स) औरंगजेब की धर्मांधता और असहिष्णुता

औरंगजेब की कट्टर-धर्मांधता और असिहण्णुता की नीति के कारण उत्तरी भारत में जाटों, सिक्खों और सतनामियों के विद्रोह हुए, शियाओं और सुन्नियों के झगड़े भी हुए। औरंगजेब के संकुचित दृष्टिकोण और दूषित राजनीति के कारण राजपूतों से दी र्घकालीन संघर्ष हुए तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमांत क्षेत्र में अनेक युद्धप्रिय कबीले के लोगों ने दीर्घकाल तक औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह किए। इनको कुचलने के अनेक प्रयत्नों में औरंगजेब सेनासिहत उलझा ही रहा। इसिलए वह मराठों के विरुद्ध अपनी संपूर्ण सैनिक शक्ति का उपयोग नहीं कर सका और अंत में विफल हो गया।

(द) संकीर्ण राजपूत नीति

औरंगजेब ने अपनी संपूर्ण धर्मांधता और संकीर्ण राजनीति के कारण राजपूतों को अपना प्रबल शत्रु बना लिया। इसलिए वह दक्षिण में मराठों के विरुद्ध दीर्घकालीन संघर्ष और युद्धों में राजपूत नरेशों, सैनिकों और सामंतों के संपूर्ण सैनिक और राजनीतिक सहयोग और सहायता से वंचित रहा।

(इ) औरंगजेब की मूर्खतापूर्ण और विवेकहीन दक्षिण नीति

औरंगजेब ने अपने साम्राज्य के प्रसार के लिए ऐसी मूर्खतापूर्ण विवेकहीन नीति अपनाई जो उसकी विफलता का सबसे बड़ा कारण बनी। औरंगजेब लगभग पच्चीस वर्षों तक दक्षिण भारत में निरंतर सैनिक अभियान, आक्रमण और युद्ध करता रहा और वहाँ उसने अपनी संपूर्ण सैनिक और आर्थिक शक्ति दाँव पर लगा दी। इससे औरंगजेब को अपार धन व जन की क्षति हुई। औरंगजेब ने दक्षिण में बीजापुर और गोलकुंडा के स्वतंत्र राज्यों के अस्तित्व को समाप्त कर उनको मुगल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। इन दोनों सल्तनतों का विनाश एक राजनीतिक भूल थी, धार्मिक मूर्खता थी और एक अनुचित कदम था। यह साम्राज्य के लिए घातक प्रमाणित हुआ। इन राज्यों के अपदस्थ सैनिकों के कुछ झुंड तो मराठों से जा मिले, जिससे मराठों की सैनिक शक्ति अधिक बढ़ गई और वे मुगल प्रदेशों में दूर-दूर तक छापे मारने लगे। इन अपदस्थ सैनिकों के अनेक झुंड स्वयं भी दक्षिण के विभिन्न मुगल इलाकों को उन्मुक्त और स्वच्छंद रूप से लूटने लगे थे। इससे अराजकता और अव्यवस्था बढ़ती चली गई।

बीजापुर और गोलकुंडा के राज्य मराठों को नियंत्रित और प्रतिबंधित किए हुए थे। मुगलों और मराठों के बीच ये दीवार के सामान थे। परंतु इनके मुगल साम्राज्य में विलीन कर दिए जाने के बाद मराठों पर कोई दृढ़ रोक नहीं रही। अब मराठों की नवोदित प्रबल शक्ति और सत्ता का भीषण संघर्ष सीधा औरंगजेब से हो गया। उनका प्रबल विरोध और तीव्र संघर्ष उत्तरोत्तर बढता गया।

(फ) मुगल सेना की अनुशासनहीनता, दु र्बलता और नैतिक पतन

औरंगजेब के सैनिकों में पहले जैसा जोश, उमंग और उत्साह नहीं रहा था, उनमें चारित्रिक बल भी नहीं बच पाया था। उन्हें मराठों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए, उत्तेजित और प्रोत्साहित करने के लिए कोई श्रेष्ठ आदर्श भी नहीं रखे गए थे। दिक्षण में मुगल सैनिक सुस्त, विलासी और अनैतिक हो गए थे। उनका चिरित्र, रणकौशल और कार्यक्षमता क्षीण हो गए थे और वे अनुशासन हीन हो गए थे। जितने मुगल सैनिक युद्ध में लड़ने के लिए जाते थे, उससे भी कई गुना अधिक लोग उनकी देखभाल करने, उनकी सुख-सुविधा और मनोरंजन के लिए उनके साथ जाते थे। उन्हें युद्ध में विजय करने की अपेक्षा अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधा का ध्यान अधिक रहता था। वे स्वयं युद्ध प्रारंभ करने और अग्रसर होने की अपेक्षा शत्रु के आक्रमण की प्रतिक्षा करते थे। उनकी स्वामिभक्त, राजिनष्ठा और युद्धकौशल क्षीण हो गया था। धन के प्रलोभन और रिश्वत में सैनिक और अधिकारी शत्रु से मिल जाते थे। मुगल सैनिक शिविरों में चिरत्रहीन स्त्रियों, नर्तिकयों व दासियों का तथा विलास व व्यसन की सामग्री का बाहुल्य रहता था। दिक्षण में मुगल सैनिक शिविर और छावनियाँ उत्तर भारत की विशालतम दूकानें बन गई थीं जहाँ उत्तर भारत की विभिन्न प्रकार की विलास और ऐश्वर्य की सभी सामग्री उपलब्ध होती थी। समस्त मुगल सैनिक शिविर उत्तरी भारत का चलता-फिरता शहर-सा प्रतीत होता था जो अपने युद्ध की अपेक्षा रंगरेलियों, उत्सवों, समारोहों व दावतों के लिए अधिक प्रसिद्ध हो गया था।

जो मुगल शाहजादे मराठों के विरुद्ध भेजे जाते थे, वे विलासी, इंद्रिय-लोलुप और व्यसनी होते थे। अनेक मुगल सेनानायक तलवार चलाने वाले वीर और साहसी योद्धाओं की अपेक्षा दिखावटी और शौकीन रह गए थे। वे भारी कवचों के भार से दबे हुए, आरामदेह-सजी सजायी जीनों पर मखमल गाड़ियों, छोटी-छोटी घंटियों और आभूषणों से सजे सजाए अश्वों पर बैठे होते थे तथा जुलूस और समारोहों की भाँति सजे हुए व शान से चलते थे, जबिक उन्हें कड़ी युद्ध की वेशभूषा पहनना चाहिए था और युद्ध के लिए सदा तैयार रहना चाहिए था। इसके अतिरिक्त मुगल सेनानायक और मनसबदार भिन्न-भिन्न वर्गों से संबंधित होने के कारण परस्पर झगड़ते भी थे। सैनिक अभियानों और युद्धों के समय उनमें परस्पर सहयोग मतएकता और समन्वय का अभाव था। सैनिक अनुशासन और नियंत्रण शिथिल हो गया था।

सैनिक अभियानों, दुर्गों के दीर्घकालीन घेरों और अर्थहीन युद्धों में औरंगजेब का अत्यधिक धन व्यय हो गया था और शाही कोष- रिक्त हो गया था। औरंगजेब की सरकार दिवालिया हो गई थी और सहस्रों मुगल सैनिकों व अधिकारियों को तीन वर्षों तक वेतन प्राप्त नहीं हो सका था। जिन सैनिकों, कर्मचारियों और अधिकारियों को वेतन नहीं मिलता था, उनका औरंगजेब के विरुद्ध हो जाना स्वाभाविक था। नियमित वेतन के अभाव में सैनिकों का विश्वास तथा राजभिक्त औरंगजेब से उठने लगी थी और वे पूर्ण उत्साह और शिक्त से युद्ध नहीं करते थे। सैनिकों ने मराठों के विरुद्ध आक्रमणों और युद्धों में अभिरुचि रखना छोड़ दिया था। इससे युद्ध संचालन अवरुद्ध हो गया और विशाल सेना होते हुए भी औरंगजेब विजय प्राप्त नहीं कर सका। इसके विपरीत उसकी पराजय और पतन का मार्ग प्रशस्त हो गया।

मुगल सैनिक मराठों के विरुद्ध दीर्घकाल तक बिना किसी सफलता के युद्ध करते-करते थक गए थे। वे महाराष्ट्र के पर्वतीय क्षेत्र में युद्ध करने की कठिनाइयाँ और मराठों की तीव्र प्रहार की छापामार रण-प्रणाली से घबरा उठे थे। वे उत्तरी भारत में अपने घर लौट जाने के लिए अधिकाधिक आतुर थे। कई मुगल सेनानायक तो मराठों के हाथों परास्त हो जाने और घिर जाने पर मराठों को धन की विशाल राशि घूस में देकर अपने प्राणों की और अपने धन-जन की सुरक्षा की व्यवस्था करते थे।

दक्षिण की सल्तनतों की जिन सेनाओं को औरंगजेब ने अपनी ओर मिला लिया था, वे दृढ़ नियंत्रण के अभाव में नेतृत्वहीन, अनुशासनहीन और बेसिरी होकर लूटपाट करने लगी थीं। अराजकता और अव्यवस्था का लाभ उठाकर अनेक बड़े सामंत और जमींदार भी स्वतंत्र शासक हो गए। उनके अत्याचारों से तथा सैनिकों व अधिकारियों के अत्याचार, अनाचार और शोषण से जन-साधारण और कृषकों को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा, वे दुर्भिक्ष और महामारी के शिकार होते गए। इससे प्रजा की विपन्नता में अधिक वृद्धि हुई। मराठों के बढ़ते हुए तीव्र प्रतिरोध और संघर्ष से प्रशासन अस्त-व्यस्त हो गया, आर्थिक संकट गहरा हो गया और उत्तरी भारत में तो विद्रोहों की बाढ़ आ गई।

औरंगजेब अपने स्वभाव, कार्यों और अव्यावहारिक, मूर्खतापूर्ण, विवेकहीन दक्षिण नीति के कारण तथा शिथिल, अनुशासनहीन और पतनोन्मुखी मुगल सेना से मराठों को परास्त नहीं कर सका। मराठे सैनिक बड़ी सावधानी से अपने जीवन और सीमित साधनों का उपयोग करते थे। उनमें अपने देश और धर्म के लिए मर मिटने की जो भावना थी, उसने मराठों में अपूर्व बल, साहस और त्याग का संचार कर दिया। मराठे सैनिक भूखे भेड़ियों की टोलियों की भाँति मुगलों पर टूट पड़ते थे। उनके पीछे समस्त जनता की शक्ति थी। औरंगजेब के लिए अब इस मराठा युद्ध को समाप्त करना असंभव हो गया था, क्योंकि उसके सम्मुख कोई स्थायी सरकार या राज्य नहीं था, अपितु उसके विरुद्ध तो समस्त महाराष्ट्र भीषण युद्ध कर रहा था जिस पर विजय पाना उसके लिए असंभव था। औरंगजेब ने अपनी अव्यावहारिक, विवेकहीन मराठा नीति से मुगल साम्राज्य की शक्ति और सत्ता के स्रोत उत्तरी भारत को खोखला कर दिया। उसने मराठों को जीतने में संपूर्ण दक्षिण ही खो दिया। वास्तव में उसने सभी कुछ जीतने में सब कुछ खो दिया। अंत में वह निराशा और विफलता का प्रतीक बन कर रह गया।

4.3.8. सारांश

मुगल-मराठा संबंध(प्रथम चरण)

- 1. दक्षिण में मराठों द्वारा मुगलों का विरोध
- 2. औरंगजेब के प्रति शिवाजी की नीति
- 3. शिवाजी की कूटनीति एवं औरंगजेब की अधीनता
- 4. शिवाजी की शक्ति में वृद्धि
- 5. शिवाजी और शाइस्ता खाँ
- 6. सूरत की प्रथम लूट

मुगल-मराठा संबंध (द्वितीय चरण)

- 1. मिर्जा राजा जयसिंह से शिवाजी का संघर्ष
- 2. पुरंदर की संधि (जून 1665 ई.)
- 3. शिवाजी के प्रति औरंगजेब की नीति
- 4. शिवाजी की आगरा यात्रा
- 5. शिवाजी एवं औरंगजेब के मध्य समझौता(1667 ई.)
- 6. शिवाजी-मुगल युद्ध
- 7. सूरत की द्वितीय लूट और मुगलों की पराजय (अक्टूबर 1670 ई.)
- 8. खानदेश व बरार पर शिवाजी के आक्रमण

मुगल-मराठा संबंध (तृतीय चरण)

- 1. महाबत खाँ और बहादुर खाँ से शिवाजी का संघर्ष
- 2. शिवाजी के युद्धों के परिणाम
- 3. बहादुर खाँ से समझौते की चर्चा
- 4. नेताजी पालकर और शिवाजी का मिलन
- 5. शिवाजी का बहादर खाँ से समझौता
- 6. शिवाजी द्वारा मुगलों के विरुद्ध बीजापुर की सहायता
- 7. संभाजी का मुगल-पक्ष में जाना
- 8. शिवाजी-औरंगजेब की परस्पर नीतियों का मूल्यां कन
- 9. शिवाजी की सामरिक निपुणता
- 10. शिवाजी के प्रति मुगल नीति

मुगलों की असफलता और मराठों की सफलता के कारण

- 1. महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति और वातावरण
- 2. मराठों का छापामार रणकौशल
- 3. मराठों में एकता और राष्ट्रीय भावना
- 4. मराठों का कुशल नेतृत्व और संचालन
- 5. मराठों का अदम्य साहस और दृढ़ संकल्प
- 6. औरंगजेब का स्वभाव और दूषित नीतियाँ

4.3.9 बोध प्रश्न

4.3.9.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

- औरंगजेब के प्रति शिवाजी की प्रारंभिक नीति क्या थी?
- 2. शिवाजी और शाइस्ता खाँ के संबंधों पर प्रकाश डालिए
- 3. सूरत की प्रथम लूट पर प्रकाश डालिए।
- 4. शिवाजी की आगरा यात्रा के विषय में आप क्या जानते हैं?
- 5. सूरत की द्वितीय लूट पर प्रकाश डालिए।
- 6. महाबत खाँ और बहादुर खाँ से शिवाजी का संघर्ष का वर्णन कीजिए।
- नेताजी पालकर और शिवाजी का मिलन पर एक नोट लिखिए।

4.3.9.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- 1. मुगल-मराठा संबंधों के प्रथम चरण की विवेचना कीजिए।
- 2. मुगल-मराठा संबंधों के द्वितीय चरण का वर्णन कीजिए।
- 3. मुगल-मराठा संबंधों के तृतीय चरण की विवेचना कीजिए।
- 4. शिवाजी-औरंगजेब की परस्पर नीतियों का मूल्यां कन कीजिए।
- 5. मुगल-मराठा संघर्ष में मराठों की सफलता के कारण का वर्णन कीजिए।

4.3.10. संदर्भ-ग्रंथ

1. म. गो. रानाडे : मराठा शक्ति का उदय

- 2. ग्रांट डफ: मराठों का नवीन इतिहास
- 3. सरदेसाई: मराठों का नवीन इतिहास, भाग 1, 2 एवं 3
- 4. जदुनाथ सरकार : शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स
- 5. सतीश चंद्र: मध्ययुगीन भारत

खंड-4: मराठा साम्राज्य का उदय व विस्तार इकाई-4: पेशवा का उदय व मराठा शक्ति का विस्तार

इकाई की रूपरेखा

- 4.4.1. उद्देश्य
- 4.4.2. प्रस्तावना
- 4.4.3. पेशवा बालाजी विश्वनाथ का उत्थान (1713 ई.-1720 ई.)
 - 4.4.3.1. बालाजी द्वारा पेशवा पद की प्राप्ति एवं शक्ति का सुदृढ़ीकरण
 - 4.4.3.2. मराठा राज्य की आतंरिक समस्याएँ और बालाजी के प्रयास
 - 4.4.3.3. मुगलों के साथ संबंध
 - 4.4.3.4. मुगल सम्राट और शाहू की संधि
- 4.4.4. पेशवा बालाजी प्रथम (1720 ई.-1740 ई.)
 - 4.4.4.1. बाजीराव की मुगल विरोधी नीति
 - 4.4.4.2. बाजीराव और दक्षिण का मुगल सूबेदार
 - 4.4.4.3. निजाम-उल-मुल्क से संधि का प्रयास
 - 4.4.4.4. मराठों की तटस्थता की आलोचना
 - 4.4.4.5. निजाम द्वारा मराठा राज्य पर आक्रमण
 - 4.4.4.6. शिवगाँव की संधि (16 मार्च, 1728 ई.)
 - 4.4.4.7. पराजित निजाम-उल-मुल्क और मराठों के मध्य समझौता
 - 4.4.4.8. बाजीराव और उत्तर भारत
 - 4.4.4.9. मालवा और बुंदेलखंड
 - 4.4.4.10. अझमेरा का युद्ध
 - 4.4.4.11. बाजीराव और मस्तानी
 - 4.4.4.12. मुगल-मराठों के मध्य शांति समझौता
 - 4.4.4.13. गुजरात में मराठा शक्ति का विस्तार
 - 4.4.4.14. दिल्ली पर मराठों का आक्रमण और भोपाल का युद्ध
 - 4.4.4.15. बाजीराव तथा आंग्रे, सिद्दी और पुर्तगाली
- 4.4.5. पेशवा बालाजी बाजीराव (1740 ई.-1761 ई.)
 - 4.4.5.1. संगोला समझौता तथा पेशवा शक्ति का चर्मोत्कर्ष
 - 4.4.5.2. पेशवा और मुगल सम्राट
 - 4.4.5.3. कर्नाटक की विजय
 - 4.4.5.4. महाराष्ट्र में प्रतिद्वंदियों पर पेशवा की विजय
 - 4.4.5.5. मराठे और निजाम
 - 4.4.5.6. बुंदेलखंड पर मराठों काअधिकार
 - 4.4.5.7. मराठे और राजपूत
 - 4.4.5.8. मराठे और जाट
 - 4.4.5.9. उत्तर भारत में मराठा सत्ता का विस्तार

4.4.5.10. अहमदशाह अब्दाली का उत्तर भारत पर आक्रमण

- 4.4.6. सारांश
- 4.4.7. बोध प्रश्न
 - 4.4.7.1. लघु उत्तरीय प्रश्न
 - 4.7.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
- 4.4.8. संदर्भग्रंथ सूची

4.4.1. उद्देश्य

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मराठा काल का प्रमुख स्थान है। मराठा शक्ति के संस्थापक वीर शिवाजी ने जीवन पर्यंत औरंगजेब का दृढ़ता से सामना किया और दक्षिण से मुगलों के वर्चस्व को समाप्त कर दिया। शिवाजी के पश्चात पेशवा पद का प्रादुर्भाव हुआ और आगामी मराठा राजनीति पानीपत के तृतीय युद्ध तक पेशवाओं के द्वारा ही संचालित हुई। छत्रपित शाहू के शासन काल की एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना छत्रपित की शक्ति का हास एवं पेशवा की शक्ति का उदय था। भविष्य में मराठा शक्ति का प्रतिनिधित्व पेशवा ही करने लगा और मराठा शासक सिर्फ नाममात्र का रह गया। पेशवा शक्ति का अभ्युदय एवं उसके अधीन मराठा शक्ति का विस्तार मध्यकालीन भारतीय इतिहास का एक अत्यंत रोचक अध्याय है। इस इकाई का उद्देश्य पेशवाओं के काल में मराठों की उपलिब्धियों पर प्रकाश डालना है।

4.4.2. प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में शिवाजी के पश्चात पेशवाओं के काल के विभिन्न चरणों की व्याख्या, मराठों की सफलता एवं मुगलों की असफलता तथा अन्य राज्यों पर मराठा विजय की कालक्रमानुसार विस्तृत विवेचना की जाना प्रस्तावित है। इकाई के अंत में पाठ का सारांश, लघु उत्तरीय प्रश्न, दीर्घ उत्तरीय प्रश्न एवं संदर्भ-ग्रंथों की सूची का उल्लेख भी प्रस्तावित है।

4.4.3. पेशवा बालाजी विश्वनाथ का उत्थान (1713-1720 ई.)

4.4.3.1. बालाजी द्वारा पेशवा पद की प्राप्ति एवं शक्ति का सुदृढ़ीकरण

पेशवा पद पर स्थापित किए जाने वाला पहला सौभाग्यशाली व्यक्ति एक ब्राह्मण बालाजी विश्वनाथ था। उसके पूर्वज श्री वर्धन ग्राम के देशमुख थे। श्री वर्धन ग्राम पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित था। इस पर इन दिनों जंजीरा के सिद्धियों का अधिकार था। बालाजी विश्वनाथ एक कुशाग्र बुद्धि का, श्रमशील एवं अध्यवसायी व्यक्ति था। अपने इन्हीं चारित्रिक गुणों के कारण वह एक क्लर्क के पद से पेशवा अथवा प्रधान मंत्री बन बैठा। सन् 1689 ई. में संभवतः वह रामचन्द्र अमात्य के अधीन माल विभाग में एक क्लर्क था और बाद में उसे पूना तथा दौलताबाद का सरसूबा बनाया गया। धन्नाजी यादव ने उसे कर उगाहने का प्रधान कर्मचारी भी नियुक्त किया। बालाजी विश्वनाथ का संबंध मुगल सम्राट एवं अधिकारियों से रहा था, अस्तु मुगल शिविर में बंदी शाहू के साथ भी उसने संपर्क स्थापित कर लिए थे। वह शाहू की मुगल शिविर से मुक्ति का समर्थक था और छत्रपति के पद पर उसे स्थापित करने का तथा उसकी सारी बाधाओं को समाप्त करने का उसने अथक प्रयत्न किया। अनेक मराठा सरदारों को उसने फोड़कर शाहू को पक्षपाती बनाया। अतः शाहू के हृदय में उसके प्रति स्नेह और विश्वास का संचार हुआ। जब शाहू के विश्वासपात्र सेनापित धन्नाजी यादव की मृत्यु जून 1708 ई. में हो गई तब छत्रपति ने उसके पुत्र चंद्रसेन

को इस पद पर नियुक्त किया। किंतु चंद्रसेन हृदय से शाहू का विरोधी था और उसने ताराबाई के साथ साँठ-गाँठ कर ली। अतः परिस्थित की गंभीरता को देखते हुए शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को सेनापित के पद पर प्रतिष्ठित कर उसे चंद्रसेन का प्रतिद्वंद्वी और समकक्ष बना दिया। इस पद पर रहकर बालाजी विश्वनाथ सेनापित चंद्रसेन पर कड़ी दृष्टि रख सकता था जिससे वह शाहू के विरुद्ध विश्वाघात न कर सके। चंद्रसेन इस नियुक्ति से खिन्न था और बालाजी विश्वनाथ के साथ उसकी वैमनस्यता एवं विरोध बढ़ते चले गए। अंत में चंद्रसेन ने जोश में आकर अपने पद से त्याग दे दिया और ताराबाई के साथ जा मिला। किंतु अपनी कूटनीति के बल पर बालाजी विश्वनाथ ने शाहू कि विरुद्ध परिस्थिति को गंभीर होने से बचा लिया तथा शाहू के प्रबल विरोधी कान्होजी आँग्रे तक को शाहू के पक्ष में कर लिया।

उसके इन कार्यों से प्रभावित होकर छत्रपित शाहू ने 28 नवंबर, 1813 ई. को उसे पेशवा के पद पर बालाजी को स्थापित कर दिया। पेशवा के रूप में बालाजी विश्वनाथ ने अपनी अदम्य सैनिक योग्यता, कूटनीति एवं अद्वितीय प्रशासकीय क्षमता का परिचय दिया। मराठा राजनीति एवं शासन में बालाजी का प्रभाव दिन प्रति दिन बढ़ने लगा। उसने अपने मित्रों तथा संबंधियों को ऊँचे पदों पर नियुक्त करना आरंभ किया। यथा अंबाजी पंत तथा क्रमशः उप पेशवा एवं फड़नवीस के पद पर बैठाया गया। इस पर रह कर बालाजी ने दो महत्वपूर्ण कार्य किए। उसने छत्रपित की स्थिति को सुदृढ़ किया तथा अपने वंश में पेशवा के पद को स्थायी बनाया। अपनी कूटनीतिक योग्यता के बल पर उसने प्रतिकूल परिस्थियों को भी अनुकूल बना लिया।

4.4.3.2. मराठा राज्य की आतंरिक समस्याएँ और बालाजी के प्रयास

यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना अनिवार्य हो जाता है कि उन दिनों छत्रपित की स्थिति अत्यंत सोचनीय थी। अभी शाहू को एकमत से मराठा शासक स्वीकार नहीं किया जा सका था और सतत् ताराबाई के विरोधों का सामना करना पड़ रहा था। उसकी आर्थिक स्थिति भी दयनीय थी उसे अपने कर्मचारियों तथा सैनिकों को वेतन देने में कठिनाई होने लगी थी। विभिन्न मराठा सरदार उसके नाम का लाभ उठाकर लूटपाट के द्वारा धन एकत्र करने में जुटे थे, किंतु शाहू को इस लाभ का अंश मात्र भी प्राप्त नहीं हो रहा था।

छत्रपति के कर्मचारियों में संकुचित भक्ति और विनम्रता के स्थान पर स्वार्थपरता, उदंडता तथा अहंकार की भावना अधिक हो गई थी। शाहू में ऐसे गुणों का नितांत अभाव था जिसके द्वारा वह इन प्रतिकूल परिस्थितियों को अपने पक्ष में कर उन्हें अनुकूल बना सके। इसके अतिरिक्त दक्षिण के मुगल सूबेदार भी मराठा शक्ति के विस्तार के विरोधी थे और अपनी शक्ति भर मराठों के दमन के इच्छुक थे। किंतु बाद में जब मुगल सम्राट की स्थिति एवं उसकी नीति में अस्थिरता आ गई और दक्षिण के मुगल सूबेदार की स्थिति भी डावाँडोल हो गई तो मराठों को इन सूबेदारों की ओर से विशेष विरोध का सामना नहीं करना पड़ा। इसके अतिरिक्त शाहू को मुगल साम्राज्य का फर्मान भी अभी नहीं प्राप्त हो पाया था जिससे उसके छत्रपति पद को वैधानिकता तथा नैतिकता का जामा पहनाया जा सके। मुगल साम्राट संपूर्ण भारत का सार्वभौम सत्ताधिकारी था। यह ठीक है कि सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल शासक के अधिकार एवं स्थिति में अप्रत्यासित रूप से गिरावट आने लगी थी और वह केवल नाम मात्र का सम्राट रह गया था, किंतु अभी भी उसके नाम का महत्त्व बना रहा और उसी के नाम से साम्राज्य के संपूर्ण कार्य संपादित किए जाते थे। अतः सम्राट के द्वारा जब तक शाहू के छत्रपति पद को मान्यता नहीं प्राप्त हो जाती उसकी शक्ति का विस्तार असंभव-सा था। अगर मुगल सम्राट द्वारा शाहू को दक्षिण के सूबों से चैथ और सरदेशमुखी उगाहने का अधिकार प्राप्त हो जाता तो छत्रपति पद हेतु होने वाले गृह युद्ध में उसकी

स्थिति मजबूत हो जाती और उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हो जाती। पेशवा पद पर आरूढ़ होने के पश्चात् बालाजी शाहू की स्थिति को शक्तिशाली बनाने की दिशा में सिक्रय हो उठा और इस क्षेत्र में उसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई।

4.4.3.3.मुगलों के साथ संबंध

शाह मुगल सम्राट का कभी भी विरोधी नहीं रहा था। ठीक इसके विपरीत वह मुगलों के प्रति वफादार था, किंतु जब उसने बहादुरशाह से अपने पक्ष में सनद देने की तथा चैथ और सरदेशमुखी करों की वसूली के अधिकारों को चिरस्थायी बना देने की प्रार्थना की तो मुगल सम्राट ने इसे अस्वीकार कर दिया। 1712 ई. में मराठों के प्रबल दबाव के कारण दक्षिण के मुगल सूबेदार दाऊद ने शाह को चैथ देना स्वीकार कर लिया। किंतु इसी बीच निजाम-उल-मुल्क दक्षिण का नया सूबेदार होकर आ गया था जो मराठा को कर देने के पक्ष में नहीं था। अभी भी शम्भुजी द्वितीय और शाह् के बीच छत्रपति के पद को लेकर गृह युद्ध चल रहा था। निजाम-उल-मुल्क ने इस आधार पर कर देना अस्वीकार कर दिया कि मराठों का एक मात्र शासक कौन है इसका फैसला नहीं हो पाया है। इस तरह से बहादुःशाह और उसके उत्तराधिकारी जहाँदार शाह के शासन काल में शाहू को लाख प्रयत्नों के बावजूद भी मुगलों के द्वारा मान्यता प्राप्त न हो सकी। किंतु बाद में परिस्थितयों में परिवर्तन आया। मुगल दरबार में सैयद बंधुओं की शक्ति काफी बढ़ गई और वे 'सम्राट निर्माता' बन बैठे। उन्हीं की अनुकंपा से फर्रूखिसयर मुगल गद्दी पर आरूढ़ हुआ, किंतु जल्द ही वह सैयद बंधुओं का विरोधी हो गया और उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगा। इन दिनो सैयद हुसैन अली खाँ दक्षिण का सूबेदार था। हृदय से वह मराठों का विरोधी था और उनकी दमन की इच्छा रखता था। किंतु, जब उसने देखा कि दिल्ली दरबार में मुगल सम्राट की ओर से उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचने जा रहे हैं तो उसने मराठों से न उलझने का फैसला किया। उसके बड़े भाई सैयद अब्दुल्ला खाँ ने उसे संदेश भिजवाया कि उसके चले जाने के बाद से उनके विरोधियों की शक्ति प्रबल होती जा रही है और मुगल सम्राट बलपूर्वक उनका विनाश करना चाहता है। अतः सैयद हुसैन अली खाँ को जल्द-से-जल्द दिल्ली लौटने की चिंता लगी हुई थी। संभवतः उसने यह भी सोचा कि अगर मराठों के साथ शांति समझौता कर लेता है तो इससे दक्षिण में तो शांतिकी स्थापना होगी ही साथ-ही-साथ मराठों के सैनिक सहयोग से वह फर्रूखिसयर को अच्छी सीख दे सकेगा। अतः शंकराजी मल्हार नामक एक योग्य ब्राह्मण को माध्यम बनाकर उसने शाह् के साथ संधि-वार्ता आरंभ की। सौभाग्यवश यह व्यक्ति हृदय से मराठा राज्य का शुभचितक था। संधि करानेके उद्देश्य से शंकराजी सतारा पहुँचा। उसका लक्ष्य एक ऐसा समझौता था जो मराठे एवं सैयदों दोनों की शक्ति के सुदृढ़ीकरण में हितकर हो। उसके प्रयत्नों के चलते फरवरी, 1718 ई. में दोनों पक्षों के बीच एक संधि हो गई। इसी संधि के आधार पर शाह को मुगल सम्राट से सनद दिलवाने का आश्वासन दिया गया।

4.4.3.4. मुगल सम्राट और शाहू की संधि

इस संधि की निम्नलिखित शर्तें थीं - 1. शिवाजी द्वारा स्थापित 'स्वराज' का संपूर्ण क्षेत्र तथा उसके अंदर स्थित सभी दुर्ग शाहू को लौटा दिए जाए। 2. शाहू को वे क्षेत्र भी लौटा दिए जाए, जिन्हें मराठों ने खानदेश, बरार, हैदराबाद, गोंडवाना और कर्नाटक में जीता था। 3. शाहू के दक्षिण के सूबों से चैथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दिया जाए। चैथ के बदले में शाहू 15,000 मराठा जवानों की एक सैन्य टुकड़ी सम्राट के सेवार्थ प्रदान करेगा और सरदेशमुखी के बदले में शंभा जी इन प्रांतों में विद्रोह एवं अशांति का दमन करेगा। 4. शाहू कोल्हापुर के शम्भुजी को तंग नहीं करेगा और उसको कोई क्षति नहीं पहुँचाएगा। 5. मराठा छत्रपति मुगल सम्राट को दस लाख रुपया वार्षिक कर के रूप में देगा। 6.

मुगल सम्राट शाहू की माता येसूबाई, उसकी पत्नी तथा उसके परिवार के अन्य सदस्यों को कारागार से मुक्त कर देगा और उनको अपने संपूर्ण अनुचरों तथा सेवकों के साथ मराठा दरबार में भेज देगा।

संधि की ये शर्तों मराठा सरदारों को पूर्णतः मान्य थीं। सैयद हसैन अली खाँ भी शीघ्रातिशीघ्र दिल्ली पहुँचकर फर्रूखिसयर को मजा चखाना चाहता था। अतः वह भी इन शर्तों से सहमत हो गया और मुगल सम्राट की स्वीकृति के पूर्व ही संधि की शर्तों को यथासंभव कार्यान्वित करने का आदेश दे दिया। अब मराठे चैथ और सरदेशमुखी वसूल करने लगे। सैयद हुसैन अली खाँ, बालाजी विश्वनाथ, खंडेराव धमादे तथा अनेक मराठा सरदारों के अधीन 15,000 मराठा सैनिकों के साथ फरवरी, 1717 ई. में दिल्ली पहुँचा। मराठा तथा अन्य वर्गों की सहायता से फर्रूखिसयर को गद्दी से उतार कर उसके स्थान पर रफी-उद-दरजात का सम्राट बनाया गया। नए सम्राट ने 1718 ई. की संधि को पूर्णरूप से स्वीकार कर लिया। मुगल सम्राट ने पेशवा बालाजी विश्वनाथ को सनदें प्रदान की और शाह की माता एवं अन्य सगे-संबंधियों को कारागार से मुक्त कर दिया। पहले सनद के द्वारा शाहू को स्वराज का करद शासक नियुक्त किया गया। 13 मार्च, 1719 को दूसरे सनद के द्वारा उसे अपने क्षेत्र में चैथ वसूल करने का अधिकार प्रदान किया गया और 25 मार्च के सनद के द्वारा उसे सरदेशमुखी प्राप्त करने का अधिकार दिया गया। शाह् के पक्ष में निश्चित रूप से यह संधि अत्यंत हितकर प्रमाणित हुई। उसके छत्रपतित्व को वैधानिकता प्राप्त हो गई और उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। अब उसे दक्षिण के छह सूबों में तैंतीस प्रतिशत कर वसूली का वैधानिक अधिकार मिल गया। अस्तु, उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। उसे एक मात्र क्षति यह हुई कि अब वह मुगल सम्राट का एक अधीनस्थ शासक हो गया। इस कमी के बावजूद शाह के हित में बालाजी के ये कार्य अत्यंत सराहनीय कहे जाएँगे।

4.4.4. पेशवा बाजीराव प्रथम (1720-1740 ई.)

बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के पश्चात् पेशवा-पद पर नियुक्ति को लेकर मराठा दरबार में मतभेद उत्पन्न हो गया। बालाजी के ज्येष्ठ पुत्र बाजीराव की अवस्था अभी बीस वर्ष से भी कम थी और उसे शासन के क्षेत्र में किसी भी तरह का पूर्व अनुभव भी प्राप्त नहीं था। अतः पेशवा पद पर उसकी नियुक्ति के प्रश्न को लेकर अनेक मराठा नेता उसके प्रबल विरोधी हो गए थे। किंतु शाह सभी प्रभावशाली परिवारों को संतुष्ट रखना चाहता था और उसके काल में प्रायः सभी पद वंशपरंपरानुगत हो गए थे। बालाजी के उपकारों को शाहू इतनी आसानी से नहीं भूल सकता था। उसने बाजीराव को पेशवा बनाने का निश्चय कर लिया था। उसे बाजीराव में कोई विशेष कमी दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी सिवा इसके कि उसकी अवस्था कुछ कम थी। वैसे बाजीराव गठीले शरीर का रूपवान, आकर्षक एवं ओजस्वी व्यक्तित्व का स्वामी था। उसमें उत्साह, व्यवहार-कुशलता, रणकौशल एवं योग्य कूटनीतिज्ञ के गुण कूटकूट कर भरे हुए थे। बालाजी ने बाजीराव को उचित शिक्षा एवं सैन्य प्रशिक्षण दिलवाया था। वह एक उच्च कोटि का सैनिक था और युद्धों में उसकी स्वाभाविक रूचि थी। अतः अनेक मराठा सरदार और सलाहकारों के प्रबल विरोध के बावजूद शाहू ने 27 अप्रैल, 1720 ई. में बाजीराव को पेशवा के पद पर नियुक्त कर दिया। उसने मराठा सरदारों को यह आश्वासन दिया कि अगर बाजीराव अपने पिता के पदिचहों पर चलने में असफल रहा तो उसे पेशवा पद से हटाकर अन्य दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति इस पद पर कर दी जाएगी।

पेशवा पद पर आरूढ़ होने पश्चात् बाजीराव ने अनुभव किया कि उसके रास्ते में अनेक कठिनाईयाँ हैं। उसे कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना था, जिससे छत्रपति शाहू के विश्वास पर प्रहार हो। बाजीराव को फूँक-फूँक कर कदम उठाना था और अपने विरोधियों को भी अपने पक्ष में लाना था। उसके कार्य-भार तब और भी अधिक बोझिले हो गए जब मुगल सम्राट ने निजाम-उल-मुल्क को पुनः दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर दिया। यह व्यक्ति मराठों का कट्टर शत्रु था और किसी भी कीमत पर दक्षिण में मराठों की शांति को कुचलना चाहता था। वह अपनी कूटनीति का सहारा लेकर सहज ही असंतुष्ट मराठा सरदार एवं कोल्हापुर के शासक को बाजीराव का विरोध करने के लिए उकसा सकता था। बाजीराव इन कठिनाईयों के प्रति सदैव सचेत रहता था।

4.4.4.1. बाजीराव की मुगल विरोधी नीति

बाजीराव का उद्देश्य शिवाजी द्वारा आरंभ किए गए कार्य की परिसमाप्ति था। उसने मुगल साम्राज्य के टूटते हुए भवन का निकट से अवलोकन किया था। इसका लाभ उठाकर राजपूतों के सहयोग से वह अधिक-से-अधिक मुगल क्षेत्रों पर अधिकार कर लेना चाहता था। वह दिल्ली पर आधिपत्य स्थापित कर संपूर्ण भारव वर्ष में पुनः हिंदू साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न देख रहा था। अपने विरोधियों को शांत करने तथा शाह को अपनी नीति का समर्थक बनाने के उद्देश्य से उसने कहा, ''हमारे लिए यही समय है कि हम विदेशियों को हिंदू के देश से निकाल कर अक्षय कीर्ति प्राप्त कर लें। हमको सूखे वृक्ष की जड़ों पर प्रहार करना चाहिए, शाखाएँ तो अपने आप गिर जाएँगी। हमारे प्रयत्नों से हिंदुस्तान में कृष्णा से अटक तक मराठों का झंडा फहराएगा।'' शाह् पेशवा के विचारों से अत्यंत प्रभावित हुआ और उसे 'योग्य पिता का योग्य पुत्र' कहकर उसे अपनी पूरी सहायता का आश्वासन दिया। इस प्रकार नए पेशवा की मुगल विरोधी नीति को सबलता प्राप्त हुई। बाजीराव ने इस बात का भी अनुभव किया कि शाह उसका और उसकी नीतियों का प्रबल समर्थक है, अस्तु उसे ऐसा कोई भी कदम नहीं उठाना था जिससे मराठा छत्रपति के विश्वास को धक्का लगे। शाहू के प्रति सदा सम्मान एवं श्रद्धा का प्रदर्शन किया। उसने अम्बाजी पुरंदरे चिमनाजी अप्पा तथा बालाजी बाजीराव जैसे विश्वासपात्र व्यक्तियों के सहयोग से अपने विरोधियों के प्रति सदा सचेत रहा। शाहृ भी इस बात के लिए प्रयत्नशील था कि बाजीराव का वह स्वयं एवं उसके समर्थक अधिक-से-अधिक सहयोग दें। अस्तु, पीलाजी यादव, खाण्डों बल्लाल चितनिस, गोविंद राव, रानोजी सिंधिया, अदाजी पवार, कल्हार राव होल्कर और फतेह सिंह भोंसले जैसे मराठा सरदार बाजीराव के प्रबल समर्थक हो गए थे। इन मराठा सरदारों का सहयोग प्राप्त कर बाजीराव अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में प्रयत्नशील हो गया।

4.4.4.2. बाजीराव और दक्षिण का मुगल सूबेदार

बाजीराव का समकालीन दक्षिण का मुगल सूबेदार निजाम-उल-मुल्क था। निजाम हृदय से मराठों का कट्टर विरोधी था और दक्षिण में मराठा शक्ति का दमन करने का उसने बीड़ा उठा रखा था। वस्तुतः निजाम एक अत्यंत महत्वाकांक्षी व्यक्ति था और दक्षिण में वह एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना करना चाहता था। बाजीराव के लिए मराठा और निजाम में संबंधों को व्यवस्थित करना एक अत्यंत जटिल समस्या थी। निजाम ने 1719 ई. की संधि के अनुरूप मराठा छत्रपति को चैथ तथा सरदेशमुखी देना अस्वीकृत कर दिया। अपने इस कार्य के औचित्य के संदर्भ में उसने कहा कि जब तक यह तय नहीं हो जाता है कि शाहू एवं शंभाजी के मध्य छत्रपति कौन है वह कर नहीं दे सकता था, क्योंकि वे दोनों इसका दावा कर रहे थे और ये कर किसी एक को ही दिया जा सकता था। सतही स्तर पर निजाम का तर्क उचित कहा जा सकता है, किंतु यथार्थता यह थी कि वह छत्रपति के इस विशेषाधिकार को नहीं मानता था और उसे चैथ तथा सरदेशमुखी से वंचित रखना चाहता था। बाजीराव निजाम की चालों को भलीभाँति समझ रहा था। वह युद्ध के द्वारा इन झगड़ों का फैसला करने पर उतारू हो गया, किंतु शाहू ने उसे शांतिपूर्वक इन झगड़ों को निपटाने का आदेश दिया।

4.4.4.3.निजाम-उल-मुल्क से संधि का प्रयास

शाहू की आज्ञा का पालन करने के उद्देश्य से बाजीराव ने क्रमशः 14 जनवरी, 1721 ई. को चिखखयान में, 23 फरवरी, 1723 ई. को कैलशा में और 28 मई को धार के पास नाछला में, तीन बार निजाम के साथ संधि करने के लिए उससे भेंट की। इन अवसरों पर उसने निजाम से अनुरोध किया कि वह 1719 ई. की संधि को मानकर शाहू को तंजीर का राज्य और शिवनेर, चाकन, माहुली, करनाल, पाली और मिराज के किले तथा उन किलों से संबंधित भूमि को लौटा दें। किंतु इन भेंटों का कुछ भी परिणाम नहीं निकला। इसी बीच निजाम 1721 ई. में वजीर बनकर दिल्ली चला गया और अपने कार्य-भार उसने नायक मुबारिक खाँ पर छोड़ दिया, किंतु दिल्ली की स्थिति से ऊब कर वह पुनः दो वर्षों के बाद 1724 ई. में दक्षिण चला आया। दक्षिण लौटने के बाद उसे मुबारिक खाँ के साथ युद्ध करना पड़ा। बाजीराव ने इस अवसर का लाभ उठाकर बुरहानपुर जिले को अपने कब्जे में कर लिया। निजाम और मुबारिक खाँ के बीच युद्ध का श्री गणेश हो चुका था। मुबारिक खाँ को कर्नाटक के नवाब का सहयोग प्राप्त था। छत्रपित शाहू भी मुबारिक खाँ के आग्रह पर उसको निजाम के विरुद्ध सहायता देने की इच्छा रखता था, किंतु बाजीराव ने इस नीति का समर्थन नहीं किया।

निजाम-उल-मुल्क तथा मुबारिक खाँ के बीच सूबेदारी के लिए संघर्ष

परिणामस्वरूप मुबारिक खाँ निजाम के हाथों 10 अक्टूबर, 1731 ई. को सडरखेलदा के पास युद्ध में निर्णायक रूप से पराजित हुआ और उसकी हत्या कर दी गई। इस सफलता के पश्चात् निजाम पुनः दक्षिण का सूबेदार के पद पर आरूढ़ हो गया। बाजीराव ने इस संघर्ष में तटस्थता की नीति अपनाई।

4.4.4.4. मराठों की तटस्थता की आलोचना

सरदेसाई तथा डॉ. डीधे जैसे विद्वानों ने बाजीराव की इस नीति की कटु आलोचना की है। यदि मराठों ने इस अवसर का लाभ उठाया होता तो सहज ही निजाम-उल-मुल्क की शक्ति को दक्षिण में समाप्त किया जा सकता था और निश्चित रूप से इससे मराठों को बहुत लाभ हुआ होता।

निजाम अब दक्षिण में अपनी स्थिति को मजबूत करना चाहता था। अतः इच्छा नहीं रहते हुए भी उसने मराठों के प्रति शां ति की नीति का अवलंबन कर उसने मराठों के चैथ तथा सरदेशमुखी के अधिकार को मान्यता दे दी और यह भी आश्वासन दिया कि मालवा और गुजरात में वह उन्हें चैथ वसूल करने का अधिकार दिलवा देगा। किंतु यह सिर्फ ऊपरी दिखावा मात्र था और निजाम मराठों के विनाश का उपाय खोज रहा था। इस नीति का एक मात्र उद्देश्य दक्षिण में अपनी स्थिति को मजबूत करना तथा मराठों को उलझाए रखना था। फिर भी मराठों को इस स्थिति से लाभ हुआ और 1725 एवं 1726 ई. में बाजीराव के नेतृत्व में मराठों ने कर्नाटक पर दो बार हमले किए। निजाम ने इस संदर्भ में तटस्थता की नीति अपनाई। वैसे उसे यह पसंद नहीं था कि मराठा दक्षिण में अपने शक्ति का विस्तार करें। मराठा शक्ति को कुचलने के उद्देश्य से उसने औरंगजेब से राजधानी का स्थानांतरण कर हैदराबाद को राजधानी बनाया और वहाँ मराठों के विरुद्ध की तैयारियों में लग गया। उसने शाहू के समर्थकों को फुसला कर अपने पक्ष में मिलाने की कोशिश की। शाहू के विरोधी शंभाजी के साथ 1727 ई. को उसने शाहू के विरुद्ध एक समझौता कर लिया। इसके बाद निजाम ने छत्रपति शाहू को यह संदेश भेजा कि वह उसकी मध्यस्थता में शंभाजी के साथ अपने झगडों की समाप्ति कर लें।

4.4.4.5. निजाम द्वारा मराठा राज्य पर आक्रमण

शाहू अभी इस प्रस्ताव पर विचार ही कर था कि निजाम ने उसके क्षेत्रों पर आक्रमण कर दिया। शंभाजी की सेना भी निजाम के साथ थी। कान्हों जी भोंसले तथा सुल्तान जी निम्बालकर जैसे मराठा नेताओं ने भी निजाम को शाहू के विरुद्ध सैनिक सहायता प्रदान की। इन दिनों पेशवा बाजीराव कर्नाटक के विरुद्ध युद्ध में व्यस्त था। शाहू ने पेशवा को जल्द लौट आने का आदेश दिया। बाजीराव ने आते ही निजाम के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में उसने अपनी असीम सैनिक योग्यता एवं कूटनीति का परिचय दिया। उसने अपने गुप्तचरों का जाल बिछा दिया था और उनके द्वारा उसे निजाम की गतिविधियों की सूचना निरंतर मिल रही थी। दूसरी ओर निजाम को बाजीराव के उद्देश्यों का और गतिविधियों का कुछ पता ही नहीं चल रहा था।

4.4.4.6. शिवगाँव की संधि(16 मार्च, 1728 ई.)

इसके परिणामस्वरूप 6 मार्च, 1728 ई. को औरंगाबाद के बीस मील पश्चिम की ओर स्थित मालखेद नामक स्थान पर निजाम को मराठों के हाथों अपार क्षति उठानी पड़ी और उसे 16 मार्च को बाजीराव के साथ शिवगाँव की संधि करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस संधि की शर्तों के अनुसार-

1. शाहू को मराठा राज्य का एक मात्र छत्रपित स्वीकार कर लिया गया। 2. शाहू को दक्षिण के छह सूबों के चैथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार प्राप्त हुआ। 3. निजाम ने भिवष्य में शंभाजी को किसी तरह की सहायता न देने का वचन दिया। 4. निजाम ने शंभाजी को पन्हाला भेज देने की स्वीकृति दे दी। 5. निजाम ने मराठों के छिने हुए प्रदेशों को लौटाने का तथा मराठा कैदियों को मुक्त करने का आश्वासन दिया।

शिवगाँव की संधि का महत्त्व

शिवगाँव की यह संधि मराठा शक्ति के विस्तार में एक अत्यंत महत्वपूर्ण कड़ी कही जा सकती है। 1719 ई. की संधि के द्वारा मराठों को दिए गए अधिकारों को विधिवत स्वीकार कर लिया गया। शाहू को अब मराठों के एक मात्र छत्रपति के रूप में स्वीकार कर लिया गया और उसके प्रतिद्वंद्वियों की अब शक्ति समाप्त हो गई। यह बाजीराव की व्यक्तिगत सफलता थी और इसने उसके रण-कौशल और कुशल नीति का सफल परिचय दिया। निजाम इस संधि से क्षुब्ध था। वह अभी भी अपने को संपूर्ण दक्षिण का एक मात्र स्वामी समझता और उसने त्रियंबक राव दामाड़े के साथ मिलकर पुनः अप्रैल, 1731 ई. में शाहू के विरुद्ध एक षड़यंत्र किया। किंतु त्रियंबक राव बाजीराव के द्वारा परास्त किया गयाऔर उसकी हत्या कर दी गई।

शंभाजी के द्वारा शाह को छत्रपति स्वीकार किया जाना

इसी बीच 1730-31 में शंभाजी को बाजीराव ने हरा दिया और उसने शाहू को छत्रपित स्वीकार करते हुए आश्वासन दिया कि भविष्य में वह शाहू के शत्रुओं के साथ किसी तरह का गठबंधन नहीं करेगा। 4.4.4.7. पराजित निजाम-उल-मुल्क और मराठों के मध्य समझौता

किंतु निजाम अभी भी अपने शाहू विरोधी नीति को अपनाएँ हुए था और उसने मालवा के शासक मुहम्मद शाह बंगारा का समर्थन प्राप्त कर पुनः बाजीराव के विरुद्ध युद्ध प्रारंभ कर दिया। इस बार बाजीराव ने निजाम को पुनः पराजित किया और इस पराजय के पश्चात् निजाम को बाजीराव के साथ एक गुप्त संधि करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस संधि के द्वारा यह तय किया गया कि भविष्य में मराठे निजाम के प्रदेश पर आक्रमण नहीं करेंगे, किंतु निजाम भी उन्हें चैथ और सरदेशमुखी वसूल करने की पूरी छूट देगा और मराठों के उत्तरी भारत के आक्रमण में तटस्थ रहेगा।

4.4.4.8. बाजीराव और उत्तर भारत उत्तर की ओर आकृष्ट होने के कारण

दक्षिण में अपनी स्थित मजबूत कर बाजीराव ने उत्तर भारत की ओर अपनी दृष्टि उठाई। बाजीराव मुगल सम्राट की दुर्बलता से लाभ उठाकर उत्तर भारत पर धावे कर मराठा शक्ति का विस्तार करना चाहता था। दक्षिण में अब उसका कोई विशेष कार्य नहीं बचा हुआ था। अतः उत्तर भारत में ही मराठा शक्ति के विस्तार के लिए वह प्रयत्नशील हो उठा। मराठों के पास अनेक उत्साहित और वीर सैनिक थे। उन सबों को एक साथ दक्षिण में रहने से ईर्ष्या, षड्यंत्र विश्वासघात तथा राज्यद्रोह में वृद्धि हो रही थी। उनकी दृष्टि उत्तर की ओर कर देने से न केवल मराठा प्रभाव-क्षेत्र बढ़ सकता था, वरन् आतंरिक संघर्ष में भी कमी आ सकती थी। मालवा और गुजरात दक्षिण की सीमा के बहुत निकट थे। वे दोनों ही प्रांत साम्राज्य के समृद्ध सूबों में गिने जाते थे। अतः उन पर आक्रमण करके वहाँ से धन प्राप्त किया जा सकता था। धन की मराठा राज्य को इन दिनों बराबर कमी रहती थी, अस्तु उत्तर भारत की ओर जाने के वास्तविक कारण आर्थिक, राजनीतिक तथा सैनिक थे, परंतु बाजीराव ने उसके साथ धार्मिक भावना का भी समावेश कर दिया और यह प्रकट किया कि वह हिंदू साम्राज्य की स्थापना के उद्देश्य से मलेच्छों के प्रांतों पर अधिकार करना चाहता है।

4.4.4.9. मालवा और बुंदेलखंड

मराठा आक्रमण के पूर्व मालवा की आतंरिक स्थिति डाँवाडोल थी। यह अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था, जिनमें दासवाड़ा, कोटा, पन्ना, बूंदी, सीतामऊ, डूगरपुर अमझेरा, झबुआ आदि मुख्य थे। यहाँ अनेक छोटे-बड़े राजे अथवा सामंत शासन करते थे। इनमें आपसी ईर्ष्या और द्वेष की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी और ये एक दूसरे के साथ संघर्ष करते रहते थे। वैसे इस क्षेत्र में मुगल सम्राट के सूबेदार भी नियुक्त किए जाते थे किंतु उनकी स्थिति भी इन दिनों दयनीय थी। परिस्थिति का लाभ उठाकर आमेर के शासक जयसिंह जैसे महत्वाकांक्षी और शक्तिशाली राजपूत नेताओं ने मालवा को अपनी महत्वाकांक्षा का शिकार बनाना चाहा। जयसिंह अपने राज्य का विस्तार करना चाहता था और किसी तरह से मालवा की सूबेदारी प्राप्त करने के लिए इच्छुक था। वह नहीं चाहता था कि मालवा के मुगल सूबेदारों को शांति एवं सुव्यवस्था की स्थापना में आंशिक सफलता भी प्राप्त हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति की आकांक्षा से वह इस बात के लिए इच्छुक था कि मराठे मालवा पर आक्रमण करें और मालवा के स्थानीय शासक उन्हें अपना सहयोग दें।

आमेर शासक जयसिंह और बाजीराव के मध्य मुगलों के विरुद्ध समझौता

बाजीराव के साथ भी इस संदर्भ में उसके पत्राचार हुए थे। बाजीराव भी यह अनुभव कर रहा था कि वह सहज ही मालवा से चैथ और सरदेशमुखी वसूल कर सकता है। उसने शाहू से मालवा पर आक्रमण करने की अनुमित माँगी। कुछ मराठा सरदारों ने बाजीराव की इस नीति का विरोध किया, किंतु अंत में उसे उसकी अनुमित मिल गई। बाजीराव ने अदाजी पवार, मल्हार राव होलकर, कान्होजी कदमबन्दे, रानोजी सिंधिया और अम्बा जी पंत आदि जैसे योग्य मराठा सरदारों पर मालवा के क्षेत्रों से चैथ और सरदेशमुखी की उगाही और स्थानीय लोगों के साथ संबंध स्थापित करने का भार सौंपा। इस उद्देश्य की पूर्ति में उसे आशातीत सफलता भी मिली।

मालवा के विरुद्ध मराठों का आक्रमण 1721 ई.

इन सफलताओं से प्रेरित होकर उसने मालवा और बुंदेलखंड के प्रांतों पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। 1728 ई. के अक्टूबर महीने में उसने अपने भाई चिमनाजी अप्पा को मालवा पर आक्रमण करने के लिए भेजा। चिमनाजी के साथ आदा जी, मल्हार राव, रानोजी जैसे अन्य अनुभवी मराठा नेता भी भेजे गए। इस समय मालवा का सूबेदार एक योग्य और साहसी अधिकारी गिरधर बहादुर था। वह मराठों से सचेत था और उसने मालवा की सुरक्षा का पूरा प्रबंध कर करों की उगाही और शासन में शक्ति से काम लेता था, अतः स्थानीय असंतुष्ट थे और जब मराठों ने मालवा पर आक्रमण किया तो उन शासकों ने मराठों को अपना सहयोग दिया।

4.4.4.10. अमझेरा का युद्ध

गिरधर बहादुर और मराठों के बीच 9 दिसंबर, 1728 ई. को धार के निकट अमझेरा में भयं कर युद्ध हुआ। इस युद्ध में चिमनाजी के कुशल नेतृत्व में मराठों ने निर्णायक विजय प्राप्त की और मालवा का सूबेदार गिरधर बहादुर तथा उसके अनेक सगे-संबंधियों एवं सहयोगी युद्धभूमि में काम आए। मालवा के विरुद्ध बाजीराव की यह सफलता प्रशंसनीय कही जा सकती है।

मराठों की विजय और इस युद्ध का महत्व

मालवा पर अब मराठों का दृढ़ नियंत्रण हो गया। बाजीराव का प्रभाव और भी अधिक बढ़ गया। मालवा की सफलता ने मराठों को बुंदेलखंड पर भी आक्रमण करने को प्रेरित किया। मराठों ने बुंदेला शासक छत्रशाल को युद्ध में पराजित कर कैद कर रखा था, किंतु वह जेल से भागकर मराठों से जा मिला और दोनों की सेना ने सम्मिलित रूप से मुहम्मद खाँ बंगाश पर आक्रमण कर दिया। इस युद्धमें मुहम्मद खाँ की पराजय हुई और उसे इस शर्त पर फर्रूखाबाद लौटने की अनुमित दी गई कि भविष्य में वह बुंदेलखंड में कभी पैर नहीं रखेगा। बाजीराव को उसे सहायता के उपलक्ष्य में छत्रसाल ने अपने दानों पुत्र हिरदेशाह तथा जगतरात को बाजीराव के संरक्षण में सौंप दिया तथा उसे एक बड़ी जागीर भी दी जिसमें कालपी, झाँसी, कूच, सागर गरखोटा, भाटा, हृदय नगर आदि के क्षेत्र सम्मिलित थे। संभवतः इसी समय उसने पेशवा को मस्तानी भी भेंट में दी। मस्तानी एक अत्यंत रूपवती मुस्लिम नर्तकी थी। वह एक आकर्षक व्यक्तित्व की स्वामिनी थी। एक अच्छी गायिका के साथ-ही-साथ वह घुड़सवारी जैसे कठिन कार्यों में भी दक्ष थी। उसने अपने इन्हीं गुणों से बाजीराव के हृदय को मोह लिया। उसके द्वारा बाजीराव को एक पुत्र भी हुआ जिसका नाम शमशेर बहादुर था। पेशवा ने बुंदेलखंड की जागीर का एक भाग शमशेर बहादुर को दे दिया।

4.4.4.11. बाजीराव और मस्तानी

बाजीराव मस्तानी को हृदय से चाहता था और उसी के संसर्ग में आकर संभवतः उसने माँस खाना और शराब पीना भी सीख लिया था। बाद में पेशवा परिवार के सदस्यों ने मस्तानी को एक षड्यंत्र के द्वारा बंदी बनाकर बाजीराव के साथ उसके संबंधों का अंत कर दिया कहते हैं कि बाजीराव इस सदमे को बर्दास्त नहीं कर सका और अंत में इसके चलते ही उसकी मृत्यु हो गई।

मालवा और बुंदेलखंड पर मुगल सम्राट द्वारा अपनी रक्षा का असफल प्रयास

मालवा और बुंदेलखंड में बाजीराव के नेतृत्व में मराठों की बढ़ती हुई इस शक्ति को मुगल सम्राट बर्दास्त नहीं कर सकता था। वह इन क्षेत्रों से मराठों को जल्द-से-जल्द भगा देना चाहता था। उन दिनों आमेर नरेश जयिस को मालवा की सूबेदारी मिली हुई थी। जयिस है ने बाजीराव के साथ ग्यारह लाख आर्थिक चैथ देकर मराठों से मांडू का गढ़ वापस ले लेने के उद्देश्य से एक संधि कर ली थी। इतना ही नहीं उसने पेशवा को इस शर्त पर नायबसूबेदार बनाने के लिए भी राजी कर लिया था कि वह भविष्य में मुगल क्षेत्रों पर आक्रमण नहीं करेगा किंतु इस संधि और समझौते को कार्यान्वित होने के पूर्व ही मुहम्मद खाँ बंगाशा मालवा का सूबेदार बनाकर भेज दिया गया। मुगल सम्राट और मुहम्मद खाँ बंगाश बलपूर्वक

मराठों को मालवा और बुंदेलखंड से निकालने के लिए उद्यत हो उठे, किंतु मराठों के विरुद्ध उन्हें आंशिक सफलता भी नहीं मिल पाई और मराठों का इन क्षेत्रों पर पूर्ववत अधिकार बना रहा।

4.4.4.12. मुगल-मराठों के मध्य शांति समझौता

बाजीराव की शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। मालवा और बुंदेलखंड पर पेशवा ने मराठों के वास्तविक अधिकार की स्थापना की। मालवा में बाजीराव ने अपने विश्वस्त प्रतिनिधियों की नियुक्ति की तथा छत्रपति ने चिमनाजी को वहाँ से चैथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दिया। मुगलों ने मालवा में मराठों की शक्ति विस्तार को रोकने का लाख प्रयत्न किया, किंतु उन्हें इसमें कोई सफलता नहीं मिली। अब मराठों के साथ संधि कर लेने के सिवा मुगल सम्राट के लिए कोई दूसरा मार्ग नहीं बना। बाजीराव निम्नलिखित शर्तों पर सम्राट के साथ संधि करने के लिए तैयार था :- 1. मुगल सम्राट के द्वारा उसे मालवा की सूबेदारी प्रदान की जाए, 2. पेशवा को निजी व्यय हेतु तेरह लाख रुपये दिए जाएँ, 3. शाहू से दक्षिण के मुगल सूबे से सरदेशमुखी वसूल करने के बदले में छह लाख रुपये की माँग उस समय तक स्थिगित रखी जाए जब तक छत्रपित वास्तविक रूप से उन पर अपना अधिकार न कर ले। सम्राट ने 1736 ई. में बाजीराव की शर्तों पर मराठों के साथ संधि कर ली। बाद में उसने बाजीराव तथा चिमनाजी को क्रमशः सात हजारी और पाँच हजारी मनसब पदों पर नियुक्त किया। इस संधि के चलते पेशवा की शक्ति एवं प्रतिष्ठा का काफी विस्तार हुआ।

4.4.4.13. गुजरात में मराठा शक्ति का विस्तार

मालवा पर मराठों का अधिकार-सत्ता की स्थापना के पश्चात् बाजीराव ने गुजरात पर भी अपनी शक्ति का विस्तार करना चाहता था। इसके पूर्व शाह्र का सेनापति खंडेराव दामड़े छत्रपति के आदेश पर गुजरात से चैथ आदि की वसूली का प्रयत्न किया करता था। 1725 ई. में गुजरात के सुबेदार ने मराठों के साथ संधि कर ली और उन्हें चैथ तथा सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दे दिया। बाजीराव गुजरात पर दामड़े की बढ़ती हुई शक्ति को पसंद नहीं करता था। अतः 1727 ई. में उसने गुजरात के सूबेदार के साथ संधि कर जाँच आदि करों की वसूली का अधिकार प्राप्त कर लिया। अस्तु पेशवा दामड़े परिवारों के बीच वैमनस्यता बढ़ती ही गई। शाह को यह पसंद नहीं था, किंतु वह कुछ कर भी नहीं सकता था। वस्तुतः इस समय तक पेशवा की शक्ति काफी बढ़ गई थी और छत्रपति नाम मात्र का शासक रह गया था। 1729 ई. के दिसंबर महीने में खंडेराव की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र त्रियंबक राव दामड़े शाह का सेनापति बना। त्रियंबक राव पेशवा की शक्ति एवं योग्यता से द्वेष रखता था, अतः दोनों परिवारों के बीच की आपसी वैमनस्यता अब अपनी चरमसीमा तक पहुँच गई। बाजीराव ने 1731 ई. में गुजरात के नए सूबेदार मारवाड़ नरेश अभयसिंह के साथ संधि कर गुजरात पर त्रियंबक राव के विरुद्ध आक्रमण करने का निश्चय किया। बाजीराव ने छत्रपति को बिना सूचित किए हुए गुजरात में एक सेना भेज दी। पेशवा और त्रियंबक राव एवं उसके सहयोगियों की सेना की मुठभेड़ दमोय के निकट भीलापुर के मैदान में हुई। त्रियंबक राव तथा उसके सहयोगी इस संघर्ष में पराजित हुए और त्रियंबक राव को मार डाला गया। त्रियंबक राव की मृत्यु से पेशवा का अंतिम शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी समाप्त हो गया और अब वह सर्वशक्तिशाली बन बैठा। गुजरात में दामड़े परिवार के प्रभुत्व की समाप्ति हो गई और पेशवा के सहयोग से यहाँ गायकवाड़ परिवार का प्रभाव बढ़ता चला गया। प्रारंभ में गुजरात पर पिलाजी गायकवाड़ का अधिकार रहा, किंतु 1738 में राजा अभय सिंह ने उसकी हत्या करवा दी, किंतु पिलाजी का उत्तराधिकारी दमा जी द्वितीय की शक्ति गुजरात में बराबर बढ़ती गई। दूसरी ओर गुजरात के मुगल सूबेदारों की शक्ति प्रायः समाप्त होती गई। 1737 ई. में ही यह तय किया जा चुका था कि गुजरात की संपूर्ण आय का पचास प्रतिशत गायकवाड़ को

दिया जायेगा और शेष रकम मुगल सूबेदार की होगी। बाद में 1738 ई. तक गुजरात के मुगल सम्राट की शक्ति का पूर्णतया लोप हो गया और यह प्रांत मराठा-राज्य का एक अंग बन कर रह गया।

4.4.4.14. दिल्ली पर मराठों का आक्रमण और भोपाल का युद्ध अवध और दिल्ली पर मराठों का आक्रमण

बाजीराव के बढ़ते हुए प्रभाव से दोआब और दिल्ली के क्षेत्र भी अछूते नहीं बच सके। 1737 ई. में पेशवा ने अवध के सूबेदार सआदत खाँ को सीख देने के उद्देश्य से यमुना पार कर अवध को लूटा। अवध को लूटने के पश्चात् मराठों ने राजधानी को जी भर कर लूटा और जलाया। मुगल सम्राट मराठों के इस अप्रत्याशित आक्रमण से अत्यंत भयभीत हो गया और उसने उनके विरुद्ध एक सेना भेजी। बाजीराव ने सम्राट की सेना को बिना किसी कठिनाई के परास्त कर दिया। दिल्ली पर पेशवा के आक्रमण का उद्देश्य सिर्फ मराठा शक्ति का प्रदर्शन था न कि दिल्ली को जीतना। अस्तु वह जल्द ही दक्षिण लौट गया।

निजाम-उल-मुल्क द्वारा मराठों पर पुन: आक्रमण और उसकी पराजय

मराठों के शक्ति विस्तार से चिंतातुर हो सम्राट ने दक्षिण से मराठों के दमन हेतु निजाम को दिल्ली बुलाया। निजाम सम्राट के आग्रह पर जुलाई 1737 ई. में दिल्ली गया। उसने मालवा की सूबेदारी अपने बेटे को दिलवायी और स्वयं मराठों को नर्मदा के पार खदेड़ने के लिए प्रयत्नशील हो उठा। बाजीराव पहले से ही अपने इस विरोधी से लोहा लेने की तैयारी किए बैठा था और जब दोनों के मध्य संघर्ष हुआ तो पहले की तरह पुनः मराठों ने निजाम को दिसंबर, 1737 ई. में भोपाल के निकट परास्त कर दिया। मराठों ने निजाम को 17 जनवरी, 1738 ई. को दोराहा सराय नामक स्थान पर संधि के लिए बाध्य कर दिया। इस संधि के अनुसार 1. पेशवा को संपूर्ण मालवा प्रदान कर दिया गया और नर्मदा और चंबल के बीच दोराहा सराय की संधि के क्षेत्र पर उसकी अधिकास्सत्ता को मान लिया गया, 2. निजाम ने बाजीराव को पच्चीस लाख रुपये देने का तथा इस संधि को सम्राट से स्वीकृत कराने का वादा किया। यद्यपि इस संधि के पक्ष में सम्राट को फर्मान सन् 1741 ई. में बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् प्राप्त हुआ। मराठों ने इसके पूर्व ही संधि में उल्लेखित सभी क्षेत्रों पर अपनी वास्तविक सत्ता की स्थापना कर ली थी। बाजीराव की नीति सदा सम्राट विरोधी रही।

राजस्थान पर मराठों का आक्रमण

मराठे राजपूताने पर भी आक्रमण करने से नहीं चूके। वस्तुतः अब तक राजस्थान का गौरव समाप्त हो चुका था और अब मराठों ने वीर राजपूतों का स्थान ग्रहण कर लिया था। चिमनाजी तथा बाजीराव दोनों ने राजस्थान के क्षेत्रों पर भी आक्रमण किए तथा वहाँ से चैथ आदि वसूल किए।

4.4.4.15. बाजीराव तथा आंग्रे, सिद्दी और पुर्तगाली आंग्रे तथा बाजीराव

उत्तर भारत में अपनी सफलता के पश्चात् पेशवा ने पुनः अपना ध्यान दक्षिण की ओर आकृष्ट किया। पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच कोंकण का उपजाऊ एवं विस्तृत क्षेत्र अभी भी पेशवा की अधिकार सत्ता से मुक्त था। कोंकण में तीन प्रतिद्वंद्वी शक्तियाँ थीं। कोलवा के अष्टे, जंजीरा के सिद्दी और गोपा के पुर्तगाली। इन शक्तियों के बीच अपने-अपने प्रभुत्व की स्थापना के लिए निरंतर संघर्ष चल रहा था। शिवाजी के समय से ही अष्टे परिवार का इस क्षेत्र पर प्रभुत्व स्थापित था। शाहू के राज्यारोहण के समय कान्होजी आंग्रे की शक्ति काफी बढ़ गई थी और वह एक स्वतंत्र शासक बन बैठा था। कान्होजी ने शाहू को छत्रपति स्वीकार कर लिया था किंतु पेशवा के आधिपत्य को उसने मानने से इंकार कर दिया।

जंजीरा के सिद्दी तथा मराठों की बीच संघर्ष

कान्होजी की मृत्यु के पश्चात् शेखो जी को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। शेखो जी एक सफल शासक प्रमाणित हुआ। किंतु उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके दो भाई शंभोजी और मानाजी के बीच उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर गृहयुद्ध प्रारंभ हो गया। बाजीराव की मध्यस्थता से आंशिक शांति की स्थापना की जा सकी। आंग्रे के राज्य को दोनों भाइयों के बीच दो भागों में विभक्त कर दिया गया, किंतु यह शांति स्थायी नहीं रह सकी। इनके बीच आपसी द्वेष और संघर्ष चलते रहे। अस्तु, धीरे-धीरे आंग्रे परिवार की शक्ति घटती चली गई और उसका फायदा पुर्तगालियों तथा अंग्रेजों ने उठाया। इस क्षेत्र में दूसरी शक्ति जंजीरा के सिद्दी थे जो मराठों के समान शक्तिशाली और उनके प्रबल विरोधी थे। मराठों की पुरानी राजधानी रायगढ़ इन्हीं सिद्दियों के अधिकार में थी। शाहू इस पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। अतः 1733 ई. में बाजीराव ने सिद्दियों के विरुद्ध युद्ध का श्रीगणेश कर दिया और चिमनाजी के नेतृत्व में मराठी सेना ने रायगढ़ पर अपना अधिकार कर लिया। मराठों को सिद्दियों के विरुद्ध सफलता मिली और सिद्दी शासक रणस्थल में ही मारा गया, किंतु मराठे जंजीरा को जीतने अथवा सिद्दियों की शक्ति को पूर्णतया समाप्त करने में असफल रहे। अंत में 1736 ई. में सिद्दियों ने मराठों के साथ एक संधि कर ली। इस सिध के अनुरूप सिद्दियों के आधे क्षेत्रों पर मराठों का अधिकार हो गया और सिद्दी शासक मराठा शासक का एक करंद सामंत हो गया।

आंग्रे और सिद्दियों के समान गोआ के पुर्तगाली भी मराठा विरोधी थे और वे पेशवा का निरादर करने से भी बाज नहीं आते थे। पुर्तगालियों के दमन का भार बाजीराव ने चिमनाजी को सौंपा। मराठा ने पुर्तगालियों के विरुद्ध सशक्त हमले किए तथा 1737 ई. में चिमनाजी ने थान पर अधिकार कर लिया और सालसेट को लूटा। इसके पश्चात् वेसीन दुर्ग पर घेरा डाला गया और अंत में 1739 ई. में इस दुर्ग पर मराठों का अधिकार हो गया। पुर्तगालियों के विरुद्ध संघर्ष ने अनुभव किया कि उन्हें पूर्ण रूप से पराजित करना टेढ़ी खीर है। अतः गोआ, दमन, द्वीप आदि पुर्तगाली क्षेत्रों पर मराठों ने अधिकार करने का प्रयत्न नहीं किया। फिर भी, पुर्तगालियों के विरुद्ध इस संघर्ष में मराठों को अनेक क्षेत्र एवं आर्थिक लाभ हुए। मराठों ने उनके प्रति धार्मिक उदारता की नीति अपनाई। पुर्तगालियों के विरुद्ध मराठों की इस सफलता से बम्बई के अंग्रेजों ने घबराकर उनके साथ जुलाई, 1739 ई. में एक संधि कर ली और उन्हें दक्षिण में अनेक व्यापारिक सुविधाएँ प्रदान कीं।

बाजीराव की अंतिम सफलता नासिरजंग (निजाम-उल-मुल्क का द्वितीय युद्ध) की पराजय और 8 मार्च, 1740 ई. को मंगी शिवगाँव की संधि थी।इस संधि के द्वारा नासिरजंग ने खरगाँव और हांडिया के जिले मराठों को सुपुर्द कर दिए। लगभग मंगी शिवगाँव की संधि चालीस वर्ष की व्यवस्था में नर्मदा के किनारे राबर नामक स्थान पर बाजीराव की अचानक मृत्यु हो गई।

4.4.5. पेशवा बालाजी बाजीराव (1740-1761 ई.)

बाजीराव की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र बालाजी बाजीराव, जिसे नाना साहब के नाम से भी संबोधित किया जाता है। 4 जुलाई, 1740 ई. को शाहू के द्वारा पेशवा के पद पर नियुक्त किया गया। बालाजी बाजीराव को पेशवा के पद पर नियुक्ति निर्विध्न नहीं थी। बाजीराव के शत्रुओं ने एक षड्यंत्र के द्वारा बालाजी बाजीराव के रास्ते को अवरूद्ध करना चाहा और शाहू के सामने बाबूजी नायक जोशी का नाम पेशवा पद के लिए प्रस्तावित किया, किंतु शाहू ने उनके इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया, क्योंकि वह बालाजी के पूर्वजों के प्रति आभारी था। उस समय बालाजी की अवस्था साढ़े अट्ठारह साल की थी, किंतु

अपने पिता के जीवन काल में ही उसने युद्ध नीति, कूटनीति तथा प्रशासन की उचित शिक्षा प्राप्त की थी। बालाजी का स्वभाव मृदुल था, किंतु उसकी सैनिक योग्यता अपने पिता के समान प्रखर नहीं थी। बालाजी के व्यक्तित्व पर उसके पिता बाजीराव प्रथम तथा चाचा चिमनाजी का गहरा प्रभाव था। पिता की मृत्यु के पश्चात् उसे चिमना जी का सिक्रय सहयोग मिलता रहा, किंतु दुर्भाग्यवश 27 दिसंबर, 1740 ई. में चिमनाजी की मृत्यु पूना में हो गई। चिमनाजी की मृत्यु से नए पेशवा की शक्ति को गहरा धक्का लगा।

4.4.5.1. संगोला समझौता तथा पेशवा शक्ति का चर्मोत्कर्ष

बालाजी बाजीराव के समय की मुख्य घटनाओं में छत्रपति का अंत और पेशवा शक्ति का चरमोत्कर्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है। बालाजी के पेशवा पद पर आरूढ़ होने के कुछ ही वर्ष बाद 15 दिसंबर 1749 ई. को छत्रपति शाह की मृत्यु हो गई। शाह की मृत्यु से पेशवा को दूसरी बार गहरा धक्का लगा। शाह् का अपना कोई पुत्र नहीं था। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में उसे अपना उत्तराधिकारी के मनोनीत करने की चिंता सता रही थी। किंतु अंत में शाह ने ताराबाई के पोते राजाराम द्वितीय को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया। अतः उसकी मृत्यु के पश्चात् 14 जनवरी, 1750 ई. को राजाराम द्वितीय का छत्रपति के रूप में राज्याभिषेक हो गया और अधिकांश मराठा सरदारों ने उसे छत्रपति के रूप में स्वीकार कर लिया, किंतु कुछ मराठा सरदारों ने उसका विरोध भी किया। दुर्भाग्यवश राजाराज में योग्यता की कमी थी। ताराबाई छत्रपति को अपने कठोर नियंत्रण में रखना चाहती थी और पेशवा के साथ उसके साठ-गाँठ के विरुद्ध थी। ताराबाई के साथ उसकी झड़पें होने लगीं। पेशवा तथा रघजी भोंसले जैसे मराठा नेता चाहते थे कि राजाराम अपने पद के अनुरूप कार्य करे, छत्रपति के पद को प्रतिष्ठित करे और मराठों का सहयोग प्राप्त करे, किंतु ताराबाई ने छत्रपति के रास्तें में रोड़े अटकाने शुरू किए। उसने राजाराम को बंदी भी बनाने का प्रयत्न किया। किंतु इसमें उसे सफलता नहीं मिली। अंत में जब वह राजाराम को किसी प्रकार से अपने चंगुल में न रख सकी तो उसने यह घोषणा कर दी कि वह उसका पौत्र ही नहीं है। पेशवा बालाजी बाजीराव के लिए यह एक गंभीर समस्या थी। वह यह नहीं समझ पा रहा था कि कैसे इस समस्या को सुलझाया जाए, किंतु अंत में रामचन्द्र बाबा तथा सदाशिव राव भाऊ की सहायता से उसने इसका निदान दूँढ़ ही लिया। पेशवा ने ताराबाई और उसके सलाहकार पंत सचिव को पूना बुलाया। पूना आने पर पंत सचिव को कैद कर कारागर में डाल दिया गया। पेशवा हृदय से छत्रपति के साथ प्रतिस्पर्धा की भावना रखता था, अस्तु उसने राजाराम द्वितीय एवं ताराबाई के मध्य संघर्ष को समाप्त करने के उद्देश्य से पूना में एक सभा की व्यवस्था की जिसमें ताराबाई, छत्रपति तथा सभी प्रमुख मराठा नेता तथा भोंसलें, सिंधिया, होलकर आदि निमंत्रित किए गए। इस सभा की बैठक हफ्तों चलती रही और अंत में इसकी समाप्ति संगोला समझौते के रूप में हुई। इस समझौते के अनुसार केंद्रीय सरकार का पूरे कार्यालय का स्थानां तरण सतारा से पूना कर दिया गया और छत्रपति तथा ताराबाई की पुना में रहने की ही व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त इस समझौते के द्वारा इस आशय की भी घोषणा की गई कि मराठा राज्य का हित इसी में है कि सर्वोच्च कार्यकारी शक्ति एक ही व्यक्ति के हाथ केंद्रीभृत रहे। अस्तु, यह तय किया गया कि शासन संबंधी सभी प्रमुख अधिकार छत्रपति पेशवा के हाथ में सौंप दें। यह समझौता अत्यंत महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। इसने मराठा राज्य में छत्रपति की शक्ति समाप्त कर दी और मराठा शासन में पेशवा की शक्ति अब सर्वोपिर हो गई और उसके पद को वैधानिक श्रेष्ठता प्राप्त हो गई। कुछ मराठा सरदारों ने इस समझौता का विरोध करना चाहा था, किंतु पेशवा ने कठोरता के साथ उनके विरोधों का अंत कर दिया। पेशवा ने सुमंत तथा प्रतिनिधि को बंदी बनाने तथा पदच्युत करने की धमकी दी तथा यशवंत राव दामड़े को सेनापित के पद से हटा दिया, गायकवाड़ से गुजरात का आधा क्षेत्र ले

लिया और बाबू जी नायक जोशी से कर्नाटक छीन लिया। प्रारंभ में ताराबाई ने भी पेशवा का विरोध किया, किंतु अंत में उसने अपने विरोध समाप्त कर दिए। मराठा इतिहास में यह परिवर्तन अनेक दृष्टिकोणों से हानिकारक सिद्ध हुआ। छत्रपति की शक्ति घट जाने से महाराष्ट्र के राजवंश की केंद्रीय शक्ति क्षीण हो गई। छत्रपति का पद मराठा जाति की एकता का प्रतीक था। उसे लोग श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। अब छत्रपति के कमजोर पड़ने से मराठा जाति की एकता सदा के लिए जाती रही।

4.4.5.2. पेशवा और मुगल सम्राट

दक्षिण के सूबेदार निजाम-उल-मुल्म ने पेशवा बाजीराव को मालवा की नायब-सूबेदारी दिलाने का आश्वासन दिया था। बालाजी ने पेशवा पद पर आरूढ़ हाने के पश्चात् इस पद की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किए। वह इस उद्देश्य से मालवा गया। धौलपुर में उसने मालवा के सूबेदार राजा जय सिंह के साथ बात-चीत की और एक समझौता भी किया। इस समझौता के द्वारा यह तय किया गया कि पेशवा को छह महीने के अंदर मालवा की नायब सुबेदारी दे दी जाएगी अगर वह मुगल सम्राट के प्रति स्वामीभक्त बना रहेगा और जयसिंह के साथ मित्रता एवं सहयोग का संबंध रखेगा। दिल्ली का तात्कालिक मुगल सम्राट मुहम्मद शाह जो भी हृदय से मराठा विरोधी था और वह मराठों को किसी भी तरह की सुविधा देने के पक्ष में नहीं था, परिस्थितियों से बाध्य होकर उसने 14 जुलाई 1741 ई. के एक फर्मान के द्वारा जयसिंह के अनुरोध पर पेशवा को मालवा का नायब सूबेदार नियुक्त कर दिया। वस्तुतः मालवा इसके पूर्व से ही मराठों के अधिकार में था और इस फर्मान के कारण मराठों का मालवा पर यह अधिकार वैधानिक हो गया। मुगल सम्राट ने पेशवा को मालवा की नायब सुबेदारी प्रदान करने के पूर्व निम्नलिखित शर्तों को रखा था - (1) मराठे मुगल प्रदेशों में उपद्रव नहीं मचाएँगे, (2) पेशवा पाँच सौ सैनिक घुड़सवारों को शाही सेवा के लिए मुगल राजधानी में रखेगा. (3) आवश्यकता पड़ने पर सम्राट के व्यय पर पेशवा 4000 मराठा सैनिकों की व्यवस्था सम्राट के लिए करेगा तथा (4) सम्राट ने व्यक्ति विशेष और धार्मिक संस्थाओं की जो जागीर मालवा में दी थी, पेशवा उन्हें जप्त नहीं करेगा और जनता के ऊपर करों में वृद्धि नहीं करेगा। इस तरह से पेशवा अब मुगल सम्राट का एक मनसबदार हो गया और सम्राट आवश्यकता पड़ने पर उसकी सहायता एवं सहयोग की आकांक्षा कर सकता था। वस्तुतः पेशवा स्वयं उस अवसर की ताक में था और वह चाहता था कि दिल्ली दरबार में उनकी स्थिति मजबूत हो जाए। बालाजी बाजीराव ने सम्राट को अपनी सेवा का वचन दिया। होलकर सिंधिया तथा अन्य मराठा सरदारों ने भी मुगल सम्राट को सहयोग देने की घोषणा की। मराठा नेताओं ने अपने वचन का पालन भी किया और अनेक बार उन्होंने सम्राट को सैनिक सहायता दी। परिणामस्वरूप दिल्ली दरबार में मराठों की स्थिति शक्तिशाली होती चली गई किंतु जब अहमद शाह अब्दाली के विरुद्ध मराठों ने सम्राट को सहायता की और वे युद्ध में हार गए तो उनकी शक्ति को गहरा धक्का लगा। वस्तुतः मुगल सम्राट को अपने वश में लाने के प्रयत्न में मराठों को बड़ी कीमत चुकानी पड़ी और उनकी शक्ति इसके बाद क्षीण होती चली गई।

4.4.5.3. कर्नाटक की विजय

बालाजी बाजीराव ने मराठा संघ को संगठित किया और अब मराठे भिन्मभिन्न क्षेत्रों में मराठा साम्राज्य के विस्तार में लग गए। मराठा कर्नाटक में अपनी शक्ति के विस्तार के लिए पहले से ही प्रयत्नशील थे। बाजीराव के पेशवा काल के अंतिम वर्षों में बरार के रघुजी भोंसले ने कर्नाटक पर हमले किए थे। रघुजी को तनजौर के शासक प्रताप सिंह का सहयोग भी प्राप्त था। प्रताप सिंह की शत्रुता कर्नाटक के नवाब दोस्त अली के साथ थी, क्योंकि वह तनजौर की स्वतंत्रता का अपहरण करने की इच्छा रखता था। बालाजी बाजीराव के पेशवा काल में रघुजी भोंसले ने पुनः कर्नाटक पर आक्रमण किए। कर्नाटक का

नवाब दोस्त अली के साथ संधि कर उसकी हत्या कर दी गई। रघुजी भोंसले ने दोस्त अली के पुत्र सफ्दर अली के साथ संधि कर ली। दोस्त अली का जामाता चंदा साहब रघुजी के इन कार्यों से क्षुब्ध था, अस्तु इन दोनों के बीच संघर्ष अनिवार्य हो गया। 1749 ई. के दिसंबर महीनें में रघुजी ने चंदा साहब को त्रिचना-पल्ली में घेर लिया और उसे बंदी बनाकर सतारा की जेल में भेज दिया। रघुजी ने पांडिचेरी पर भी आक्रमण करने का विचार किया क्योंकि वहाँ के पुर्तगाली चंदा साहब के मित्र थे, किंतु उसकी यह इच्छा पूरी नहीं हो पाई। रघुजी ने त्रिचनापल्ली को मुरार-राव घोरपदे को सौंप दिया और स्वयं पूना लौट गया। रघुजी भोंसले के अधीन नागपुर के भोंसले की शक्ति तेजी से बढ़ रही थीं और वह बालाजी पेशवा का एक प्रबल प्रतिद्वंद्वी के रूप में उभर रहा था। कर्नाटक तथा त्रिचनापल्ली पहले ही उसके अधिकार सत्ता में आ चुका था। 1738 ई. से ही छत्रपति ने पूर्वी मराठा राज्य के पूर्व क्षेत्रों को भोंसले के प्रभाव क्षेत्र में रख छोड़ा था। जिन दिनों रघुजी भोंसल कर्नाटक में संघर्ष कर रहा था उस समय उसे उड़ीसा से अलिवर्दी खाँ के विरुद्ध मीर हबीब का निमंत्रण मिला। मीर हबीब अलिवर्दी खाँ का विरोधी था, क्योंकि उसने मुर्शिदकुली खाँ के वंश के साथ विश्वासघात करके 1740 ई. में बंगाल पर अपना अधिकार कर लिया था। तत्पश्चात् सम्राट को 2 करोड़ रुपए देकर उसने अपने लिए बंगाल और उड़ीसा पर अपना स्वतंत्र अधिकार कर लिया था। रघुजी ने अलिवर्दी खाँ के विरुद्ध इन प्रांतों से चैथ आदि करों की वसूली के उद्देश्य से अपने राजस्व मंत्री भास्कर पंत की अधीनता में एक सेना भेजी। इस अभियान में भोंसले को तत्काल कोई विशेष सफलता नहीं मिली। पेशवा भोंसले की इस बढ़ती हुई शक्ति से खिन्न था। किंतु छत्रपति की मध्यस्थता के कारण पेशवा तथा भोंसले के बीच समझौता हो गया। अब रघुजी भोंसले की अलिवर्दी खाँ के विरुद्ध अभियान करने की पूरी छूट मिल गई। भास्कर पंत के नेतृत्व में पुनः मराठा सेना ने बंगाल पर आक्रमण किया। 1744 से लेकर 1751 ई. तक भोंसले बंगाल पर आक्रमण करता रहा। अलिवर्दी खाँ ने मराठों के इन आक्रमणों को असफल करने की पूरी कोशिश की और उसने चालाकी से मराठा सेनापति भास्कर पंत तथा उसके अन्य दूसरे सहयोगियों की हत्या करवा दी। किंतु अंत में उसे रघुजी भोंसले के साथ संधि करने के लिए बाध्य होना पड़ा। अलिवर्दी खाँ ने भोंसले को बंगाल और बिहार को चैथ के रूप में प्रतिवर्ष बारह लाख रुपये देने का आश्वासन दिया तथा उड़ीसा का प्रांत उसे सौंप दिया, किंतु मराठों ने उड़ीसा में स्वयं शासन नहीं किया और शासन का सारा भार उन्होंने स्थानीय सामंतों के कंधों पर डाल दिया। अलिवर्दी खाँ के विरुद्ध रघुजी भोंसले की यह सफलता महत्वपूर्ण प्रमाणित हुई और बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा पर मराठों की धाक जम गई।

4.4.5.4. महाराष्ट्र में प्रतिद्वंदियों पर पेशवा की विजय

संगोला समझौता के पश्चात् महाराष्ट्र में पेशवा की शक्ति काफी बढ़ गई थी और लगभग सभी मराठा सामंतों ने उसकी अधिकार सत्ता को स्वीकार कर लिया था, किंतु अनेक ऐसे मराठा सामंत भी थे जो पेशवा के प्रति द्वेष की भावना रखते थे और किसी तरह का सहयोग नहीं देना चाहते थे। इन विरोधी मराठा सामंतों को जल्द ही ताराबाई का नेतृत्व प्राप्त हो गया, जो पेशवा के प्रभुत्व को समाप्त करने की इच्छा रखती थी। ताराबाई ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर सतारा दुर्ग का घेरा डाल दिया और छत्रपति राजाराम को बंदी बना लिया। उसे खंडेराव दामड़े की विधवा पत्नी उमा बाई और सेनापित दामाजी गायकवाड़ का सहयोग भी प्राप्त था। दामाजी ने सतारा पर आक्रमण कर दिया, किंतु पेशवा के विरुद्ध दामाजी की पराजय हुई और उसे पेशवा के साथ संधि करनी पड़ी। इस संधि के द्वारा पेशवा को युद्ध क्षतिपूर्ति के रूप में आधा गुजरात और पच्चीस लाख रुपये देने पड़े, परंतु पेशवा को इससे शांति नहीं मिली और उसने दामाजी पर प्रत्याक्रमण कर दिया तथा दामाजी और उसके पुत्र को बंदी बना लिया। इस

घटना के बाद गायकवाड़ तथा पेशवा के बीच के संबंध बिगड़ गए अंत में गायकवाड़ को पेशवा के सामने आत्मसमर्पण करना पड़ा। अब पेशवा की सत्ता गुजरात में भी स्थापित हो गई। बाद में पेशवा ने गुजरात से मुगल सूबेदार को खदेड़ कर सारे प्रांत पर अपना अधिकार कर लिया। इन असफलताओं के बावजूद ताराबाई पेशवा का विरोध करती रही और सतारा से दुर्ग पर उस का पूर्ववत अधिकार बना रहा। किंतु अंत में जब उसने अनुभव किया कि पेशवा की शक्ति को सहज ही समाप्त नहीं किया जा सकता है तो अपनी स्वतंत्रता का आश्वासन पाकर उसने पेशवा के साथ संधि कर लेने में ही अपनी भलाई समझी। इसी बीच छत्रपति राजाराम कैद में ही 1770 ई. में मर गया था। उसकी मृत्यु के पश्चात् छोटे शाहू छत्रपति बना। किंतु अब छत्रपति का पद केवल नाममात्र का रह गया था और उसकी प्रतिष्ठा एवं शक्ति लगभग समाप्त हो गई थी। दूसरी ओर पेशवा की शक्ति एवं प्रतिष्ठा में काफी वृद्धि हो गई थी।

दक्षिण का मुगल सूबेदार निजाम-उल-मुल्क मराठों का प्रबल शत्रु था। मराठों के साथ निजाम की शत्रुता का प्रधान कारण मराठों के द्वारा निजाम के क्षेत्रों से चैथ आदि करों की वसूली, कर्नाटक पर मराठा सत्ता की स्थापना तथा दक्षिण में मराठा राज्य का विस्तार कहा जा सकता है। दूसरी ओर निजाम दिक्षिण में अपने अधीन पूर्ण स्वतंत्र राज्य की स्थापना का स्वप्न देख रहा था। अतः मराठा तथा निजाम के बीच संघर्ष अनिवार्य हो गया था। बहुत पहले से ही इनके बीच प्रभुत्व के प्रश्न को लेकर संघर्ष होते चले आ रहे थे। किंतु 1750 ई. से यह संघर्ष और अधिक व्यापक हो गया। 1748 ई. के जून महीने में निजाम-उल-मुल्क का देहांत हो गया। निजाम की मृत्यु के बाद उसका छोटा लड़का सलावत जंग फ्रांसीसी सेना की मदद से गद्दी प्राप्त करना चाहता था। मराठों ने उत्तराधिकार के इस झगड़े से लाभ उठाने के उद्देश्य से गाजीउद्दीन को अपना समर्थन दिया। दोनो प्रतिद्वं द्वियों के समर्थकों के बीच 1752 ई. तक अनेक लड़ाइयाँ हुई, जिनमें कभी मराठों की और कभी फ्रांसीसियों की विजय हुई। इसी बीच 1758 ई. में पेशवा के उम्मीदवार गाजीउद्दीन को विष दे दिया गया और मराठों के साथ सलावत-जंग ने संधि कर ली। इस संधि के अनुसार संपूर्ण बगलाना तथा खानदाने का क्षेत्र मराठों को दे दिया गया।

4.4.5.5. मराठे और निजाम

1758 ई. में निजाम-परिवार में पुनः गृह-कलह छिड़ गया। पेशवा ने फिर इससे लाभ उठाने का निश्चय किया। उसने निजाम पर आक्रमण करना चाहा। परिस्थितियाँ मराठा आक्रमण के अनुकूल थीं। उन दिनों हैदराबाद का फ्रांसीसी कमांडर जेनरल बुसी निजाम की सेना में नहीं था। निजाम के तोपखाने का सेनापित इब्राहिम खाँ गर्दी ने भी पेशवा से साथ साठगाँठ कर ली थी। अस्तु, 1759 ई. में पेशवा ने सदाशिव राव के नेतृत्व में चालीस हजार मराठा सैनिकों को हैदराबाद पर आक्रमण करने का आदेश दिया। सलावतजंग ने मराठों का सामना किया, किंतु मराठों ने इब्राहिम खाँ गर्दी के सिक्रय सहयोग से अहमदनगर दौलताबाद, बुरहानपुर और बीजपुर पर आसानी से अधिकार कर लिया। 30 फरवरी, 1760 ई. को उद्गीर के युद्ध में मराठों ने निजाम के विरुद्ध निर्णायक विजय प्राप्त की। निजाम युद्ध के मैदान से भाग खड़ा हुआ और वह ओंसा के द्वुर्ग में छिप गया। मराठा सेना ने ओंसा के द्वुर्ग को भी घेर लिया। निजाम को मराठों के साथ संधि करने के लिए बाध्य होना पड़ा। सदाशिवराव भाऊ ने निजाम को सदा के लिए शक्तिहीन करने के उद्देश्य से संधि की कड़ी शर्तें पेश कीं। इस संधि के अनुसार बीजापुर, बीदर और औरगाबाद के आस-पास के प्रदेश, जिससे मालगुजारी के रूप में साठ लाख रुपये की वार्षिक आय होती थी, मराठों को दे दिया गया। इसके अतिरिक्त असीरगढ़, बुरहानपुर, अहमदनगर, बीजापुर तथा दौलाताबाद के दुर्गों पर मराठों के अधिकार को स्वीकार कर लिया गया। निजाम ने मराठों को चैथ देने का भी आश्वासन दिया। दक्षिण में निजाम के विरुद्ध मराठों की यह सफलता प्रशंसनीय थी और ऐसा प्रतीत

होने लगा कि मराठे दक्षिण भारत में मुस्लिम सत्ता को मिटाकर उस क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेंगे।

4.4.5.6. बुंदेलखंड पर मराठों का अधिकार

पेशवा बालाजी बाजीराव अपने पिता के समान ही महत्वाकांक्षी था और वह संपूर्ण भारतवर्ष पर मराठों का प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था। वह जल्द बुंदेलखंड पर अपना अधिकार करना चाहता था, क्योंकि सैनिक दृष्टिकोण से यह क्षेत्र मराठों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण था। बुंदेलखंड से उत्तर की ओर दोआब और अवध पर पश्चिम में राजस्थान पर तथा पूर्व में बंगाल बिहार तथा उड़ीसा पर आसानी से आक्रमण किया जा सकता था। इसी उद्देश्य से बालाजी ने बुंदेलखंड पर 1741 ई. के पश्चात् लगातार आक्रमण किया और 1747 ई. तक प्रायः संपूर्ण बुंदेलखंड पर मराठों का अधिकार हो गया। मराठों ने बुंदेलखंड पर अधिकार कर झाँसी को अपने कार्य-कलापों का इस क्षेत्र में अपना प्रधान केंद्र बनाया।

4.4.5.7. मराठे और राजपूत

इस काल में मराठों ने राजपूताना को भी अपनी महत्वाकांक्षा का शिकार बनाना चाहा, किंतु इसमें उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस क्षेत्र में पवार, सिंधिया तथा होल्कर अलग-अलग से अपने प्रभुत्व की स्थापना करना चाहते थे, अस्तु इनके बीच ईर्ष्या की प्रबल भावना थी। पेशवा की मध्यस्थता से इनकी प्रतिद्वंद्विता में कुछ कमी आई क्योंकि उसने इनमें से प्रत्येक के प्रभाव क्षेत्र को निर्दिष्ट कर दिया था। 9 अक्टूबर, 1743 ई. को आमेर नरेश सवाई जयसिंह थे। जयसिंह की मृत्यु इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण घटना थी। उसकी मृत्यु के उपरांत उसके पुत्रों के बीच उत्तराधिकार के लिए संघर्ष प्रारंभ हो गया। जयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र ईश्वर सिंह ने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् आमेर के राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। किंतु उसका अनुज माधोसिंह जिसका जन्म सीसोदिया राजकुमारी के गर्भ से हुआ था, जिसने गद्दी पर अपने अधिकार का दावा किया। मेवाड़ के राणा जगजीत सिंह ने माधों सिंह को सैनिक सहायता देने का वचन दिया। शीघ्र ही दोनों पक्षों के बीच उत्तराधिकार का संघर्ष प्रारंभ हो गया जो लगभग सात वर्षों तक चलता रहा। दोनों पक्षों ने इस संघर्ष में मराठों से सहायता की याचना की। रानी जी सिंधिया तथा मल्हार राव होल्कर ने प्रारंभ में ईश्वर सिंह का समर्थन क्या और 1745 ई. में उन्होंने माधों सिंह को पराजित किया, किंतु इसी बीच रानी जी की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र जयप्पा जी सिंधिया और मल्हार राव होल्कर के बीच तीव्र मतभेद हो गए। अब मल्हार राव ने माधो सिंह का तथा सिंधिया ने ईश्वर सिंह का पक्ष लिया। पेशवा ने होल्कर और सिंधिया में समझौता कराने का असफल प्रयत्न किया। उत्तराधिकार के इस संघर्ष तथा मराठों के व्यवहार से असंतुष्ट होकर ईश्वर सिंह ने विष खाकर आत्महत्या कर ली और माधोसिंह उसका उत्तराधिकारी हो गया। माधोसिंह की सफलता में निःसंदेह मराठों का सहयोग था, किंतु वह मराठों की बढ़ती हुई लिप्सा एवं उनके व्यवहार से इनता अधिक क्षुब्ध हो उठा था कि उसने मराठों के दमन का निश्चय कर लिया। उसने जयप्पा जी सिंधिया तथा मल्हार राव होल्कर को विष देकर मारने का भी प्रयत्न किया। ये दोनों तो बच गए, किंतु 20 जनवरी, 1791 ई. को उसने अपने किले के अंदर लगभग तीस हजार मराठों की हत्या करवा दी। इस भाँति मराठा-राजपूत मैत्री का अंत हो गया और उनके बीच विरोध की खाई गहरी हो गई। 1754 से 1756 ई. के बीच मराठों ने पुनः राजस्थान की आतंरिक समस्याओं में हस्तक्षेप किया, किंतु अपने व्यवहार से इस क्षेत्र में उन्होंने अपने शत्रुओं की संख्या में ही वृद्धि की। यद्यपि सही तौर पर संपूर्ण राजस्थान पर मराठों का आतंक छाया रहा और मराठों ने जयपुर और भरतपुर के राज्यों से चैथ आदि करों की वसूली भी की, किंतु मराठे तथा राजपूतों के बीच हमेशा विरोध और मतभेद बना रहा।

4.4.5.8.मराठे और जाट

दक्षिण तथा उत्तर भारतवर्ष में मराठों की सफलताओं ने उनकी महत्वाकांक्षा में उत्तरोत्तर वृद्धि की। मराठे अब आगरा और अजमेर के क्षेत्रों पर भी अपना अधिकार स्थापित करने के लिए इच्छुक हो उठे, किंतु इन क्षेत्रों को भरतपुर का शासक सूरजमल तथा मारवाड़ का राठौर शासक भी अपने कब्जे में करना चाहते थे। इसका अवसर मराठों को मिल गया जब मीरबख्शी इमाद-उल-मुल्क ने उन्हें भरतपुर पर आक्रमण करने को कहा। इमाद-उल-मुल्क और भरतपुर के शासक सूर्जमल के बीच पहले से ही शत्रुता थी। यह निमंत्रण पाकर पेशवा ने मल्हार राव होल्कर को भरतपुर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। मल्हार राव होल्कर ने कुम्हेर के दुर्ग को घेर लिया। भरतपुर के जाट शासक सूर्जमल ने मराठों के साथ उन्हें चालीस लाख रुपये देकर संधि करने का प्रयत्न किया, पर रघुनाथ राव के प्रबल विरोध के कारण कुम्हेर का घेरा नहीं उठाया जा सका। अब युद्ध के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं बचा था। अतः जाटों ने मराठों का जम कर सामना किया और उन्हें युद्ध में पराजित किया। इस पराजय के बाद मराठों को सिर्फ कुम्हेर का घेरा ही नहीं उठाना पड़ा, बल्कि उन्हें जाट शासक को क्षतिपूर्ति के रूप में तीस लाख रुपये देने का भी वादा करना पड़ा। इसी समय इमाद-उल-मुल्क मराठों के सहयोग से तत्कालीन मुगल सम्राट अहमदशाह की हत्या कर दिल्ली की गद्दी पर आलमगीर द्वितीय को आरूढ़ करने में सफल हुआ और अब वह स्वयं वजीर बन बैठा। इस सहायता के बदले में इमाद-उल-मुल्क ने मराठों को 82 लाख रुपया देने का वचन दिया।

4.4.5.9. उत्तर भारत में मराठा सत्ता का विस्तार

मराठे पहले से ही उत्तर भारतवर्ष में अपनी सत्ता की स्थापना का मधुर स्वप्न देख रहे थे। पेशवा बालाजी बाजीराव के काल में उन्हें अपने इस सपने को साकार करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। इस बात की पहले ही चर्चा कर दी गई है कि मराठों ने जयपुर और भरतपुर के राजपूत राज्यों से चैथ आदि करों की वसूली की। राजपूतों के साथ उनकी मित्रता में कटुता तो अवश्य उत्पन्न हो गई, किंतु साथ-ही-साथ राजपूताना के क्षेत्रों में भी उनका आतंक छा गया। उसी तरह से रघुजी भोंसले ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा के क्षेत्रों पर मराठा प्रभुत्व को स्थापित किया। बंगाल का नवाब अलिवर्दी खाँ ने मराठों को बारह लाख रुपये चैथ के रूप में देना स्वीकार कर लिया था और उड़ीसा पर मराठों के अधिकार को मान लिया था। इस तरह से उत्तर भारत के एक अत्यंत विस्तृत क्षेत्र पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मराठों का आधिपत्य स्थापित हो गया था। अट्ठारवीं सदी के उत्तर्रार्द्ध में उत्तर भारत में राजनीतिक घटनाएँ तेजी से मोड़ ले रहीं थीं। मुगल सम्राट की शक्ति दिन-प्रतिदिन क्षीण होती चली जा रही थी। केंद्रीय सत्ता की कमजोरियों का लाभ उठाकर विदेशी लुटेरे अपना आतंक फैला रहे थे।

4.4.5.10. अहमदशाह अब्दाली का उत्तर भारत पर आक्रमण

मुहम्मद शाह के शासन काल में प्रसिद्ध अफगान लुटेरा अहमद शाह अब्दाली ने भारत पर अपने आक्रमणों को प्रारंभ किया। 1748 ई. में पहली बार अब्दाली ने सिन्धु और झेलम पार करके पंजाब पर आक्रमण किया। उसने लाहौर और सरहिंद पर अपना अधिकार भी कर लिया, किंतु मार्च, 1748 ई. के मानपुर में सम्राट की सेना ने उसे पराजित कर दिया और अब्दाली को स्वदेश लौट जाना पड़ा। इसी बीच मुहम्मद शाह की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र अहमद शाह मुगल सम्राट बना। अहमदशाह ने अवध के सूबेदार सफदरजंग को अपना वजीर नियुक्त किया। इसी समय 1749 ई. में अब्दाली ने दूसरी बार भारतवर्ष पर आक्रमण किया। इन दिनों मुईन खाँ पंजाब का सूबेदार था। उसने अब्दाली की सेना को आगे बढ़ने से रोका। मुईन खाँ ने सम्राट से सहायता की याचना की, किंतु जब सम्राट ने उसके आग्रह पर ध्यान

नहीं दिया तो बाध्य होकर उसे अब्दाली के साथ चौदह लाख रुपये वार्षिक कर देने का वचन देकर संधि कर लेनी पड़ी। 1751 ई. में अहमदशाह अब्दाली ने तीसरी बार भारतवर्ष पर आक्रमण किया। इस बार भी सम्राट की ओर से मुईन खाँ को अफगान आक्रमण के विरुद्ध किसी तरह की सहायता न मिली। अतः उसने लाहौर तथा मुल्तान देकर अब्दाली से अपना पिंड छुड़ाया। अब्दाली ने कश्मीर के क्षेत्र को जीत कर वहाँ अपने व्यक्ति को सूबेदार के पद पर नियुक्त किया। इन क्षेत्रीय उपलब्धियों के अतिरिक्त उसे भारतीय सूबों से लगभग पच्चास लाख रूपये की वार्षिक आय होने लगी थी। अब्दाली ने पंजाब को मुईन खाँ के अधीन ही रहने दिया था। मुईन खाँ की मृत्यु के पश्चात् उसका नाबालिंग पुत्र पंजाब का सूबेदार बना और उसकी माता मुगलानी बेगम को उसका संरक्षक बनाया गया। पंजाब में अनेक लोग मुगलानी बेगम के व्यवहार से असंतुष्ट होकर अशांति फैलाने लगे। पंजाब में अशांति की इस स्थिति को शांत करने के उद्देश्य से अब्दाली ने पहले एक सेना भेजी और बाद में वह स्वयं 1756 ई. के नवंबर महीने में भारतवर्ष की ओर बढ़ा। यह भारवतर्ष पर उसका चौथा आक्रमण था। इस बार वह दिल्ली पर भी आक्रमण करने के उद्देश्य से बढ़ा था। जल्द ही लाहौर और सरहिंद पर अब्दाली का अधिकार हो गया। अब्दाली के साथ उसका बेटा तैमूर शाह, सेनापित जहाँ खाँ तथा मुगलानी बेगम थी। उसने कश्मीर पर आक्रमण कर उसके शासक को कर देने के लिए बाध्य किया। अब अब्दाली ने दिल्ली पर आक्रमण किया। सम्राट अब्दाली के विरुद्ध दिल्ली की जनता अथवा स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ रहा। अब्दाली ने दिल्ली को मनमाने ठंग से लूटा और सम्राट मुहम्मद शाह की कन्या के साथ उसने जबर्दस्ती विवाह कर लिया। दिल्ली के उपरांत उसने मथुरा, गोकुल तथा महावन तक आक्रमण कर लूट-पाट मचाया। स्वदेश लौटने के पूर्व उसने अपने पुत्र तैमुर शाह को पंजाब का शासक नियुक्त किया और रूहेला सरदार नाजीब खाँ को मीर बख्शी के पद पर बैठाया।

अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने साम्राज्य की नींव को हिला दिया। सम्राट की शक्ति वैसे ही समाप्त होती चली जा रही थी और जब दरबार में षड्यंत्र और द्वेष की भावना प्रबल हो उठी तो उसकी स्थिति और भी दयनीय हो गई। सम्राट अहमदशाह ने सफदरजंग को अपना वजीर नियुक्त किया था। सफदरजंग फर्रूखाबाद और रूहेलखंड के पठानों से चिढ़ा हुआ था। वजीर बनते ही उसने इस क्षेत्र के पठानों पर आक्रमण कर दिया, किंतु सितंबर, 1750 ई. में पठानों ने सफदरजंग को दोआब क्षेत्र में पराजित किया और अवध तथा इलाहाबाद के सूबों को जीत लिया। इस पराजय के पश्चात् दरबार में उसे मलका-ए-जमानी तथा ख्वाजा आबिद खाँ जैसे शक्तिशाली सामंतों का कडा विरोध सहना पडा। अपनी सुरक्षा के उद्देश्य से सफदरजंग को जयप्पा जी सिंधिया, मल्हार राव होल्कर तथा जाट शासक सूरजमल का सहयोग प्राप्त करना पडा। उसने सिंधिया तथा होल्कर को पच्चीस हजार रुपये प्रतिदिन देने का वचन दिया। सफदरजंग ने 22 अप्रैल, 1752 ई. को मराठों के साथ निम्नलिखित शर्तों पर एक समझौता भी कर लिया। (क) पेशवा सम्राट की रक्षा बाह्य एवं आतंरिक आक्रमणों से करेगा(ख) सम्राट मराठों को इसके बदले में तीस लाख रुपया अब्दाली के आक्रमण को विफल बनाने के लिए और बीस लाख रुपया देशी शत्रुओं को रोकने के लिए देगा, (ग) पेशवा को आगरा और अजमेर का सूबेदार नियुक्त कर दिया जाएगा तथा (घ) पंजाब, सिंध और दोआब के क्षेत्रों से पेशवा को चैथ आदि करों की वसूली का अधिकार दिया जाएगा। मराठों तथा सफदरजंग के बीच हुई इस संधि को सम्राट की मान्यता नहीं मिली। इस प्रश्न को लेकर इन दोनों के बीच गृह युद्ध छिड़ गया। अंत में सफदरजंग को वजीर के पद से हट जाना पड़ा और पुनः उसे अवध तथा इलाहाबाद का सूबेदार बना दिया गया। सम्राट ने अहमदशाह अब्दाली के साथ एक संधि कर ली और पंजाब तथा मुल्तान के प्रदेश उसे दे दिए।

1752 ई. की संधि के द्वारा सम्राट ने पंजाब और मुल्तान का प्रांत अहमदशाह अब्दाली को दे दिया था। अब्दाली ने प्रारंभ में इस प्रांत में तत्कालीन सूबेदार मुईब खाँ और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी विधवा पत्नी मुगलानी बेगल की संरक्षता में उसके पुत्र को ही सूबेदार रहने दिया। किंतु भारतवर्ष पर अपने चौथे आक्रमण के पश्चात् उसने अपने पुत्र तैमूर शाह अब्दाली को पंजाब का शासक नियुक्त कर दिया। जब भारवतर्ष पर अब्दाली का आक्रमण हो रहा था।

बुंदेलखंड राजस्थान आदि क्षेत्रों में अपनी सत्ता की स्थापना के पश्चात् 1757 ई. में रघुनाथ राव के नेतृत्व में मराठे तेजी से दिल्ली की ओर बढ़े। दिल्ली में मराठों ने अब्दाली के प्रतिनिधि नजीबुद्दौला को परास्त किया। इस घटना से मुगल सम्राट और वजीर दोनों अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने मराठों की खूब आवभगत की। अब मराठे पंजाब की ओर बढ़े। रघुनाथ राव ने अदीनाबेग के सहयोग से पंजाब के अफगान सूबेदार तैमुर शाह अब्दाली को मार भगाया। रघुनाथ राव ने अब्दुल समद खाँ तथा अब्दुर्हमान को एक बड़ी सेना देकर काबुल तथा कांधार को अब्दाली से छीन लेने का अदेश दिया। तत्पश्चात् तुको जी होल्कर एवं सावा जी सिंधिया के अधीन एक शक्तिशाली मराठी सेना को छोड़कर उन्हें पंजाब की सुरक्षा का आदेश दे रघुनाथ राव मई 1858 ई. में पूना लौट आया। मराठों ने अदीनाबेग को पंजाब का सूबेदार नियुक्त किया, किंतु इस क्षेत्र को मराठे अच्छी तरह से संगठित करने में असफल रहे और पंजाब में वे अपनी सत्ता को स्थायी नहीं कर सके। इस प्रकार बालाजी बाजीराव के पेशवा काल में मराठों की शक्ति का विस्तार लगभग संपूर्णभारत में हो गया। मराठे पूर्व और पश्चिम में समुद्र तट तक फैल गए और उत्तर में पंजाब से लेकर दक्षिण में कर्नाटक तक का विस्तृत क्षेत्र उनके अधिकार में आ गया। बालाजी बाजीराव ने इस प्रकार अपने पिता की साम्राज्यवादी इच्छा को पूरा किया।

अब्दाली के चतुर्थ आक्रमण के पश्चात् भारत से उसके लौटते ही यहाँ की राजनीतिक स्थित में पुनः तेजी से परिवर्तन होने लगा। देश में मराठा शक्ति का विस्तार हो रहा था। मराठों के बीच पेशवा के अतिरिक्त रघुनाथ राव, साखा राम बापू, मल्हार राव होल्कर, दत्ताजी सिंधिया तथा सदाशिव राव भाऊ आदि जैसे नेता पुनः शक्तिशाली हो उठे थे और मुगल सम्राट की स्थित दयनीय हो गई थी। मुगल दरबार में अहमदशाह अब्दाली के प्रतिनिधि नजीबुद्दौला के व्यवहार से सम्राट तथा वजीर खिन्न थे और वे मराठों के सहयोग से नजीबुद्दौला से मुक्ति प्राप्त करना चाहते थे। अब एक सशक्त मराठी सेना रघुनाथ राव के नेतृत्व में दिल्ली की ओर बढ़ी। रघुनाथ राव का उद्देश्य सम्राट से बकाया की रकम को वसूल करना तथा दिल्ली दरबार में पुनः मराठों का प्रभुत्व स्थापित करना था।

4.4.6. सारांश

पेशवा बालाजी विश्वनाथ (1713 ई.-1720 ई.)

1. बालाजी द्वारा पेशवा पद की प्राप्ति 2. मराठा राज्य की आतंरिक समस्याएँ और बालाजी के प्रयास 3. मुगलों के साथ संबंध4. मुगल सम्राट और शाहू की संधि

पेशवा बालाजी प्रथम (1720 ई.-1740 ई.)

1. बाजीराव की मुगल विरोधी नीति 2. बाजीराव और दक्षिण का मुगल सूबेदार 3. निजाम-उल-मुल्क से संधि का प्रयास 4. मराठों की तटस्थता की आलोचना 5. निजाम द्वारा मराठा राज्य पर आक्रमण 6. शिवगाँव की संधि (16 मार्च, 1725 ई.) 7. पराजित निजाम-उल-मुल्क और मराठों के मध्य समझौता 8. बाजीराव और उत्तर भारत 9. मालवा और बुंदेलखंड 10 अझमेरा का युद्ध 11. बाजीराव और मस्तानी

- 12. मुगल-मराठों के मध्य शांति समझौता 13. गुजरात में मराठा शक्ति का विस्तार 14. दिल्ली पर मराठों का आक्रमण और भोपाल का युद्ध 15. बाजीराव तथा आंग्रे, सिद्दी और पुर्तगाली **पेशवा बालाजी बाजीराव (1740 ई.-1761 ई.)**
- 1. संगोला समझौता तथा पेशवा शक्ति का चर्मोत्कर्ष 2. पेशवा और मुगल सम्राट
- 3. कर्नाटक की विजय 4. महाराष्ट्र में प्रतिद्वंदियों पर पेशवा की विजय 5. मराठे और निजाम 6. बुंदेलखंड पर मराठों का अधिकार 7. मराठे और राजपूत 8. मराठे और जाट 9. उत्तर भारत में मराठा सत्ता का विस्तार 10. अहमदशाह अब्दाली का भारत पर आक्रमण

4.4.7. बोध प्रश्न

4.4.7.1. लघु उत्तरीय प्रश्न

- 1. पेशवा बालाजी विश्वनाथ के उत्कर्ष पर प्रकाश डालिए।
- 2. पेशवा बालाजी बाजीराव के संगोला समझौता पर टिप्पणी लिखिए।
- 3. पेशवा बालाजी प्रथम की मुगल विरोधी नीति पर प्रकाश डालिए।
- 4. बाजीराव और मस्तानी के संबंधों की व्याख्या कीजिए।
- 5. शिवगाँव की संधि पर नोट लिखिए।

4.4.7.2. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- 1. पेशवा बालाजी विश्वनाथ की क्या समस्याएँ थीं और उसने उनका निवारण किस प्रकार किया।
- 2. पेशवा बालाजी प्रथम की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
- पेशवा बालाजी बाजीराव ने किस प्रकार उत्तर भारत पर मराठा परचम लहराया? विस्तार से लिखिए।
- 4. अहमदशाह अब्दाली के भारत पर आक्रमण का वर्णन कीजिए।
- 5. 1725 ई. से 1738 ई. के मध्य गुजरात में मराठा शक्ति के विस्तार की विवेचना कीजिए।

4.4.8. संदर्भ-ग्रंथ

- 1. म.गो. रानाडे : मराठा शक्ति का उदय
- 2. ग्रांट डफ: मराठों का नवीन इतिहास
- 3. सरदेसाई: मराठों का नवीन इतिहास भाग 1, 2 एवं 3
- 4. जदुनाथ सरकार : शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स
- 5. सतीश चन्द्र : मध्ययुगीन भारत